श्री सहजानंदघन गुरुगाथा

परमगुरु कृपाकिरण

प्रा. प्रतापकुमार ज. टोलिया

परमकृपाळुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी रूपी सूर्य के सर्वत्र प्रकाशन की उनके शरणापन्न यो.यु. सहजानंदघनजी की महान भावना सप्तभाषी आत्मसिद्धि

प्रतीक्षा है सूर्य की ... !

बाहर निकलने दें परमगुरुराज श्रीमद् रूपी सूर्य को, जो स्वयं प्रकाशित ही है, किन्तु भाषा, मत, पंथ, संप्रदाय रूपी बादलों की संकीर्ण कृत्रिम घटाओं के पीछे जिसे अनजाने में छिपाया गया है, दबाया गया है ... !!

आत्यंतिक प्रसन्नता की बात है कि परमगुरु-अनुग्रह से 'श्री आत्मसिद्धि' का यह दीर्घ-प्रतीक्षित हिन्दी पद्यानुवाद आज मूल गुजराती के साथ समश्लोकी बृहत् रूप में प्रकाशित हो रहा है। परमकृपाळु देव की इस महान उपकारक कृति का इस रूप और इस प्रमाण में प्रकाशन प्रधानत: वर्धमान भारती द्वारा प्रस्तुत 'श्री आत्मसिद्धि' आदि के लांगप्ले स्टिरियो रिकार्ड के साथ संगति, स्वाध्याय, स्मरण, स्मृतिपाठ-सुगमता के उद्देश्यों से हो रहा है।

गुजराती नहीं जाननेवाले आत्मार्थी जनों के हेतु एवं अनंत उपकारक परमकृपाळु देव श्रीमद् राजचंद्रजी के परम श्रेयस्कर साहित्य को गुजरात के बाहर दूर सुदूर तक पहुँचाने के हेतु यह व्यवस्था सोची गई है। इस प्रकार हिन्दी, अंग्रेजी, कन्नड, तमिळ, बंगला आदि अनेक भाषाओं में जैन दर्शन के मूल एवं प्रतिनिध तत्त्व को व्यक्त करनेवाले श्रीमद्जी के साहित्य को प्रकाशित एवं प्रसारित करना 'वर्धमान भारती' का एक प्रमुख उद्देश्य है। *

इस उद्देश्य के मूल में है परमकृपाळुदेव के शरण प्राप्त - अनुग्रहप्राप्त - एकनिष्ठ उपासक आत्मद्दष्टा, आत्मज्ञ सद्गुरुदेव योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानन्दघनजी (संस्थापक, श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, रत्नकूट, हम्पी, कर्नाटक) की श्रीमद्-साहित्य विषयक यह अत्यन्त ही उपादेय और अनुमोदनीय ऐसी अंतरंग भावना: "श्रीमद् का साहित्य गुर्जरसीमा को लांघ करके हिन्दीभाषी विस्तारों में महकने लगे यह भी वांछनीय है। महात्मा गांधीजी के उस अहिंसक शिक्षक को गांधीजी की भाँति जगत के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए, कि जिससे जगत शांति की खोज में सही मार्गदर्शन प्राप्त कर सके। इतना होते हुए भी यह कोई सामान्य करामात नहीं है कि हम लोगों ने उनको (श्रीमद् को) भारत के एक कोने में ही छिपाकर रखा है - क्योंकि मतपंथ - बादल की घटा में सूरज को ऐसा दबाए रखा है कि शायद ही कोई उनके दर्शन कर सके। ॐ ॥"

सविशेष प्रसन्नता की बात है कि उनकी यह भावना, "श्री आत्मसिद्धि शास्त्र" के समश्लोकी हिन्दी पद्यानुवाद की उनकी ही एक पुरानी कृति के नूतन प्रकाशन के द्वारा साकार हो रही है। श्री आत्मसिद्धि का यह हिन्दी पद्यानुवाद सद्गुरुदेव श्री सहजानन्दघनजी ने ज्येष्ठ सं. २०१४ में, परमकृपाळुदेव द्वारा "आत्मसिद्धि" के मूलनिर्माण-की-सी आत्मावस्था में एक ही बैठक में अल्प समय में किया था। श्री भँवरलालजी नाहटाने उसे तब बड़े भाव से प्रकाशित करवाने के बाद वह अलभ्य सा हो गया था और स्वयं अप्रकाशित रहने की इच्छा रखनेवाले सद्गुरुदेव ने उसे पुन: प्रकाशित करवाने का कोई संकेत तक नहीं किया था। दूसरी ओर से परमकृपाळुदेव रूपी सूर्य को बादलों से अनावृत्त करने के अपने अनेक प्रयत्नों में से एक प्रयत्न के रूप में इन पंक्तियों के लेखक को उन्होंने श्री आत्मसिद्धि का नूतन हिन्दी अनुवाद करने प्रेरित और प्रवृत्त किया। परन्तु यह कार्य अधूरा रह गया, उनका स्वयं का विदेहवास हो गया और आज उनकी ही यह अनुवाद कृति प्रकाशित हो रही है, जिसका उनके जीवन तक न तो हमें कोई पता भी था, न उन्होंने स्वयं इस कृति का कभी कोई उल्लेख किया था ! आखिर श्रीमद्-सूर्य को हम जैसों के नहीं, उन्हीं के पावन हस्तों द्वारा बादलों से अनावृत्त होना है न ?

सचमुच ही आज के क्षुब्ध, अशान्त, संभ्रान्त, अज्ञानांधकार से पूर्ण जग को परमगुरुराज श्रीमद् रूपी सूर्य के ज्ञान प्रकाश की अत्यन्त ही आवश्यकता है। चरम तीर्थपति भगवान महावीर के निर्वाणोत्सव के उपलक्ष्य में यह उपयुक्त ही है कि अतीत में भगवान महावीर के ही, जिनेश्वर के ही, सम्प्रदायातीत 'मूलमार्ग' को व्यक्त करनेवाले परम उपकारक युगपुरुष श्रीमद् राजचंद्रजी का यह साहित्य अनेक रूपों में, अनेक भाषाओं में, प्रकाशित हो।

'पत्र-पुष्प' के रूप में भी सही, 'वर्धमान भारती' को अपनी लांगप्ले रिकार्डो का और इस हिन्दी पद्यानवाद का लाभ संप्राप्त हो रहा है यह परम सौभाग्य की बात है। इस लोभ को सम्भव करनेवाले परमगुरुदेवों के योगबल, अनुग्रहबल और उन अनेक आत्मार्थीजनों के सहयोगबल को हम भूल नहीं सकते।

उन परमोपकार परमगुरुदेवों के पावन चरणों में उन्हींके ये पुष्प समर्पित कर कृतकृत्य बन .नके प्रति आत्मभाव से अनेकश: वन्दनाएं प्रेषित कर विदा चाहते हुए हम पुन: दोहराते है - आज अत्यधिक प्रतीक्षा है श्रीमद् रूपी सूर्य की !

भाद्रपद शु. १०, २०३०, बेंगलोर (१९७४ में 'आत्मसिद्धि' के प्रथम हिन्दी अनुवाद प्रकाशन समय)

---

* "सप्तभाषी आत्मसिद्धि" में प्रकाशित

अनन्य आत्मशरणप्रदा सद्गुरूराजविदेह ।
पराभक्तिवश चरण में धरुं आत्मबलि एह ॥

परमगुरु राजचन्द्र शरणापन्न योगीन्द्र
युगप्रधान सहजानंदघन सद्गुरु देव

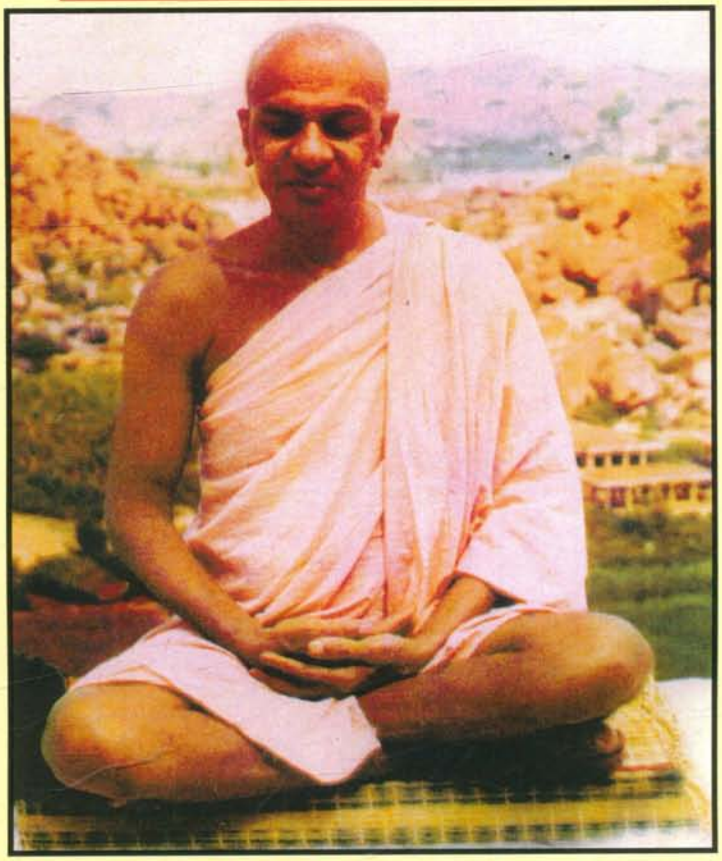

जन्म : संवत् १९७०
भाद्रपद शु. १०, डुमरा (कच्छ)

दीक्षा : संवत् १९९१
लायजा (कच्छ)

युगप्रधान पद : संवत् २०१७,
ज्येष्ठ शु. १५, बोरड़ी

महाप्रयाण : कार्तिक शु. २,
संवत् २०२७, हम्पी

"गुलाब के फूल तुल्य, गुरु का दिल कोमल था
गोक्षीर धारा की भाँति, उनका सुयश उज्जवल था ।
मेरे लिये अप्राप्य है, गुरु का विराट व्यक्तित्व
गंगा के सलिल समान, उनका आचार निर्मल था ॥"
साध्वी डा.श्री प्रियलताश्रीजी ।

कितने प्रसन्न, कितने प्रशान्त, कितने सहज, कितने सुशान्त ।
बालवत् सरल, प्रबुद्ध और तरल, कहाँ मिलेंगे तुझे 'निशान्त'?
अनंतयात्री "निशान्त" ।

योे.यु.श्री सहजानंदघनजी

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी प्रतिष्ठित प्रसन्न मुद्रा प्रतिमा

श्रीमद् राजचंद्रजी

कायोत्सर्ग मुद्रा में कलिकाल कल्पवृक्ष परमकृपाळु देव
श्रीमद राजचन्द्रजी (हंपी आश्रमस्थित प्रतिमा)

श्रीमद् राजचंद्रजी

(पद्मासन मुद्रा)

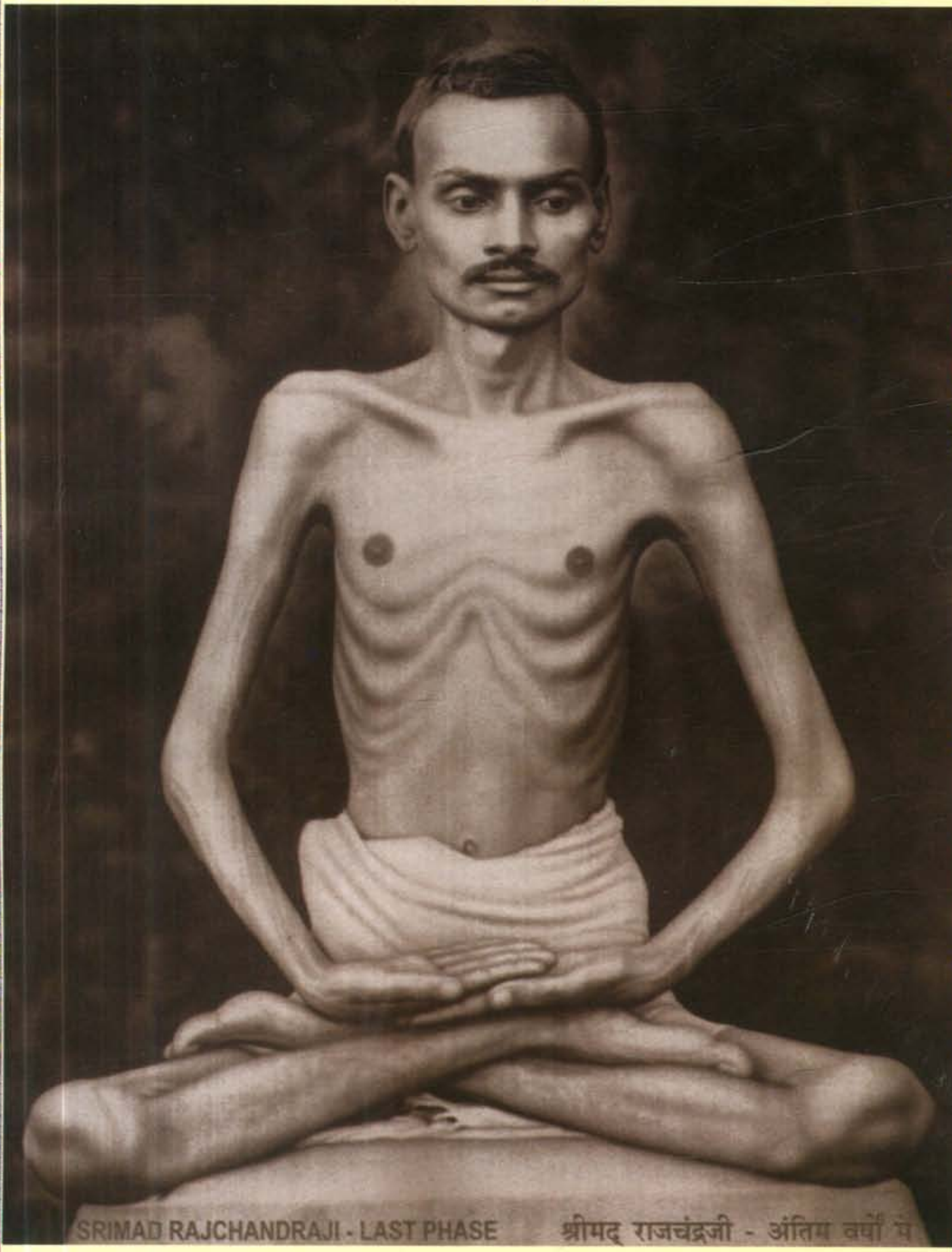

दादाश्री जिनदत्तसूरिजी

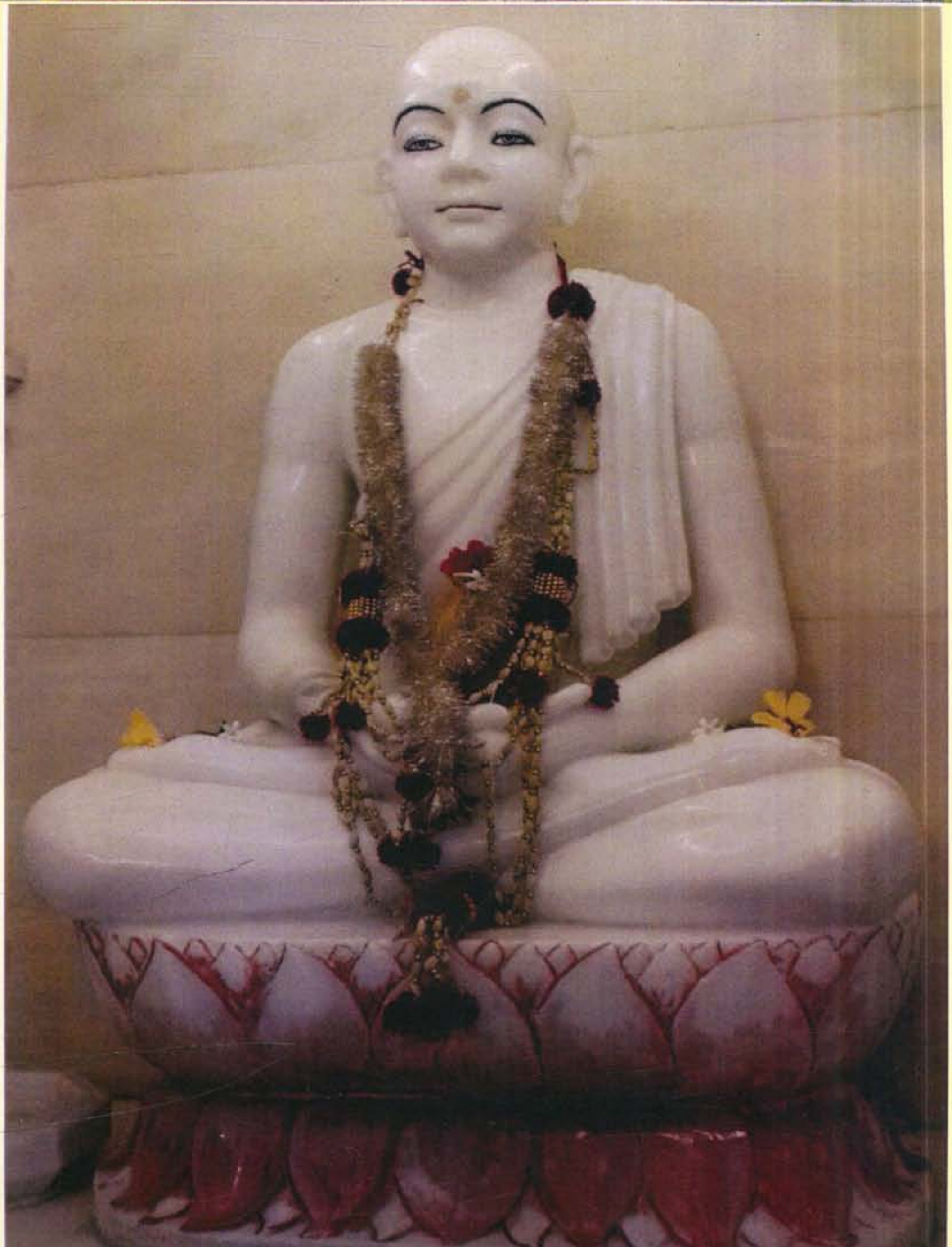

युगप्रधान दादाश्री जिनदत्तसूरिजी

(श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी दादावाडी स्थित प्रतिमा)

परमपूज्या

आत्मज्ञा माताजी

श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, हम्पी, कर्नाटक की अधिष्ठात्री

माताजी धनदेवीजी

वात्सल्यमयी ज्ञानात्मा जगत्माता श्री धनदेवीजी

विदुषी विमला ठकार

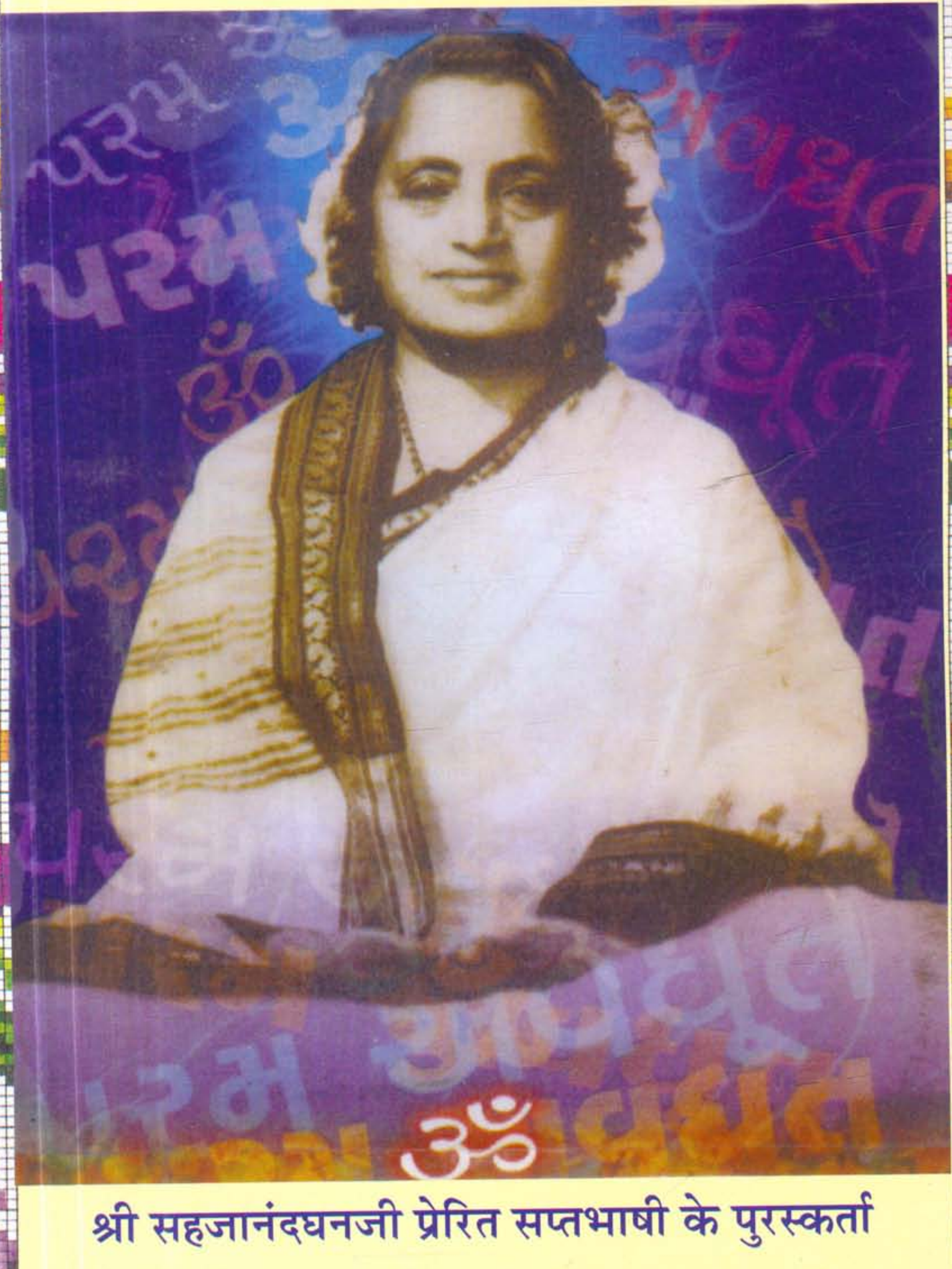

श्री सहजानंदघनजी प्रेरित सप्तभाषी के पुरस्कर्ता

॥ ॐ नमः ॥

(अनाहतनाद-निसृत आत्मानंद मस्ती भक्तिगान-प्रसूत, अनुभूति की आवाज़-प्रयुक्त, स्वान्तः सुखाय, सर्वहिताय प्रस्तुत)

• स्वानुभवात्मक • संवेदनात्मक • संशोधनात्मक • संगीतात्मक

• सर्वश्रेयात्मक • स्वयंगुणात्मक • सविस्तृत स्वरुपात्मक

श्री सहजानंदघन गुरूगाथा

वर्तमान भारत के सर्वोत्कृष्ट-अध्यात्मयोगी

योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानंदघनजी ('भद्रमुनि') की जीवनी

भाग : १

गिरिकंदराओं की योगभूमि कर्णाटक में अतीत के युगप्रधान भद्रबाहु से लेकर वर्तमान युगप्रधान सहजानंदघन (भद्रमुनि) तक

आज्ञा-आशीर्वाद

जगत्माता पूज्य माताजी धनदेवीजी

आलेखक

सद्गुरु-सूर्य की एक कृपा-किरण

प्रा. प्रतापकुमार ज. टोलिया

अनुलेखिका

श्रीमती सुमित्रा प्र. टोलिया

प्रेरक-सहायक

सरलात्मा सच्चिदानंदकुमारदेव + स्व. कु. पारुल टोलिया

प्रकाशक

जिन भारती

योगीन्द्र युगप्रधान सहजानन्दघन प्रकाशन प्रतिष्ठान

Yogindra Yugapradhan Sahajanandaghan Prakashan Pratisthan

वर्धमान भारती इन्टरनेशनल फाउन्डेशन

प्रभात कोम्पलेक्स, के.जी. रोड, बेंगलोर-560009.

'पारुल', 1580, कुमार स्वामी ले आउट, बेंगलोर-560078.

SRI SAHAJANANDAGHAN GURU GATHA

(Biography : Hindi)

By Prof. Pratapkumar J. Toliya

प्रकाशक

योगीन्द्र युगप्रधान सहजानंदधन प्रकाशन प्रतिष्ठान

जिन भारती, वर्धमान भारती इन्टरनेशनल फाउन्डेशन

प्रभात कोम्पलेक्स, के.जी. रोड, बेंगलोर-560009.

'पारुल', 1580, कुमार स्वामी लेआउट, बेंगलोर-560078.

Ph. : 080-26667882 / (M) 09611231580, 09845006542

E-mail : pratapkumartoliya@gmail.com

Website : www.vardhamanbharati.ind.in

सौजन्य :

श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, हम्पी ।

@ सर्वाधिकार सुरक्षित : जिनभारती, वर्धमान भारती इन्टरनेशनल फाउन्डेशन : 2014

प्रथम आवृत्ति : 2015

प्रतियाँ : 500

मूल्य : रु. 250/- प्रति भाग

रु. 501/- दोनों भाग

मुद्रांकन एवं मुद्रण :

विनायक प्रिन्टर्स

अहमदाबाद.

(आवरण तस्वीर : कैलास पर्वत – अष्टापदगमन सहजानंदघनजी)

प्रार्थना

परमगुरु के इस पुनितगाथा-ग्रंथ का समादर करें । सर्व आशातना टालें ।

॥ ॐ ऐं नमः ॥

प्रास्ताविक

"प्रत्यक्ष सद्‌गुरू सम नहीं, परोक्ष जिन उपकार ।"

हम सब के परमोपकारक प्रत्यक्ष सद्‌गुरूदेवों प.पू. परम कृपाळुदेव, प.पू. गुरूदेव, प.पू. माताजी, प.पू. दादाजी एवं पूर्वोपकारक परमपुरुषों एवं अन्य विश्व के प्रेरणात्माओं के परम अनुग्रह से, पूज्य गुरूदेव की यह पावन जीवनकथा पूज्य माँ के चंद बहुमूल्य, दुर्लभ जीवनप्रसंगों सह लिखी जा रही है । इस महा सर्जना में सब कुछ उनका ही कृपाबल है, इस निमित्तमात्र का कुछ भी नहीं ।

उन सब की, अनेक पूर्व गुरूबंधुओं की, आप सभी की एवं स्व-अंतस् की आशा-आकांक्षा-अपेक्षा-प्रेरणाएँ इसे अभूतपूर्व अभिव्यक्ति प्रदान करने जा रहीं हैं ।

अचिंत्य माहात्म्यमय हमारे-आपके-सबके आराध्य एवं उपकारक गुरूदेव की हस्ती ही इस काल में असामान्य है । इसे हमें विश्वव्यापक स्वरूप में प्रस्तुत करना है जो उनकी गरिमा के लिए अपेक्षित है, आवश्यक है, अनुरूप है । इससे ग्रंथ सार्वभौम सर्वयोग्य बनता है – विचारकों-चिंतकों विद्वद्‌जनों के लिए भी, सर्व सामान्य पाठक के लिए भी । प्रत्येक को इस महाकथा-कृति से कुछ न कुछ तो प्राप्त होना ही है ।

परम उपकारक परमकृपाळु देव श्रीमद् राजचंद्रजी की क्षेत्र-स्पर्शित पुनित तीर्थभूमि इडर पहाड़ पर हमें प्रथम दर्शन-परिचय हुआ सद्‌गुरुदेव श्री सहजानंदघनजी का, श्रीमद् जन्म शताब्दी वर्षान्त 1967 दिसम्बर में ।

वह एक अप्रत्याशित सांकेतिक संयोग ही था । तब विसनगर महिला कोलेज में यह पंक्ति लेखक आचार्यपद पर था, जहाँ आयोजित छात्रा-संस्कार शिबिर का संचालन विदुषी विद्रोहिनी अध्यात्मयोगिनी एवं श्रीमद्‌जी-पुरस्कर्ता विमलाताई ठकार द्वारा करवाया गया था । श्रीमद्-भक्ति में खोई हुई ताई ने उक्त शिबिर में छात्राओं को श्रीमद्‌जी-प्ररुपित स्त्रीशिक्षा का अद्‌भुत बोध दिया था । उसी भावलोक में रत विमलादीदी ने हमें शिबिरान्त में अचानक कहा, "प्रतापभाई ! आप श्रीमद् की साधनाभूमि इडर पर बहुत बार जाते हैं.... आज हमें भी वहाँ ले चलो ।" "अवश्य दीदी, तुरंत प्रबंध करता हूँ ।" कहकर स्वयं भी आनंदित होकर, एक जीप-गाड़ी मंगवाकर, हम तत्क्षण निकल पड़े ।

"अपनी सितार भी साथ ले लेना ।" दीदी का दूसरा आदेश हुआ और सितार भी उठा ली ।

इस आकस्मिक आयोजन के पीछे कोई अगम्य रहस्यमय संकेत ही था जिसके अंतरानंद में डूबते हुए हम उसी रात को ईडर पहाड़ पर पहुँच गए ।

श्रीमद्‌जी-प्रबोधित एवं विनोबाजी-प्रचारित जिस विद्रोहिनी प्रेमभक्तिपूर्ण मातृस्वरूप स्त्रीशक्ति-जागरण की, उसके ज्ञान-संवर्धन की और उसके मंगलमय, वात्सल्यमय, प्रेम भक्तिपूर्ण मातृस्वरूप के उत्थान की स्वयं विद्रोहिनी एवं ज्ञान-भक्तिरुपिणी ऐसी विमलाताई विसनगर छात्रा-

संस्कार शिबिर में बात कर रहीं थीं, उसका साक्षात् स्वरूप हमें ईडर के श्रीमद्-तीर्थ पर देखने को मिलने वाला था ।

ईडर पहाड़ श्रीमद् राजचंद्र विहार भवन पर पहुँचते ही इस मातृ-भक्ति-स्वरूप का प्रथम दर्शन हमें उसी रात के सत्संग में हुआ उस आश्रमस्थ वृध्धा भक्तमाई चंपा-बा में : ताई के सेवक कल्याणभाई की मातुश्री चंपा बा । उनके भक्ति-फलित श्रीमद्-दर्शन प्रसंग का वर्णन यहाँ प्रस्तुत न होकर अन्यत्र करेंगे ।

मातृभक्ति-स्वरूप का दूसरा दर्शन हमें दूसरे दिन प्रात: अचानक ही वहाँ पधारे हुए हंपी के योगीराज श्री सहजानंदघनजी सह उनकी भक्त-मंडली में पधारी हुई आत्मज्ञा माताजी 'जगत्माता' धनदेवीजी में हुआ । मातुश्री चंपा-बा, भोले हृदय की बड़ी ही ''मुखर'' थीं, जब कि माताजी धनदेवी जी बिलकुल ही ''मौन'' और गुप्त । वे तो लघुता धारण की हुई समर्पित थीं गुरुदेव सहजानंदघनजी एवं परमकृपाळुदेव श्रीमद्जी के प्रति । इन दोनों दिव्य मातृरुपों के बीच स्त्रीशक्ति का ऐसा ही तीसरा दिव्य मातृरुप था स्वयं विमलाताई का ! इस प्रकार तीन तीन दिव्य मातृरुपों का ईडर पहाड़ पर एक साथ साक्षात् दर्शन हो रहे थे !! स्त्रीशक्ति के जिस स्वरुप के प्रकटीकरण की तीन तीन दिन तक विसनगर महिला कोलेज के हमारे छात्रा-संस्कार शिबिर में विमलाताई ने बात की थी और हमारे निवास पर हमारे साथ बसकर उन्होंने हमारी दो नन्ही पुत्रियों (पारुल-वंदना) में भी अनुप्राणित एवं संस्कारित की थी, वह यहाँ ठीक तीन तीन रुपों में साकार प्रत्यक्ष थी !!!

इस दीर्घ पीठिकायुक्त घटना एवं संरचना के केन्द्र रूप में सांकेतिक रूप में निमित्त थे योगीन्द्र श्री सहजानंदघनजी, जिनका ईडर पहाड़ पर अचानक, हमारी बिना जानकारी के आगमन, बड़ा अर्थ रखता था, सूचक था । श्रीमद्-शिक्षा के समाज द्वारा उपेक्षित पहलू ''स्त्रीशक्ति जागरण'' एवं हमारे स्वयं के श्रीमद्जी के प्रति, श्रीमद् जीवनादर्श के प्रति संपूर्ण समर्पण - दोनों दृष्टियों से ।

यहाँ तो इतना संकेत ही पर्याप्त होगा कि सहजानंदघनजी सह सर्वहितैषी श्री लालभाई सोमचंद के द्वारा ताई का ओर हमारा परिचय करवाना, अब तक के इस अज्ञात सत्पुरुष के चरणों में हमारी सितार एवं भक्ति का अनुगुंजित होना और ऐसी ''जगत्माता'' स्त्रीशक्ति के प्रदाता एवं श्रीमद्-शरणापन्न सहजानंदघनजी के प्रति ताई का अहोभाव से प्रभावित होना — यह सब उपर्युक्त अनेक दृष्टियों से अर्थपूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण था । जैसे विमलाताई अभिभूत हुई थीं सहजानंदघनजी से, वैसे ही वे भी अति विनम्रभाव से इस विदुषी आध्यात्मिक स्त्रीशक्ति के विकसित दिव्य-मातृरुप के प्रति नतमस्तक थे । दोनों महान आत्माओं का अन्योन्य लघुतापूर्ण आदरभाव देखते ही बनता था । भगवान महावीर की स्त्रीशक्ति के उन्नयन की उदात्त भावना को अंजलि देते हुए आचार्य विनोबाजी ने जैसे विमलाताई की अंतरस्थ 'शंकराचार्या' को जगा कर उन्हें 'विमलानंद' का नाम प्रदान किया था, वैसे ही श्रीमद् राजचंद्रजी की भी ''देश को करने आबादान, दो माता को ज्ञान'' की नारी-निर्माण की उत्कृष्ट भावना से मानों प्रेरित होकर धनदेवीजी में आत्मज्ञान अनुप्राणित कर उन्हें 'जगत्माता'

के पद पर श्री सहाजानंदघनजी ने आसीन किया था ! इन सभी का कैसा सुभग संयोग !! वह भी श्रीमद्-साधनाधाम ईडर घंटिया पहाड़-स्थित "सिद्धशिला" की छाया में !!!

अत: उपर्युक्त तीन तीन दिव्य मातृरूपों का एक साथ दर्शन और इन के बीच शिशु-बालवत् लघुताधारी सहजानंदघनजी का भी दर्शन - यह सारा नज़ारा ही अद्भुत अद्भुत था । हम तो इस दुर्लभ अवसर को पाकर धन्य धन्य और मानों कृतकृत्य बन गए थे ।

वास्तव में भगवान महावीर और श्रीमद् राजचंद्रजी के ही नारी के दिव्य मातृरुप के उन्नयन के आदर्श को अपनाकर मानों सहजानंदघनजी पदानुसरण कर रहे थे । इन दोनों महत्पुरुषों की मातृभक्ति किसे ज्ञात नहीं है ? सहजानंदघनजी ने भी अपनी इस पूर्वाश्रम की काकी-माँ (धनदेवीजी) को 'जगत्माता' पदासीन करने से पूर्व ऐसी ही मातृरुपिणी नारीशक्ति कु. सरलाबेन में भी आत्मज्ञान अनुप्राणित कर, उन्हे परमहंस दशा प्राप्त करवाकर, 'आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान' की आत्मधून सह परमगुरु श्रीमद् का दिव्य-दर्शन करवाकर, समाधिमरण प्राप्त करवाया था वीर-निर्वाण-भूमि पावापुरी में । इस सरलात्मा 'सरलानंद' सच्चिदानंदकुमार देव एवं जगत्माता धनदेवीजी में ही नहीं, साध्वीजी विचक्षणाश्रीजी, निर्मलाश्रीजी, स्वयं श्रीमद्-पुत्री पू. जवलबा, भाणबाई, मेघबाई, वेलबाई, सती माँ, लक्ष्मीबेन, गुणवंतीबेन, मधुबेन, रमाबेन, कस्तुरीबेन, रूपा माँ आदि आदि अनेकानेक "मातेश्वरीओं" में उन्होंने आत्मज्योति जगाई थी - कदाचित् मुनिवर आनंदघन विजय जैसे साधकात्माओं के समान ही । ये मुनिवर आनंदघन विजय और दूसरे समाधिमरण-संप्राप्त बाबा आनंदघन (अमीचंदजी) जैसे पुरुष-भक्तों ने उनसे पाया उससे शायद अधिक मातृरुपी स्त्री भक्तों ने प्राप्त किया । भगवान महावीर की परंपरा भी श्राविकाओं एवं साध्वियों की संख्या अधिक बतलाती है न !

अत: विमलाताई के हमारे विसनगर छात्रा-संस्कार के नारी-उन्नयन शिविर के मानों प्रतिभाव के रूप में ही नारी-उद्धारक भगवान महावीर एवं श्रीमद् राजचंद्रजी दोनों के प्रतिनिधिरूप में ही हमें श्रीमद्धाम ईडर पहाड़ पर योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानंदघनजी का प्रथम दर्शन-मिलन हुआ वह सांकेतिक था ।

यह सत्‌मिलन था तो एक ही दिन का, पर वह हम पर किसी पूर्वसंस्कार-सम्बन्ध-जागरणवत् तब अमिट प्रभाव छोड़ गया ।

फिर दो साल के बाद, जब हम विसनगर कोलेज आचार्यपद त्यागकर अहमदाबाद गांधीजी द्वारा संस्थापित गूजरात विद्यापीठ के प्राध्यापक पद पर आकर, अपने दीर्घकालीन परमोपकारक प्रज्ञाचक्षु पंडित श्री सुखलालजी की निश्रामें पुन: पहुँच गए थे, तब आगे अनुसंधान हुआ उपर्युक्त सहजानंदघनजी से सम्बन्ध का । फिर कोई सांकेतिक दिव्य आयोजन न हो वैसे, गुरुदेव सहजानंदघनजी एवं उनके निश्रागत शिष्य हमारे अग्रज श्री चंदुभाई की प्रेरणा से आर्षद्रष्टा पंडितश्री सुखलालजी ने ही हमें आदेश दिया — जैन दर्शन विद्यापीठ निर्माणार्थ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम हंपी एवं बेंगलोर जाने का : सहजानंदघनजी की निश्रा एवं अग्रज की सेवा में । हंपी के प्रथम दर्शनोपरांत,

"दक्षिणापथ की साधना-यात्रा", "सद्गुरु पत्रधारा" एवं विशेष में "प्रज्ञासंचयन" पुस्तक के हमारे विस्तृत प्राक्कथन अनुसार हम गूजरात विद्यापीठ से त्यागपत्र देकर गूजरात छोड़कर हंपी-बेंगलोर कर्णाटक में आकर बस गए । यह सारा वृत्तान्त उपर्युक्त पुस्तकादि में एवं अन्यत्र लिखित होने से हम पुनरुक्ति नहीं करते हैं । संक्षेप में ईडर के पहाड़ पर प्रथम मिलन के ढ़ाई वर्ष पश्चात् हमारा रत्नकूट हंपी के पहाड़ पर गुरुदेव सहजानंदघनजी एवं पूज्य माताजी के चरणों में श्रीमद् जीवनादर्श युक्त जीवन समर्पण हो गया । श्रीमद् के जीवन से ही संबंधित ईडर पहाड़ से रत्नकूट हंपी पहाड़ पर के दूसरे श्रीमद्-धाम आकर, भारतभर के अनेक संतों के परिचय के बाद हमारा समर्पित होना बहुत कुछ अर्थ रखता था । विमलाताई एवं पंडितश्री सुखलालजी दोनों का स्थान अब गुरुदेव सहजानंदघनजी एवं माताजी धनदेवीजी ने ले लिया था ।

गुरुदेव स्वयं युगप्रधानपद प्राप्त होने पर भी लघुतावश उन्होंने आश्रम का नाम श्रीमद् राजचंद्र आश्रम ही रखा । परमकृपाळुदेव श्रीमद्जी के ही तत्वप्रचार की गुरुदेव की भावना थी, अपने प्रचार की नहीं ।

दक्षिणापथ की हमारी साधनायात्रा आत्म-प्राप्ति की चिरयात्रा बनी, सद्गुरु कृपा से महासंकटों एवं अग्निपरीक्षाओं के बीच से पली और उनके ही अनुग्रहों और आज्ञा-आदेशों से अनेक सत्निर्माणों का निमित्त भी बनी । इन सत्निर्माणों में गुरुदेव ने "सप्तभाषी आत्मसिद्धि" ग्रंथ संपादन का हम से आरंभ करवाया जो उनके जीवनकाल में अधूरा ही रह गया । बड़ा अनुग्रह कर बाद में विदुषी विमलाताईने वह पूर्ण करवाया । इन उपक्रमों में गुरुदेव + माताजी दोनों के निकट सान्निध्य में आने का हमें बड़ा पावन अवसर एवं सौभाग्य मिला । दोनों वर्तमान ज्ञानियों का बाह्यांतर जीवन "थोड़ा कुछ" देखने-जानने को मिला प्रत्यक्ष रूप में । वास्तव में अभी भी हम उनके महाजीवन का अल्पांश ही जान, समझ और पकड़ पाए हैं और यहाँ प्रस्तुत कर पाए हैं । क्योंकि हमारा पुण्याभाव एवं बड़ा ही दुर्भाग्य कि अभी तो आरम्भ ही हुआ था, बहुत कुछ संपन्न करना शेष था, तभी पाँच-छह माह में ही बेंगलोर-हंपी आ बसने के बाद हमारे दो बड़े आधार चले गए - प्रथम अग्रज आश्रमाध्यक्ष श्री चंदुभाई का और दूसरा स्वयं गुरुदेव श्री सहजानंदघनजी का ।

वज्राघात हुए दो दो महान वट-वृक्ष गिरने के - अचानक, असमय, अप्रत्याशित ! अभी तो विशेष परिचय ही क्या हुआ था और प्रायोजित नूतन निर्माण ही क्या हुआ था ? तभी —

"आंख्युँनी एंधाणी नहोती, प्रीत्युं बंधाणी नहोती,
त्यां तो अंतरनो तूट्यो ताणो-वाणो,
मारो चकलांनो माळो वींखाणो, वडवायुं कोणे वींखियुं हो जी ?
एजी मारो चकलांनो माळो वींखाणो..... !" [१]

१. "नेत्रों की पिछान और प्रेम का संधान ! अभी तो हो ही रहा था, इतने में तो टूटा ताना-बाना भीतर का.... नीड़ नष्ट हुआ पंछी का... तोड़ी किसने डालियाँ वटवृक्ष की ?"

हमारे सपनों के इस नष्टनीड़ की अंतरवेदना हमने इन दोनों आधार-पुरुषों को पुस्तकार्पण करते हुए इन शब्दों में व्यक्त की है अपने 'दक्षिणापथ की साधनायात्रा' में :

"सोणां सुकाणां मारां, भाणां भरखाणां मारां,
पांखे पांखे तीर परोवाणां, वडवायुं कोणे वींखियुं हो जी ?
एजी मारो चकलांनो माळो वींखाणो ..... !" [२]

सारे सपने चूर हो गए, सारे आयोजन बिखर गए हम दोनों बंधुओं के सद्गुरु चरणों में बैठकर किये हुए - जिनालय एवं जैन विश्वविद्यालय निर्माण के, वस्तुपाल-तेजपाल युगलबंधुवत् ! ऐसे महान आदर्श चरितार्थ नहीं हो पाए..... ! हो भी तो कैसे ? जब दो दो वटवृक्षों के मूलाधार ही नहीं रहे..... ! प्रतिकूलताओं के पहाड़ ही पहाड़ खड़े हो गए सर्वत्र — उधर हंपी आश्रम पर, इधर बेंगलोर परिवार एवं व्यवसाय में !! "प्रज्ञासंचयन" पुस्तक प्राक्कथन एवं पंडितश्री सुखलालजी एवं पू. माताजी धनदेवीजी के साथ के पत्रव्यवहार - इन में यह अंतर्व्यथा-वेदना व्यक्त हुई है केवल अल्पांश में, जब कि अधिकांश में तो वह अव्यक्त ही रह पाई है ।

ऐसी अप्रत्याशित एवं अपरंपार प्रतिकूल परिस्थितियों में तब दो ही आधार रह गए थे - दूर अहमदाबाद-स्थित पंडितजी का और निकट हंपी विराजित माताजी का - इन दोनों ने हमारी गिरती हुई गाड़ी को पटरी पर रखा और सुदूर महाविदेहवास से गुरुदेव सहजानंदघनजी ने अपने सदा के आदेश[३] को सुदृढ़ करते हुए उसे अदृश्य रूप से चलाए रखा ।

फिर उनकी ही इस अदृश्य सहायता से, परोक्ष होते हुए भी प्रत्यक्ष रूप से हमारा कुछ आयोजन अकेले ही आकार लेने लगा पंडितजी-माताजी दोनों पूज्यजनों के मार्गदर्शन में ।

वास्तव में ईडर पहाड़ पर प्रथम दर्शन में एवं हंपी पहाड़ के प्रारम्भिक पाँच-छह माह के सद्गुरु-निश्रा काल में पूज्य माताजी का जो दिव्य वत्सल मातृरुप गुप्त रूप में हमने देखा था वह अब प्रकट होने लगा और उनका स्वयं का गुरु-विरह हमारे महा-विरह को सम्बल प्रदान करता रहा । माँ का प्रत्यक्ष एवं गुरुदेव का परोक्ष दोनों बल सम्मिलित हुए और विश्वभर को वीतराग-वाणी से अनुगुंजित करने की श्री सद्गुरुआज्ञा-इच्छा कुछ कुछ आकार लेने लगी । गुरुदेव के आदेशित श्री आत्मसिध्धि शास्त्र के प्रथम रिकार्डिंग के मंगलारम्भ से वीतराग-वाणी 'वर्धमान भारती' को पूज्य माताजीने प्रवाहित किया ।

वात्सल्यमयी माँ के हाथों गुरुदेव के प्रेरित आदेश-कार्य इस प्रकार वर्धमान भारती संगीत रिकार्डों साहित्यकृतियों एवं परमगुरु प्रवचनों के, एक लंबी श्रृंखला के रूप में चल पड़े, विदेशयात्राएँ भी माँ + पंडितजी ने सफल सार्थक बनवायी विश्वभर में वीतरागवाणी भर देने के गुरुआदेश को साकार

---

२. "सूख गए सब सपने हमारे, लूट गए भोजनथाल हमारे;
तीर पिराए गए पंख पंख पर.....
तोड़ी किसने डालियाँ वटवृक्ष की ?" (— गुजराती कवि इन्दुलाल गांधी)

करती हुईं। हमारे समग्र परिवार का कार्यबल परमगुरुओं के योगबल ने संवर्धित किया। सद्गुरु कृपा के ये सृजन हमारे नन्हे हाथों से चलते रहे। पर इन सभी के होते, बनते हुए भी गुरुदेव सजीवन मूर्ति का अल्प-संग काल में ही विदा हो जाना हमारी विरह-व्यथा बढ़ाता ही रहा। गुरुदेव के, अग्रज के प्रयाण उपरांत की इन व्यथा की और प्रतिकूलताओं के बीच से भी गुरुकृपा से आकार लेती हुई उपर्युक्त सर्जन-प्रवृत्तियाँ अभी चल ही रही थीं कि हम दोनों पर, सारे परिवार पर एवं स्वयं इन प्रवृत्तियों पर एक और दारुण दुःख भरा वज्राघात हुआ – हमारे जीवन की एवं इन प्रवृत्तियों की प्राणरुप ज्येष्ठा सुपुत्री कु. पारुल के भी युवावस्था में असमय ही मोटर दुर्घटना में विदा हो जाने का ! वज्राघात पर वज्राघात !! क्या हमारी नियति, ज्ञानी जाने !!!

परंतु फिर हमारे हाथ थामते रहे सभी परमगुरु और उनकी प्रतिनिधि-सी परमछाया माँ। फिर उनकी छाया भी चल बसी १९९२ में। तब सुदूर आबु से विदुषी विमलाताई ने हाथ पकड़ा और आश्रम के हमारे ही मेनेजींग ट्रस्टी ने नकारा हुआ, गुरुदेव का ही आदेशित 'सप्तभाषी आत्मसिध्धि" संपादन-प्रकाशन का काम ताई ने अर्थप्रदान भी करके पूर्ण करवाया और इस प्रकार इडर में हुआ गुरुदेव-मिलन एक सूचक रूप में उन्होंने सार्थक किया – यह भी दिव्य मातृरूप का प्रत्यक्ष दृष्टांत।

इन सारे जीवनप्रसंगों और प्रत्यक्ष सत्संगों से माँ एवं विशेषकर विदेहस्थ गुरुदेव के जीवन को हम हमारी 'सद्गुरु पत्रधारा' से भी अधिक आगे बढ़कर खोजते और जानते रहे। और जैसा कि ऊपर कहा, उनके महाजीवन को यहाँ हम अभी अल्पांश में ही प्रस्तुत कर पाये हैं। इस चरित्र-गाथा को स्वानुभवों के साथ और विशाल परिप्रेक्ष्य में लिखने के उपक्रम में जो कुछ श्रेष्ठ और सत्य हो वह सब उन महापुरुषों का है एवं सीमित, क्षतिपूर्ण या दोषयुक्त कहीं हो तो हमारा। पाठकवृंद विवेकयुक्त हंस-क्षीर न्यायदृष्टि से इस का उपयोग करें - विशेषकर नूतन पिढ़ी और हमें अपने दोष बतायें भी। गुरुदेव के इस महाजीवन को हमने अपने स्वानुभवों, मुद्रित साहित्य सामग्रियों से भी अधिक उनके दिव्यानुभूतिपूर्ण चिरंतन प्रवचनों से अधिक समझा है और इन सब से उनका युगप्रभावक महामानव, विश्वमानव स्वरूप हमें दिखाई दिया है जो उनके युगप्रधान पद को सिध्ध करता है। उनके इसी अपेक्षित विराट रूप में उन्हें प्रस्तुत करने की हमारी दृष्टि और बालचेष्टा रही हैं।

इस भिन्न-सी दृष्टि से गुरुदेव का कच्छ में जन्म लेकर, उत्तर एवं भारतभर में साधना-भ्रमण कर, अंत में कर्णाटक में-पूर्वकालीन युगप्रधान भद्रबाहु की योगभूमि एवं मुनिसुव्रत स्वामी भगवान की सिद्धभूमि में - आकर बसना, शेष जीवन बिताना कई दृष्टियों से सूचक, समन्वयात्मक और महत्त्वपूर्ण होकर बहुत कुछ अर्थ रखता है। भविष्य यह सिद्ध करेगा। जैसे जैसे समय बीतता जाएगा, उनकी महत्ता, सार्थकता, प्रासंगिकता और प्रभावकता बढ़ती जाएगी।

इसलिए हमने इस गाथा ग्रंथ में प्रथम पार्श्वभूमिका के रूप में "कर्णाटक की कंदराओं में युगप्रधान भद्रबाहु से लेकर वर्तमान युगप्रधान भद्रमुनि-सहजानंदघनजी तक" एवं "भद्रमुनि की पृष्ठभूमि", "सिद्धभूमि का इतिहास", "आश्रमकथा-आत्मकथा" एवं स्वानुभूतियों से युक्त "अष्टापद रहस्य

३. "प्रतापभाई ! प्रतिकूलताओं को अनुकूलताएँ मानें !"

दर्शन'' आदि प्रकरणों में उनका गणधर गौतमस्वामीवत् इस काल में आत्मलब्धि से अष्टापद यात्रा करना आदि प्रकरणों को प्रथम प्रस्तुत करना उचित समझा है और बाद में, हमारे भी दक्षिणापथ साधनायात्रा दर्शन के बाद में उनके स्थूल बाह्यांतर जीवन को ।

एकाधिक खंडों में चल रही महाप्रभावक गुरुदेव की यह महाजीवन गाथा - विद्वत्जन एवं सामान्यजन दोनों को उपयोगी हो और विशेषकर साधना क्षेत्र के तृषातुर संशोधक युवाजन को प्रेरणारूप हो ऐसी हमारी मनीषा है । सफलता कितनी मिलती है यह पाठकजन जानें । परंतु गुरुकृपा एवं अदृश्य प्रेरणाएँ हमें साथ देती रही हैं और ''स्वान्तः सुखाय यह गुरुगाथा'' लिखने का हम अंतरानंद उठा रहे हैं । हमारा यह ''स्वान्तःसुखाय'' पुरुषार्थ सद्गुरु अनुग्रह से ''सर्वजन हिताय'' भी बनो । हम तो अंत में सब कुछ ''सद्गुरु चरणार्पण'' कर मुक्त हो जाते हैं ।

इस आलेखन-संशोधन-प्रकाशन में सद्गुरुकृपा के अदृश्य परोक्ष योगबल के उपरान्त प्रत्यक्ष सहाय सहयोग मार्गदर्शनादि हमें कई गुरुबंधुओं से प्राप्त हुआ है । इस श्रृंखला में थोड़े ही नामोल्लेखो में हम गुरुदेव-माँ के प्रायोगिक ध्यानमार्ग के कृपापात्र प्रस्तोता आदरणीय श्री नरेन्द्रभाई शाह, ''अद्भुत योगी'' चरित्रलेखक श्री पेराजमल जैन, सद्गुरुसमर्पित गुरुपूजाकथा लेखिका एवं पत्रसंग्राहिका बहनश्री पुष्पाबाई 'स्वयंशक्ति', गुप्त नम्र अर्थसहायक श्री राहुल अनिल चोरड़िया और सर्वाधिक तो परिश्रमपूर्ण मुद्रणकार्य संपन्नकर्ता स्वनामधन्य सद्गुरुभक्त श्री लालभाई सोमचंद के पौत्र रत्न श्री नौतम रतिलाल शाह के हम विशेष आभारी हैं, वैसे ही सभी नाम-अनाम सहायकों एवं अर्थदाता मित्रों के भी, ''सत्पुरुषों का योगबल विश्व का कल्याण करो ।'' ॐ शान्तिः

प्र.

बेंगलोर (श्रा.शु.पू : 1-8-2014)

श्री सहजानंदघन गुरूगाथा

प्रकरण-1 से 11 (Part-I)

प्रथम भाग

अनुक्रम

"प्रतीक्षा है सूर्य की !" .... आवरण पृष्ठ-२-३

प्रास्ताविक : .... IV-पृष्ठांक

1 कर्णाटक की कंदराओं में भद्रबाहु से भद्रमुनि तक 1

2 भद्रमुनि की पृष्ठभूमि 8

3 सिद्धभूमि का इतिहास 14

4 आत्मकथा-आश्रमकथा 22

5 स्वयंप्रज्ञ, स्वयंभद्र प्रतिमा के धारक सहजानंदघन भद्रमुनि 32

6 साधना-सद्गुरुदेव श्री सहजानंदघनजी की सम्यगदृष्टि में 38

7 जैन योग : वर्तमान के एक प्रयोगवीर परमयोगी 41

8 दक्षिणापथ की साधनायात्रा + आत्मद्रष्टा माताजी 57

9 सद्गुरु पत्रधारा 88

10 देहरथी की बाल्यावस्था : विद्यार्जन शिक्षा 118

11 सर्वसंगपरित्याग : युवावय में + गुरुकुलवास के १२ वर्ष 121-132

परिशिष्ट 133

(शेष दूसरे भाग में)

परिशिष्ट : दक्षिणापथ प्रतिभाव + जैन धर्म कर्णाटक में । कर्णाटक का गौरव बाहुबली (पारुल)
सहजानंदघन स्वरदेह - साहित्यसूची - प्रवचन सूची + प्रकीर्ण : गुरुकृपा के सृजन

प्रकरण-१ Chapter-1

॥ मोक्षमार्गस्य नेतारम्, भेत्तारम् कर्म-भूभृताम् । ज्ञातारम्-विश्वतत्त्वानाम्, वन्दे तद्गुण-लब्धये ॥

काल के अंतराल को पार करनेवाले महाप्राण महायोगी युगप्रधानों की किंचित् झलक : विश्वविशाल विराट श्रमण संस्कृति की परिचायक

कर्णाटक की कन्दराओं में भद्रबाहु से लेकर भद्रमुनि तक

प्रा. प्रतापकुमार टोलिया

(श्रवणवेलगोळा-बेंगलोर-रत्नकूट हंपी, कर्णाटक)

"कर्णाटे हेमकूटे विकटतरकटे चक्रकूटे च भोटे
श्रीमत् तीर्थंकराणाम् प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे ॥"

मंगलकर भद्रबाहुवन्दना

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतम प्रभु ।
मंगलं भद्रबाह्वाद्या: जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

अनादि-अनंत की यह काल धारा ।

अवसर्पिणी का यह काल ।

उसके आदि-प्रणेता, आदि संस्कृति पुरस्कर्ता, आदि पृथ्वीनाथ, आदि निष्परिग्रही श्रमण, आदि तीर्थ-प्रवर्तक आदि तीर्थंकर आदिनाथ-वृषभनाथ-ऋषभदेव ।

उनके द्वारा किये गये इस भरतखंड के "भारत" नामकरण में किया गया दक्षिणभारत के इस प्रदेश कर्णाटक का नामकरण "कर्णाट" इस की प्राचीनता की प्रतीति कराता है।

तब से लेकर बीसवें जैन तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ तक का कालांतराल, जो कि अनेक रहस्यों से भरा पड़ा है, भारतवर्ष की संस्कृति में श्रमणसंस्कृति-निर्ग्रंथ आर्हत् संस्कृति-जैन संस्कृति के अपार, अभूतपूर्व प्रदान का अपने में बड़ा भारी महत्त्व संजोये हुए है । समग्र भारतवर्ष के इस अप्रकट सांस्कृतिक इतिहास में कर्णाटक का स्थान भी कोई छोटा नहीं है । महान खोजी अन्वेषक जब इन गूढ़, आवृत्त रहस्यों को खोज निकालेंगे तब विश्व संस्कृति में भारत की सर्वोच्च गरिमा अधिक प्रकट हो जायेगी ।

मुनिसुव्रत भगवान का रामायण-समकालीन काल कर्णाटक के गूढ़गुप्त गरिमापूर्ण रहस्यों को कुछ कुछ प्रकट करने लगा । इसका भी यहाँ के पाषाणखंडों में दबा पड़ा सारा इतिहास भी, अभी

तो अज्ञात ही है । दूरसुदूर की उपत्यकाओं और गिरिकन्दराओं से, तालपत्रों की किंचित् पट्टिकाओं से, शिल्पों के भग्नावशेषों से एवं क्रान्तद्दष्टा जैन ध्यानी मनीषियों-योगियों की युगान्तकारी आर्षद्दष्टियों से जो "संकेत" मिलते हैं, वे इस गुप्त दक्षिणापथ की महान खोज के लिये शोधकर्ताओं को बुलावा दे रहे हैं । कब और कौन इन निराले निमंत्रणों को स्वीकार करेगा ?

अब तक उपलब्ध इन संकेतों से इतना तो स्पष्ट हो सकता है कि भगवान मुनिसुव्रत स्वामी, २० वें जैन तीर्थंकर के काल में कर्णाटक के अनेक स्थानों में जैन तीर्थों का, जिनचैत्यों का, जिन गुफाओं का अनेक रुपों में अस्तित्व था । इन अनेक स्थानों में से एक का उल्लेख उपर्युक्त 'कर्णाटे विकटतरकटे' वाले "सद्‌भक्त्या स्तोत्र"के श्लोक में मिलता है । हंपी के हेमकूट, चक्रकूट, रत्नकूट, भोट आदि जैन तीर्थों की ओर इन संकेतों का इशारा है । तब इस भूभाग में १४० के आसपास जिनचैत्यालयों के अस्तित्व की सम्भावना है । इन पाषाण-तीर्थों की गह्वरगुफाओं में और गिरि कन्दराओं में तब न जाने कितने सिध्धात्माओं ने अपने आत्मध्यान की धुनि रमाई होगी ।

२०वें जैन तीर्थंकर के काल के बाद के जैनधर्म के इतिहास को तो अनेक इतिहासकार, अनेक रुपों में स्वीकार करने और प्रकट करने लगे हैं । उनमें से एक संनिष्ठ लेखक हैं सुप्रसिद्ध हिन्दी राष्ट्रकवि श्री रामधारीसिंह "दिनकर" । जिसकी भूमिका के लेखक पं. जवाहरलाल नेहरु रहे हैं ऐसे उनके महत्त्वपूर्ण भारतीय संस्कृति के इतिहास-ग्रंथ "संस्कृति के चार अध्याय" में श्री दिनकरजी लिखते हैं :-

"ऋषभदेव और अरिष्टनेमि को लेकर जैन-धर्म की परंपरा वेदों तक पहुंचती है । महाभारत-युद्ध के समय, इस संप्रदाय के एक नेता नेमिनाथ थे जिन्हें जैन अपना एक तीर्थंकर (२२वें) मानते हैं । ई.पू. आठवीं सदी में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ हुए जिनका जन्म काशी में हुआ था । काशी के पास ही ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ का जन्म हुआ था जिनके नाम पर "सारनाथ" का नाम चला आता है । फिर उस काल से लेकर इस २४वें जिनशासनपति श्रमण तीर्थंकर महावीर के काल में विजयनगर साम्राज्य के समय तक के तो अनेक रहस्य स्पष्ट रुप से प्रकट हैं । जैनपंथ के अंतिम तीर्थंकर महावीर वर्धमान हुए जिनका जन्म ई.पू. ५९९ में हुआ था ।

"मौर्यकाल में, भद्रबाहु के नेतृत्व में, जैन श्रमणों का एक दल दक्षिण गया और मैसूर में रहकर अपने धर्म का प्रचार करने लगा । ईसा की पहली शताब्दि में कलिंग के राजा खारवेल ने जैन-धर्म स्वीकार किया । ईसा की आरंभिक सदियों में उत्तर में मथुरा और दक्षिण में मैसूर (श्रवण बेलगोळा) जैन-धर्म के बहुत बड़े केन्द्र थे । पाँचवीं से बारहवीं शताब्दि तक दक्षिण में गंग, कदम्ब, चालुक्य और राष्ट्रकूट राजवंशों ने जैन-धर्म की बहुत सेवा की और उसका काफी प्रचार किया । इन राजाओं के यहाँ अनेक जैन कवियों को भी प्रश्रय मिला था जिनकी रचनाएँ आज तक उपलब्ध हैं । ग्यारहवीं सदी के आसपास चालुक्य वंश के राजा सिध्धराज और उनके पुत्र कुमारपाल ने जैन-धर्म को राज-धर्म बना लिया तथा गुजरात में उसका व्यापक प्रचार किया । अपभ्रंश के लेखक और जैन विद्वान् हेमचन्द्र कुमारपाल के ही दरबार में रहते थे ।

"जैन-धर्म का हिन्दू-धर्म पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका उत्तर अगर हम एक शब्द में देना चाहें तो वह शब्द 'अहिंसा' है और यह अहिंसा शारीरिक ही नहीं, बौद्धिक भी रही है।

"हिन्दु धर्म की जो वैष्णव-शाखा है, उसने जैन-धर्म के मूल तत्त्वों को अपने भीतर भलीभाँति पचा लिया है तथा वैष्णव और जैन में भेद करना आसान काम नहीं है। आधुनिक काल में महात्मा गांधी हिन्दुत्व के वैष्णव-भाव के सबसे बड़े प्रतिनिधि हुए, लेकिन उनमें प्रतिनिधि-जैन के सभी लक्षण मौजूद थे। अनशन और उपवास पर प्रेम, अहिंसा पर प्रगाढ़ भक्ति, कदम-कदम पर भोग की सामग्रियों से बचने का भाव और उनका समझौतावादी दृष्टिकोण (स्याद्वाद), ये सबके-सब जैन-धर्म की ही शिक्षाएँ हैं।

"दक्षिण में जो जैन-धर्म का काफी प्रचार हुआ उससे भारत की एकता में भी और वृद्धि हुई। जैन मुनियों और जैन साहित्य के साथ संस्कृत के बहुत से शब्द दक्षिण पहुँचे और वे मलयालम, तमिल, तेलुगु और कन्नड भाषाओं में मिल गये। जैनों ने दक्षिण में बहुत-सी पाठशालाएँ भी खोली थीं। आज भी वहाँ बच्चों को अक्षरारंभ कराते समय 'ॐ नमः सिद्धम्' यह पहला वाक्य पढ़ाया जाता है, जो जैनों के नमस्कार का वाक्य है। खोज करने पर, शायद, यह बात मालूम हो सकती है कि वैष्णव-धर्म के विकास में जैन-मत का काफी हाथ था। गुजरात की जनता पर जैन-शिक्षा (अहिंसा और सादगी) का आज भी अच्छा प्रभाव है तथा यह भी कोई आकस्मिक बात नहीं है कि अहिंसा, उपवास और सरलता के इतने प्रबल समर्थक गांधीजी गुजरात में ही जन्मे।"[१]

गुजरात के जैन दार्शनिक पद्मभूषण-प्रज्ञाचक्षु डा.पं. सुखलालजी इस अहिंसा-प्रभाव की चर्चा "जैन-संस्कृति का हृदय" शीर्षक अपने लेख में करते हुए लिखते हैं कि –

"लोकमान्य तिलक ने ठीक ही कहा था कि गुजरात आदि प्रांतों में जो प्राणीरक्षा ओर निर्मांस भोजन का आग्रह है वह जैन-परंपरा का ही प्रभाव है।"[२]

तो गुजरात आदि प्रान्तों पर अहिंसा के जैन धर्म के प्रभाव में (२२वें) जैन तीर्थंकर नेमिनाथ के विराट प्रभाव के उपरान्त कर्णाटक से गये हुए ११वीं शती के चालुक्य वंश के महाराजा सिद्धराज और कुमारपाल आदि द्वारा किये गये व्यापक प्रचार का प्रभाव भी कारणभूत है। इस प्रकार कर्णाटक और समग्र दक्षिण पर जो अहिंसा और जैनधर्म का प्रभाव छाया रहा उसका विशद समापन करते हुए पूर्वोक्त श्री रामधारीसिंह "दिनकर" आगे लिखते हैं कि –

"इस तरह से विचार करने पर यह अनुमान आसानी से निकल आता है कि प्राचीन काल में जैन मत का प्रधान गढ़ दक्षिण भारत ही रहा होगा। ईसवी सन के आरंभ में तमिल साहित्य का जो व्यापक विकास हुआ, उसके पीछे जैन मुनियों का भी हाथ था, ऐसा इतिहासकारों का विचार है। तमिल ग्रंथ 'कुरल' के पाँच-छह भाग जैनों के रचे हुए हैं, यह बात कई विद्वान स्वीकार करते हैं। इस प्रकार, कन्नड़ का भी आरम्भिक साहित्य जैनों का रचा हुआ है।

१. "संस्कृति के चार अध्याय" (पृ. १२३-१२७)
२. "दर्शन और चिन्तन" (पृ. १४३)

"इस देश की भाषागत उन्नति में भी जैन मुनि सहायक रहे हैं.... जैन मुनियों ने प्राकृत के अनेक रूपों का उपयोग किया और प्रत्येक काल एवं प्रत्येक क्षेत्र में जब जो भाषा चालू थी, जैनों ने उसी के माध्यम से अपना प्रचार किया । इस प्रकार प्राकृत के अनेक रूपों की उन्होंने सेवा की ०० जो भाषा प्रचलित थी उसमें जैनों का विशाल साहित्य है जिसे अपभ्रंश साहित्य कहते हैं । ००० जैन विद्वानों ने संस्कृत की भी काफी सेवा की । संस्कृत में भी जैनों के लिखे अनेक ग्रंथ हैं जिनमें से कुछ तो काव्य और वर्णन हैं तथा कुछ दर्शन के संबंध में । व्याकरण, छन्दशास्त्र, कोष और गणित पर भी संस्कृत में जैनाचार्यों के लिखे ग्रंथ मिलते हैं ।

"मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण भी जैन संप्रदाय ने खूब किया । मैसूर के "श्रवण बेलगोळा" और "करकल" नामक स्थानों में गोमटेश्वर या बाहुबली की विशाल प्रतिमाएँ हैं ।"[३]

१००० वर्ष पूर्व की चामुंडराय निर्मित एवं जैन आचार्य नेमिचन्द्र सिध्धान्त चक्रवर्ती प्रेरित श्रवण बेलगोळा गोमटेश्वर बाहुबली की विश्वभर में अनुपम जैन प्रतिमा एवं तत्पश्चात् के विजयनगर साम्राज्य तक के विविध जैन शिल्प + साहित्य का निर्माण जिनमें हेमकूट- हम्पी के ३२ जैन चैत्यालय भी समाविष्ट हैं — एक बात को बारबार, अनेक रुपों में स्पष्ट और सिद्ध करते हैं : कर्णाटक और दक्षिण भारत पर छाये हुए युगप्रधान अंतिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु के सर्वतोभद्र, कालजयी प्रभाव की । जैन शिल्प एवं स्थापत्य के मूर्धन्य ग्रंथ भी इस बात को प्रमाणों के आधार पर निर्विवाद रुप से सिद्ध करते हैं । २००० वर्ष पूर्व इस धरती पर हुए आचार्य भद्रबाहु के पदार्पण को और प्रभाव को ऐसा एक ग्रंथ प्रमाणित करता है :-

"The Spread of Jainism in South India is attributed to a migration of the Jaina Community under the SRUTAKEVALI BHADRABAHU towards the close of the fourth century B.C. Digambara tradition avers that Bhadrabahu was accompanied by a king called Chandragupta (Prabhavchandra in the Sravanabelgola inscriptions from A.D. 600 onwards), who is believed to be the Maurya King of that name. The migration brought the Jainas, according, to this tradition, to Sravanabelgola in Karnataka and then to the Tamil country. The subsequent movement to the Tamil areas is believed to have been led by one Visakhacarya. The route of the migration would thus seem to be from North India (Malwa region) to Karnataka and from there to the Tamil country".[4]

तो जिन युगप्रधान श्रुतकेवली भद्रबाहु पर कर्णाटक एवं दक्षिण भारत में जैनधर्म प्रचार का इतना बड़ा श्रेय आधारित है, उस महापुरुष का स्वयं का साधना - जीवन कितना अप्रतिम, असाधारण रहा होगा !

---

३. "संस्कृति के चार अध्याय" (पृ. १२६-१२७)

४. "Jaina Art and Architecture" : Vol.I (Page 92)

परन्तु एक बात प्रमाणों से सिद्ध है कि भद्रबाहु के आगमन से पूर्व भी कई सदियों से इस दक्षिणापथ में जैनधर्म विद्यमान था ही । भद्रबाहु ने उसे सुदृढ़, सर्वतोभद्र सुविस्तृत बनाया । गम्भीर अध्येता विद्वान कहते हैं :-

"प्रकृत विषय का गम्भीरता से अध्ययन करनेवाले कुछ विद्वानों का मत है कि भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त के आगमन से भी पूर्व दक्षिण भारत में जैनधर्म वर्तमान होना चाहिए ।"[५]

फिर अनेक प्रमाणों के पश्चात् यह निष्कर्ष निकालते हैं कि :-

"अतः इससे यह स्पष्ट है कि भद्रबाहु के साथ ही जैनधर्म का दक्षिण भारत में प्रवेश नहीं हुआ । वरन् उससे उसके प्रचार और प्रसार में बल मिला और दक्षिण भारत जैनधर्म का प्रमुख केन्द्र बन गया । अनेक शासकों और राजवंशों के सदस्यों ने उसे संरक्षण दिया और जनता ने उसका समर्थन किया ।"[५/B]

"उत्तर भारत में बारह वर्ष का भयंकर दुर्भिक्ष पड़ने पर भद्रबाहु श्रुतकेवली ने बारह हज़ार मुनियों के संघ के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया । चन्द्रगुप्त मौर्य भी उनके साथ थे । श्रवण बेलगोळ पहुँचने पर भद्रबाहु को लगा कि उनका अन्त समय निकट है अतः उन्होंने संघ को आगे चोल, पाण्ड्य आदि प्रदेशों की ओर जाने का आदेश दिया और स्वयं श्रवणबेलगोल में ही एक पहाड़ी पर, जिसे कलवप्पु या 'कटवप्र' कहते थे, रह गये । अपने शिष्य चन्द्रगुप्त के साथ उन्होंने अपना अंतिम समय वहीं बिताया और समाधिपूर्वक शरीर को त्यागा ।

"उक्त आशय का एक शिलालेख उसी पहाड़ी पर है, जिसे आज 'चन्द्रगिरि' कहते हैं, और उसका समय ईसा की छठी-सातवीं शताब्दि सुनिश्चित है ।"

यह बात और ये सारे तथ्य महाप्राण-ध्यानी अंतिम श्रुतकेवली महापुरुष भद्रबाहु के अंतिम जीवन के यहाँ पर बीते साधनावकाशों और उनके समाधि मरण को पुष्ट करते हैं । नेपाल की गह्वरगुफाकंदराओं में सुदीर्घ "महाप्राणध्यान" सिद्ध कर चन्द्रगिरि की गुफा में उन्होंने महाप्राणध्यान की महासमाधि संप्राप्त की ।

इस महाप्राण ध्यानयुक्त महासमाधि अपने जीवनान्त में प्राप्त करनेवाले, उसके उत्स के रुप में जीवनभर अद्वितीय अभूतपूर्व साधना करनेवाले और सदियों पूर्व से दक्षिणापथ में विद्यमान जैनधर्म को सुदृढ़, सुविस्तृत, सर्वतोभद्र स्वरुप देनेवाले, चौदह पूर्वों के धारक अंतिम श्रुतकेवली युगप्रधान आचार्य भद्रबाहु का योगबल असाधारण रहा । उस योगबल का प्रभाव न केवल कर्नाटक या दक्षिणभारत-दक्षिणापथ पर छाया रहा, अपितु समूचे उत्तरापथ, समूचे भारतवर्ष और समूचे जैनधर्म पर सदाकाल बना रहा । विशेष दृष्टव्य बात तो यह है कि उनके इस योगबल को जैनधर्म की पश्चात्वर्ती

५. "दक्षिण भारत में जैनधर्म : पं. कैलाशचन्द्र सिध्धान्ताचार्य (पृ. २)
५बी. "दक्षिण भारत में जैनधर्म : पं. कैलाशचन्द्र सिध्धान्ताचार्य (पृ. २, ५)

दोनों धाराओं आम्नायों-दिगम्बर एवं श्वेतांबर को प्रभावित किये रखा । जहाँ श्वेतांबर आम्नाय में उनका प्रणीत "श्री कल्पसूत्र" ग्रंथ सर्वोपरि और सर्वपूज्य - सर्व शिरोधार्य बना रहा, वहाँ दिगम्बर आम्नाय में भी उनके "भद्रबाहु संहिता" जैसे कई प्राप्त-अप्राप्त और लुप्त ग्रंथ, कर्नाटक और दक्षिण भारत में उनका सर्वोच्च स्थान एवं प्रदान सिद्ध करते रहे हैं । उनके युगप्रभाव से एक ओर तो जैन साहित्य-सृजन विशालरुप से तमिलनाडु, केरल आदि कर्णाटकेतर प्रांतों-प्रदेशों में हुआ, जो कि भद्रबाहु के साथ के सैंकडों-हज़ारों निर्गंथ जैन मुनियों के उन प्रदेशों में विहार के कारण बन पाया । इस कर्णाटकेतर भाषाओं का जैन साहित्य आज जितना उपलब्ध है, उससे कई गुना अनुपलब्ध है । तमिलनाडु आदि प्रदेशो में जैन-द्वेषी अजैन आचार्यों के राज्य एवं समाज के प्रभाव से न केवल ग्रंथसृजक महामुनियों को मरवाया गया, दीवारों में ज़िंदा गाड़ा गया और जीवित जलाया गया, परन्तु उनकी अमूल्य-निधि-सा कालजयी जैन साहित्य भी जला दिया गया ! धर्मांधता का ऐसा क्रूर एवं महाकलंक कालिमाभरा उदाहरण सभ्य सुसंस्कृत भारतीय समाज के इतिहास में कहीं मिलेगा ?

ऐसे महान ग्रंथ और महान जैन सृजक मुनि-आचार्य भले ही भस्मीभूत कर दिये गये हों, परंतु महाप्राणध्यानी भद्रबाहु की उनपर छायी रही महाप्रभा-ऋतंभरा प्रज्ञा की छाया को भस्मीभूत नहीं कर पाये वे जैनद्वेषी दल । दक्षिणापथ की कर्नाटक की अनेक गह्वरगुफाओं और गिरिकंदराओं में उनके आंदोलन आज भी विद्यमान हैं । ये गिरिगुफाएँ और शहादतभरी दीवारें, भद्रबाहु की समाधिमरण-घूसरित चंद्रगिरिपर्वत गुफा की भाँति आज भी बहुत कुछ कह रही हैं । वे बुलावा दे रही हैं संशोधकों को, उन गुफाओं में गूँज रहे आंदोलनों को पकड़ने और पाषाणों के बीच दबे पड़े कई लुप्त-विलुप्त ग्रंथों को खोज निकालने, जो कि महाध्यानी मुनियों की गहन आत्मानुभूतियों की सक्षम अभिव्यक्ति में लिखे गये थे ।

भद्रबाहु के परवर्ती सृजकों का ग्रंथसृजन प्रथम देख लेना इस महत् खोजकार्य पूर्व कर लेना उपयोगी होगा । अपूर्व ऐसी आत्मानुभूतियों की सक्षम अभिव्यक्तियों में लिखा गया यह आज अनुपलब्ध साहित्य खोज निकालने कौन महाप्राण आत्मा प्रकट होगी ? कर्णाटक की कंदराएँ उनकी प्रतीक्षा कर रहीं हैं ।

आचार्य भद्रबाहु की भूमिका और प्रभाव दक्षिण में : कर्णाटक में :-

"Bhadrabahu and Silabhadra were contemporaries in the sixth generation after Sudharman had attained liberation.

"The migration of Bhadrabahu along with a body of 12000 monks to the South sometime between 296 or 298 B.C., is a landmark in the history of Jainism. The first inscription of 600 A.D. at Sravanabelagola in Karnataka refers to this event and the relevent part may be quoted here. Now indeed after the Sun, Mahavira who had risen to elevate the whole world and who had shone with a

thousand brilliant rays, his virtues which had caused the blooming of the lotuses, the blessed people, nourished the lake of the Supreme Jaina doctrine which was an abode of pre-eminent virtues had completely set, Bhadrabahu Swami, of lineage rendered illustrious by a succession of great men who came in regular descent from the venerable supreme Rsi Gautama Ganadhar, his immediate disciple Lohacarya, Jambu, Aparapta, Goverdhana, Bhadrabahu, Visakha, Prosthita. Krtikarya, Jayanama, Siddhartha, Dhritsena, Buddhila and other teachers, who was aequanted with the true nature of the eight fold great omen and forefold in Ujjayani a calamity lasting for a period of twelve years, the entire Sangha (or the community) set out from the North to the South and reached by degrees a country with many hundreds of villages and filled with happy people."

"According to the tradition, Chandragupta Maurya who was Emperor abolicated his throne and accompanied the Srutakevalin. Two inscriptions [Nos. 17 and 18] on the Chandragiri Hill and two others found near Srirangapattana mention Bhadrabahu and Chandragupta as two ascetics. That the two came together to Sravanabelgola is confirmed by a Kannada work "Munivamsabhyudaya" by a poet called Cidanandakavi who wrote his work in 1680 A.D."

ये शिलालेख उत्तर भारत से युगप्रधान श्रुतकेवली भद्रबाहु एवं चन्द्रगुप्त दोनों के निर्ग्रंथ मुनिरुप में "कलवप्पु" (अर्थात् श्रवणबेलगोळा) आने की और भद्रबाहु के "चंद्रगिरि" पर्वतिका पर समाधिमरणपूर्वक देहत्याग करने की घटनाओं की पुष्टि करते हैं । अद्यावधि चंद्रगिरिस्थित भद्रबाहु की गुफा भी इस तथ्य की साक्षी देती है । कन्नड़ के चिदानंद कवि भी इन दोनों के श्रवणबेलगोळा-आगमन की विशेष पुष्टि करते हैं ।

मतभेद होते हुए भी अधिकांश संशोधक इस निष्कर्ष पर आते हैं कि भद्रबाहु के पूर्वकाल तक जैन परम्परा अविभक्त थी, उनके पश्चात् ही श्वेतांबर से दिगम्बर विभक्त हुए । देखें एक विदेशी विद्वान् का कथन .....

"Dr. Harnell says :

"Before Bhadrabahu, the Jain community was undivided, with him, the Digambaras separated from the Svetambara".

– Justice T.K. Tukol (Ex. V.C. Bangalore University); 'Compendium of Jainism' : Pl 48-49-50.

इस काल के महावीर परवर्ती युगप्रधान आचार्य भद्रबाहु के ऐसे महान प्रभाव से अब इसी कर्नाटक की भूमि पर वर्तमानकालीन युगप्रधान भद्रमुनि सहजानंदधनजी का क्या प्रभाव और प्रदान रहा यह अब देखेंगे विशेषकर दिग. श्वे. दोनों परंपराओं के समन्वय की भी दिशा में ।

प्रकरण-२ Chapter-2

भद्रमुनि की पृष्ठभूमि

भारत की श्रमणधारा के प्रवर्तमान काल के परम प्रवर्तक २४वें चरम तीर्थंकर भगवान महावीर की पाट-परम्परा के उत्तराधिकारी थे ऊर्ध्वरेता अंतिम श्रुतकेवली, १४ पूर्वधर, "श्री कल्पसूत्र"– प्रणेता युगप्रधान श्री भद्रबाहु स्वामी ।

भगवान महावीर की विहारभूमि बिहार और स्वयं की महाप्राण ध्यान साधना भूमि नेपाल पूर्वभारत से आप अनेक मुनियों सह पधारे इस गिरिकंदरामय योगभूमि-विद्याभूमि कर्नाटक में-प्राय: २००० वर्ष पूर्व ।

केवल कर्नाटक ही नहीं, सारे दक्षिण भारत पर वे छा गए, जहाँ आज विलुप्त ऐसा श्रमणधारा के बीसवें तीर्थंकर भगवान मुनिसुव्रत स्वामी का पूर्व-प्रभाव धरती के कण कण में और आकाश-अवकाश के स्थल स्थल में तरंगित-आंदोलित था ।

फलत: न मात्र कर्नाटक के, किन्तु निकटवर्ती केरल, तमिलनाडु एवं आंध्रप्रदेश के संस्कृति-शिल्प-भाषा-साहित्य पर युगप्रधान भद्रबाहुस्वामी का महाप्रभाव छा गया । सारा साहित्य उस प्रभाव से अनुप्राणित हो गया । कन्नड़ भाषा में तो पंपा, रन्ना, जन्ना, अन्ना, बोपन्ना, रत्नाकर आदि जैन कवि-मनीषियों की कतार-सी आर्हतों-जिनों के तत्त्वबोधों और पुराण चरित्रकथाओं को लेकर चल पड़ी । यह कोई अल्प आश्चर्य की घटना नहीं कि कन्नड का ९५% साहित्य, जैन साहित्य धारा से परिप्लावित हो गया ! परिमाण और प्रकार गुणवत्ता - सभी दृष्टियों से इस साहित्य ने एक अनूठा-प्रतिमान खड़ा कर दिया समृद्ध मानवजीवन का । जिनवाणी के रुप में स्थापित कर कन्नड़ के प्रथम महाकवि पंपा ने कर्णाटक के साहित्य जगत में जिनवाणी श्रुतदेवी मां सरस्वती की नई परिभाषा एवं महिमा प्रस्तुत कर दी इन शब्दों में :

"आदि जिनेश्वर वाणी सरस्वती, सर्व जिनेश्वर वाणी सरस्वती ।"*१*

तो तत्त्वज्ञ कवि रत्नाकर वर्णी ने जिनेश्वर-बोधित जगत् स्वरुप को इस नूतन रुप में चित्रित किया :

"अनुगाळवु दु:ख, पापिगे तन्ना । मनदोळु निश्चय, रळियद कोटिगे ।"

क्या क्या कहें, ऐसा मर्मभरा तत्त्व-साहित्य ही नहीं, 'गीत वीतराग'-सी संगीतकृतियाँ, 'भूवलय'-सी गणितानुयोग की कृतियाँ और श्रवणबेलगोल-बाहुबली सी अनेक चिरंतन जैन शिल्प-कृतियाँ श्री भद्रबाहु प्रभावित परवर्ती काल में निरंतर निर्मित होती रहीं ।[१]

भद्रबाहु द्वारा परिशोधित जैनधर्म प्रभावपूर्ण कर्नाटक की धन्य भूमि-योगभूमि में पदार्पण किया भद्रमुनि-सहजानंदधनजी ने : जिनकथित-श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा प्रकाशित लुप्त-गुप्त मूलमार्ग

१. "कर्णाटक के साहित्य और संस्कृति को जैन प्रदान" (Jain contribution to Kannada Literature & Culture) : स्वलिखित हिन्दी-अंग्रेजी शोधपत्र एवं "रत्नाकरन-हाडुगळु" शीर्षक 'रत्नाकर शतक' का स्वयं-स्वरस्थ ओडियो सी.डी. ।

आत्म-धर्म की ज्योति जगाने, अलख की धुनि रमाने पश्चिम भारत गुजरात कच्छ की शत्रुंजय-गिरनार-भद्रेश्वर की तीर्थभूमि से - उत्तर के अष्टापद और पूर्व के समेतशिखर, पावापुरी, खंडगिरि-उदयगिरि के तीर्थों की क्षेत्रस्पर्शना करते हुए और अनेक गिरिकंदराओं में समौन एकांतवास में प्रभु महावीरवत् विचरण करते हुए !

भद्रबाहु-प्रभावित पम्पा आदि जैन महाकवियों ने जिस जिनेश्वर वाणी की महिमा कन्नड़ में गाई थी, उसीकी गौरव-गरिमा अपने जन्मांतर के उपकारक, 'अनन्य आत्मशरण प्रदाता' युगप्रधान, जिन-मूल मार्ग परिशोधक, गांधी-गुरु श्रीमद् राजचंद्रजीने भी निम्न महागंभीर अर्थपूर्ण शब्दों में गुजराती में गाई थी, जिसका प्रतिघोष कर्णाटक की इस अविरत धरती में अनुगुंजित करने लगे महाप्रभावक महायोगी भद्रमुनि : यो.यु.श्री सहजानंदघनजी :

"अनंत अनंत भाव भेदथी भरेली भली...

.... जिनेश्वरनी वाणी जेणे जाणी तेणे जाणी छे"[२]

अहो ! यह भी कैसा सांकेतिक योगानुयोग !

कर्णाटक और गुजरात दोनों आर्हत्-जिनों द्वारा धूलि-धूसरित आर्यप्रदेशों में कैसी एक-सी साम्यपूर्ण जिनवाणी महिमा !! दोनों वाणी-रुपों के प्रेरक-सृजक-अनुगायक भी कैसे कैसे महापुरुष !!!

भद्रबाहु-राजचंद्रजी-भद्रमुनि-सहजानंदधन : सभी आर्षयुगद्दष्टा, युगपुरुष, युगप्रधान महामानव..... !

भद्रबाहु परिप्लावित ऊर्वरा भूमि में भद्रमुनि पधारे - श्रीमद् राजचंद्रजी का महावीर-प्रणीत जिनमार्ग का युगसंदेश लेकर : भगवान महावीर के मूल मार्ग का वही वर्तमानकालीन युगबोध, जिसे महाप्राण-ध्यानी १४ पूर्वधर महाज्ञानी अंतिम श्रुतकेवली युगप्रधान भद्रबाहु ने किसी समय यहाँ की योगभूमि में बीज-रुप में बोया था । यहाँ की प्राणभरी हवाओं में लहराया था । यहाँ की गिरिकंदराओं में गुंजित कर गाया था ।

बस, मूल मार्ग की उसी वीर-वाणी को श्रीमद्जी परिध्वनित गुंज-अनुगुंजों में भरना था । वह मूल ध्वनि थी 'आत्मा' की । जड़ देह भिन्न केवल चैतन्यात्मा की । सदियों से भुला दी गई वीतराग मार्ग की ही आत्मा की !! देहार्थ में, जड़-क्रिया और शुष्क-ज्ञान में डुबो दी गई महासमर्थ अनंत वीर्यवान आत्मा की !!!

इन सभी महत् पुरुषों ने इस वीर-वाणी-जिनवाणी को ही यहाँ अलख जगाकर, डंके की चोट पर घोषित किया-प्रतिघोषित किया । महावीर-भद्रबाहु-राजचंद्र सभी के इस आत्मघोष के दुंदुभिनाद को भद्रमुनि-सहजानंदधनजी ने कर्णाटक और समग्र दक्षिण भारत में चप्पे चप्पे पर भर दिया । सर्वत्र उनका निज मस्तीभरा यह तात्त्विक गान-घोष गुंजने लगा — उनकी थनकती-थिरकती हुई और सभी की प्रमाद-निद्रा का महाभंग करती हुई खंजरी पर :-

२. श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत : भक्ति कर्तव्य

''मैं तो आत्मा हूँ जड़ शरीर नही : हुं तो आत्मा छुं जड़ शरीर नथी''

''सहजात्म स्वरुपी आत्मा हूँ : सहजात्म स्वरुप परमगुरु, सहजात्म स्वरुप परमगुरु''

''भिन्न हूँ सर्व से सर्व प्रकार से : भिन्न छुं सर्वथी सर्व प्रकारे....''[३]

''सहजानंदी शुद्धस्वरुपी/सिध्धस्वरुपी अविनाशी मैं आत्मा हूँ ।...

— परमगुरु तुल्य मैं आत्मा हूँ ।''

''आतमभावना भावतां जीव लहे केवळज्ञान रे.....''

''केवळ निजस्वभावनुं अखंड वर्ते ज्ञान,

कहिये केवळज्ञान ते, देह छतां निर्वाण''

''शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम.....''

श्रीमद् राजचंद्रजी की ''आत्मसिद्धि शास्त्र'' एवं अन्य मंगलकृतियों का यह महासारघोष सर्वत्र गुंजित करना-अनुगुंजित करना जीवनधर्म-जीवनकार्य बन गया, एक मिशन-महामिशन बन गया सहजानंदधनजी का । वे तो दक्षिणभारत में ही नहीं, सिर्फ़ समूचे भारते में ही नही, सारे विश्व में भर देना चाहते थे इस वीतराग-वाणी के महाघोष को, जिसका यह पंक्तिलेखक साक्षी है । इस युग में श्रीमद्जी द्वारा व्यक्त-अभिव्यक्त हुई यह वाणी ही विश्वगुरु महावीर प्रभु की प्रतिनिधि वाणी थी, परिशुद्ध परिष्कृत प्रमाणित और प्रमाणभूत वाणी थी - जिनवाणी थी । भद्रबाहु-भद्रमुनि सम महावीर प्रभु के पुरुषार्थी-महापुरुषार्थी उत्तराधिकारी इसे कैसे भुला सकते थे ?

इतिहास साक्षी है कि भद्रबाहु को, भद्रबाहु-परवर्तीकालीन जैनाचार्यों एवं निर्ग्रंथ मुनियों को अनेक अपार कष्ट उठाने पड़े और उन पर अनेक दिशाओं से - असंख्य तेजोद्वेषी-जैनद्वेषी-अत्याचारी आततायिओं से - घोर उपसर्ग-मरणांत उपसर्ग निरंतर आते रहे - अश्वों तले कुचल डाले जाने और ज़िंदा जलाये जाने तक के ! पर महा-वीर के ये धीर वीर सहनशील अनुगामी इन परिस्थितियों के प्रभाव से बचकर देहभिन्न-आत्मभाव को नख-शिख साधकर डटे रहे जिनमार्ग पर ! कितकितनी अनुमोदना और अभिवंदना करें इन सभी महापुरुषों की ?

भद्रमुनि को भी यहाँ अनगिनत अपार उपसर्ग-परिषह झेलने पड़े जिन-मार्ग का अनुसरण करने में, श्रीमद्जी द्वारा प्रतिबोधित वीतराग-वाणी को प्रसारित करने में और आत्मभान सह वीतरागता साधकर सिद्ध करने में, पर वे भी डटे रहे अपने निर्धारित राज-मार्ग पर - अपनी आनंद-मस्ती में यह गाते-गवाते हुए :

''छो बीजा उन्मार्गे चालता हो लाल,
अने माने सन्मार्ग प्रभाव रे
तेथी डगिए नहिं राजमार्गथी हो लाल,
चालो चालो महानुभाव रे, आत्मस्वरुप आराधवा ।''[४]

३. सहजानंद सुधा - पृ. ५७

४. 'सहजानंद सुधा' - पृ. ११४

इस काल, इस घोर कलिकाल-पंचम काल-सुखशीलों के देहासक्ति भरे काल में ऐसे अडिग रहनेवाले ये 'सहजानंदधन' नाम धारी भद्रमुनि कौन थे ? किस माटी से वे बने हुए थे ? किस माई के वे लाल थे ! किन उपसर्ग-परिषहों की पतझड़ों में वे पले हुए थे ? कहाँ से वे आये थे ?

उनका परिचय पूछनेवाले - जड़ देह के परिचय-पृच्छक-को उन्होंने यह प्रत्युत्तर देकर अपना सही आत्मपरिचय दिया था :-

"नाम सहजानंद मेरा नाम सहजानंद,
अगम देश, अलख-नगरवासी मैं निर्द्वंद नाम. १
.... नाम सहजानंद मेरा.....।।[५]

फिर भी हम उनका स्थूल परिचय भी, उनके भीतरी सूक्ष्म परिचय के साथ प्राप्त करने की बालचेष्टा करेंगे ! हाँ, बालचेष्टा ही । ऐसे स्वानुभूति संपन्न महापुरुषों का स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार का "समग्र परिचय" पाना सही परि-प्रेक्ष्य में पाना (in the right perspective) अति कठिन-दुरूह-होकर कहाँ हमारे बस की बात है ? उनकी अकल्प्य ऊँचाई नापने की क्षमता हमारी छोटी-सी, अधूरी-सी, टूटी-फूटी नाप-पट्टी में कहाँ ?... उनका वास्तविक परिचय है उनकी इस समग्र total ज्ञानदशा को समझना । और वह प्रतिदर्शित की है उन्होंने अपनी महती अर्थगंभीर रचना "समझ-सार" में, जिस की ओर चिंतन करने हम आगे अंतभाग में जाएंगे ।

सहजानंदधनजी, पूर्व मुनि-नाम 'भद्रमुनि', दीक्षा-पूर्व के श्रावक नामधारी श्री मूलजीभाई ('मूला' नक्षत्र में जन्मे हुए), इस वर्तमान काल में, इस देह को तो गुजरात-कच्छ के डुमरा गाँव में भाद्रपद शुक्ला १०, विक्रम संवत १९७०, तारीख ३० अगस्त १९१३ के शुभ दिन (शुक्ला दसवीं की 'पूर्णातिथि' के दिन) धारण करने आये थे, परंतु इसके पीछे की पृष्ठभूमि में एक बड़ी-लम्बी, सुदूर की, अनेक पूर्वजन्मों की श्रृंखला थी, महाशृंखला थी ।

उस शृंखला की चिंतना में अधिक गहरे नहीं उतरते हुए स्वयं उन्हीं के द्वारा यत्र तत्र परि-कथित अपनी पूर्वकथा के चंद संकेतों को हम आधार मान कर चलेंगे । जैसा कि उन्होंने स्वयं की संक्षिप्त आत्मकथा में और कई स्थानों पर उल्लेख किया और कहा है, वे बीसवें जैन तीर्थंकर भगवान श्री मुनिसुव्रत स्वामी की निश्रा में निर्ग्रंथ मुनि थे और कर्नाटक की इस हंपी क्षेत्र की योगभूमि में ही प्रभुसह उनकी क्षेत्रस्पर्शना-भूमिस्पर्शना हुई थी । अपने द्वारा स्वयं इस रत्नकूट-हेमकूट के निकटवर्ती क्षेत्रों में घूमकर की गई एतिहासिक खोज के पश्चात् उन्होंने एक संशोधनपूर्ण लेख लिखा था

५. वही : पृ. ११४

"विजयनगर साम्राज्य में जैनधर्म का स्थान"[१]। उसमें परोक्ष रुप से किंचित् मात्र संकेत करने के अतिरिक्त वे स्पष्ट रुप से, रत्नकूट, हंपी की इस धरती पर प्रथम पदार्पण करते समय कहते हैं :-

"जिसे तू चाह रहा था वह यही तुम्हारी पूर्व-परिचित योगभूमि !...

"यहाँ हमारा मुनिसुव्रत भगवान के काल और निश्रा में विचरण हुआ था -"[२]

और उन्हें स्मृति एवं दिव्यदृष्टि में कर्नाटक-योगभूमि कर्नाटक के इस प्राचीन जैन तीर्थ की महती दिव्यता एवं महत्ता परिदर्शित हुई :-

"कर्णाटे विकट तरकटे, हेमकूटे च भोटे च ।

श्रीमत् तीर्थंकराणाम् प्रतिदिनं भावतोऽहम् नमामि -"[३]

(जिनवरभवनानाम् भावतोऽहं नमामि ।...)

अन्यत्र श्री सहजानंदधनजी अपने महत्त्वपूर्ण आलेख 'उपास्यपदे उपादेयता' में भी इस भूमि का वर्णन प्रथम करते हुए कुछ संकेत देते हैं ।[४]

फिर श्रीमद् राजचंद्रजी जैसे अपने उपकारक उपास्य के साथ के अपने पूर्वसम्बन्ध का और उनके पूर्वउपकार का भी कई स्थानों पर वे उल्लेख करते हैं - यथा श्रीमद्जी के जीवन और उनकी ज्ञानदशा-विषयक उनका श्रीमद् राजचंद्र शताब्दी समय का १९६७ का हम्पी में प्रस्तुत प्रवचन - "श्रीमद्जी की ज्ञानदशा" ![५]

संक्षेप में कर्णाटक की, रत्नकूट हंपी की, गोकाक आदि की इस योगभूमि के साथ उनका पूर्व-सम्बन्ध अवश्य ही है यह संदेह से परे निर्विवाद वार्ता है ।

मुनिसुव्रत भगवान, तत्कालीन १४० जिनालय, फिर रामायणकालीन किष्किन्धा नगरी में भगवान राम, हनुमानजी, वाली, सुग्रीवादि विद्याधरों की भूमि विषयक भद्रमुनि द्वारा बारबार किया गया उल्लेख यह स्पष्ट करता है । परवर्तीकालीन विजयनगर की खंडहर सी धरती पर हंपी आने से पूर्व गोकाक की गुफा में (जो कि आचार्य श्री शान्तिसागरजी के समाधिमरण हेतु व्यवस्थित आरक्षित की गई थी) तीन वर्ष तक उनका मौनसाधना वास और जीवनांत में परमयोगान्तपूर्ण हंपी गुफा से महाविदेह प्रति महाप्रयाण - यह सब कर्णाटक में ही हुआ !

---

१. इसी लेख के आधार पर इस पंक्तिलेखक ने अंग्रेजी में "Role of Jainism in Vijaynagar Empire" : शोधपत्र, रत्नकूट हंपी आश्रम पर ही आयोजित History Association of India के परिसंवाद में प्रस्तुत किया, जो इसी ग्रंथ में आगे 'आत्मकथा-आश्रमकथा' एवं 'सिध्धभूमि का इतिहास' प्रकरण में भी यह विस्तार से, उनके ही शब्दों में दिया गया है ।

२. इस सम्बन्ध में, उनके मुनिसुव्रत भगवान के शिष्य होने के विषय में पू. माताजी एवं श्री भंवरलालजी नाहटा आदिने स्पष्ट आधार प्रदान किया है ।

३. सद्भक्त्यास्तोत्र ।

४. जिनभारती प्रकाशित ।

५. जिनभारती प्रकाशित ।

यह भी उनका कैसा उदय और कर्नाटक की इस योगभूमि धन्यधरा का महाभाग्य कि कच्छ-गुजरात से, राजस्थान से, कैलास-हिमालय-अष्टापद से, सम्मेतशिखरजी-पावापुरी आदि से और फिर खारवेल राजाओं के खंडगिरि-उदयगिरि के उत्कल प्रदेश से जीवनभर विहार-विचरण करते करते अंत में अंतिम दस वर्ष कर्णाटक-हंपी में ही उनका शेष वास हुआ जो बहुत कुछ कहता है, बहुत कुछ अर्थ रखता है। इस प्रकार मुनिसुव्रत भगवान द्वारा क्षेत्र-स्पर्शित कर्णाटक की योगभूमि, कालांतर में अनेक महत्पुरुषों की पाद-स्पर्शना के पश्चात् युगप्रधान अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी द्वारा संस्पर्शित हुई और फिर युगप्रधान भद्रमुनि सहजानंदधनजी द्वारा । सहजानंदघनजी का इस धरती पर पधारना, अपना अनूठा प्रभाव फैलाना और शेष जीवन यहाँ पूर्ण करना एक अन्य दृष्टि से भी महत्त्व रखता है । श्वे. दिग. दोनों विभक्त जैन परम्पराओं को जोड़ने की दिशा में । इस विषय में उनके अनन्य शरणप्रदाता श्रीमद् राजचंद्रजी का एवं उनका स्वयं का "आश्चर्यकारक भेद पड़ गये हैं" इत्यादि व्यथापूर्ण चिंतन हैं । प्रस्तुत संदर्भ में उनका स्वयं का समन्वयपूर्ण जीवन, कवन, साधन एवं दोनों परंपराओं के पर्युषण + दशलक्षण पर्व एक साथ मनाने का नूतन प्रायोगिक उपक्रम बड़ा ही सूचक, सांकेतिक, आर्षदृष्टियुक्त दिशा-दर्शक एवं महत्त्वपूर्ण है । युगप्रधान श्रुतकेवली भद्रबाहु रचित "श्री कल्पसूत्र" एवं "दशलक्षण धर्म" के उनके हम्पी में रिकार्ड किए गए अंतिम प्रवचन, दोनों धाराओं को जोड़ते हैं, जो भद्रबाहु-काल के पश्चात् विभक्त हुई थी ।

यह तो सारा अद्भुत और अगम्य इतिहास है, जिस को खोज पाना हम अल्पज्ञों की क्या बिसात ?

परंतु संकेत इतना अवश्य है इस भूमि के साथ योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानंदधनजी के सुदीर्घ सम्बन्ध का - पूर्व सम्बन्ध का । इतिहासविद् गुरुभक्त श्री भँवरलाल नाहटा इस विषय में लिखते हैं :-

"वे भगवान मुनिसुव्रत स्वामी के शिष्य भी बने । रामायण काल की अपनी उस पूर्व साधनाभूमि किष्किन्धा-हंपी तीर्थ में जाकर उसी का तीर्थोद्धार किया ।"

(श्री सहजानन्दधन-पत्रावली : प्रस्तावना पृ. छ)

वास्तव में आत्मखोज करने हेतु भगवान महावीर जो प्रश्न-ऊहापोह अपने शिष्यों को प्रदान करते हैं कि -

"मैं कहाँ से आया ? पूर्व से, उत्तर से, पश्चिम से, दक्षिण से, ऊर्ध्वदिशा से, अधोदिशा से ?" इत्यादि (सन्दर्भः उत्तराध्ययन सूत्र) और श्रीमद् राजचंद्रजी भी जब उसी प्रश्न-वार्ता को दोहराते हैं कि – "मैं कोन हूँ ? आया कहाँ से ? क्या स्वरुप है मेरा सही ?"

"हुं कोण छुं ? क्यांथी थयो ? शुं स्वरूप छे मारुं ?"

– तो इस खोज का अर्थ भौतिक भी है, आत्मिक भी । स्थूल भी है, सूक्ष्म भी । स्थूल दैहिक पूर्यजन्मों की श्रृंखला की दृष्टि से, सूक्ष्म आत्मिक रुप से आत्मा की - अनादि अनंत आत्मा की - अजन्मा अवस्था की दृष्टि से, क्योंकि महान अपराजेय जैन दर्शन की यह सत्य अवधारणा है और वह वास्तविक सही है कि –

"आत्मा की यात्रा अनादि है....."

ॐ

प्रकरण-३ Chapter-3

"जिसे तू चाह रहा था, वह यही तेरी पूर्वपरिचित सिद्धभूमि !"
विद्यासिद्ध विद्याधरों की एवं स्वयं की पूर्वसाधना की

सिद्धभूमि का इतिहास

- प्राचीनकालीन तीर्थंकर भगवान मुनिसुव्रत स्वामी क्षेत्र-स्पर्शित तीन जैनतीर्थ एवं मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम-स्पर्शित रामायण समय की किष्किन्धा नगरी
- मध्यकालीन विशाल विजयनगर साम्राज्य की समृद्ध धरती
- वर्तमानकालीन नूतन आश्रम-तीर्थ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम की साधना भूमि

"हम्पी तीर्थ का हर ज़र्रा मेरे लिए तीर्थस्थान है ।
विचरे जहाँ पर दो दो, परमगुरु महान हैं ॥ (निशान्त)

*

जय जय तीर्थक्षेत्र हम्पी..... ! हम्पी तीर्थ की जय ..... !![१]

"तीर्थंकर प्रभु मुनिसुव्रत से, धन्य हुई यह धरती,
'सद्भक्त्या' के स्तोत्र भीतर है, गाथा मंगल करती... जय जय तीर्थक्षेत्र

जहाँ पद धरने देव-मुनि-गण, सदा बनत सत्संगी,
जहाँ धून रटते-कलरव करते, भक्ति-मेले के पंछी... जय जय तीर्थक्षेत्र

आत्मशुद्धि और आत्मसिद्धि की जिन्हें लगी है लगनी
ऐसे साधक सजग मनुज को, रहत सदा निमंत्री... जय जय तीर्थक्षेत्र

साधक-साथी, संत-साध्वी सब धून मचावै अटंकी,
"सहजात्म स्वरूप" श्री परमगुरु के नाम-मंत्र में रंगी... जय जय तीर्थक्षेत्र

नीचे तीर्थसलिला बहती, तुंगभद्रा संसरती/संसरण करती
'ज्ञान, योग और भक्ति' त्रिवेणी, ऊपर रही है बहती... जय जय तीर्थक्षेत्र

सद्गुरु उपकारी सहजानंदघन और जगमाता धनदेवी की
भरी पड़ी है सदा जहाँ मस्ती, निजमस्ती, अलखमस्ती... जय जय तीर्थक्षेत्र[१]

"निशान्त"

---

१. "दक्षिणापथ की साधनायात्रा" : गुजराती से अनूदित सार-संक्षेप ।

आश्रमभूमि का स्वल्प परिचय : गुरुदेव श्री सहजानंदघनजी के स्वयं के शब्दों में
(मूल गुजराती से अनूदित)

जैनों, शैवों और वैष्णवों का प्राचीन तीर्थधाम यह हम्पी, वर्तमान मैसूर राज्य (कर्णाटक) के बेल्लारी जिले में 'गुंटकल हुबली' रेलवे लाइन के होस्पेट स्टेशन से ७.२५ मील (१२ कि.मि.) दूर पूर्वोत्तर कोने में बसा हुआ है। आवागमन हेतु एस.टी. बस सर्विस की पर्याप्त सुविधा है। पक्की सड़क, हरियाली भरा प्रदेश और ऐतिहासिक पुरातत्त्व सामग्री विश्व समस्त के यात्रियों को यहाँ खींचकर ले आते हैं।[२]

इस आश्रम का परिचय प्राप्त करने हेतु इस भूमि का भी परिचय प्राप्त करना अनिवार्य है। उस परिचय में उसकी ऐतिहासिकता जानने योग्य होने से सर्वप्रथम वही यहाँ प्रस्तुत हो रही है।

इस भूमि का इतिहास :

"आज से प्रायः ११,८६,४९३ वर्ष पूर्व, जब बीसवें तीर्थंकर भगवान श्री मुनिसुव्रत स्वामी इस भरत क्षेत्र में ज्ञानगंगा बहाकर भव्य कमलों को विकसित करते थे, तब उनके अनुयायी वर्ग में विद्याधर भी अच्छी संख्या में सम्मिलित थे। उस विद्याधर वर्ग के विद्यासिद्ध राजाओं में रामायण प्रसिद्ध वाली सुग्रीव जहाँ राज्य करते थे और उनकी राजधानी जो किष्किंधा नगरी (वानर द्वीप) कहलाती थी, वही यह विद्याधर भूमि।"

यहाँ की पहाड़ी शिलामय शिखर मालाओं में से कतिपय शिखरों के ऐतिहासिक नाम-ऋष्यमूक, गंधमादन, माल्यवन्त आदि पुरातत्त्व संशोधकों को मूक आह्वान दे रहे हैं।

अंतिम तीर्थंकर श्रमण भगवान श्री महावीरदेव के शासनकाल में ईसा की चौथी शताब्दि पूर्व यहाँ आंध्रवंशी राजा राज्य करते थे। उसके पश्चात् चौथी शताब्दि में कदम्बवंशी राजाओं ने राज्य किया, जो जैनधर्मानुरागी थे। उनके तत्कालीन नगरों के अंतर्गत उदयशृंगी नगर (था), कि जिसके अवशेष बेल्लारी जिले के हरपनहल्ली तालुके में हैं।

हरपनहल्ली गाँव से १६ मील दूर अमजीगाम से प्राप्त एक शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि यहाँ के कदम्बों और कांची के पल्लवों का परस्पर भीषण युद्ध हुआ था।

छठी शती के मध्यभाग में चालुक्यवंशी राजा कीर्तिवर्मन ने इस भूमि को अपने अधीन किया था। ये चालुक्यवंशी राजा प्रथमतः जैन थे परन्तु बाद में उन्हें बाह्य परिस्थितिवश शैव बनना पड़ा था।

उसके पश्चात् दसवीं शती के प्रारम्भ पर्यंत राष्ट्रकुट राजाओं ने यहाँ राज्य किया। दसवीं शती के उसके बाद के शेष समय में गंगवंशी और ग्यारहवीं शती में पश्चिमीय चालुक्यवंशी राजा यहाँ सत्ताधीश रहे।

चालुक्यवंशी राजा तैल-द्वितीय के शिलालेख हरपनहल्ली के आसपास के 'भागली' और 'कोगली' गाँवों के जिनालयों में उपलब्ध हैं। फिर कोगली-जिनालय में होयशालवंशी राजा वीररामनाथ के भी दो शिलालेख विद्यमान हैं।

२. अब तो 'विश्व पुरातन धरोहर संस्थान' बनने से यातायात सुविधाएँ बढ़ी हैं।

कालान्तर में भारत में उत्तर सीमा सरहद से मुसलमानों ने प्रवेश किया । वे उत्तर विभाग से भारत पर आधिपत्य जमाते जमाते यावत् यहाँ की तुंभगद्रा नदी के उत्तरी तट पर्यंत पहुँच आये ! नदी की उत्तरी सीमा में स्थित आनेगुंदी राज्य के राजा जम्बुकेश्वर को महमद-बिन-तुघलख और उसके सेनापति मल्लिकायर ने सन् १३१० में हराकर वह राज्य हड़प लिया ।

ऐसे विकट काल में तुंगभद्रा नदी के दक्षिण तट से लेकर कन्याकुमारी पर्यंत के हिन्दु राजाओं ने स्वरक्षा हेतु संगठित होकर यदुवंशी हुक्कराय को मंडलेश्वर बनाकर, जागरुक रहकर सन् १५६५ पर्यंत मुसलमानों को इस ओर प्रवेश करने नहीं दिया ।

हुक्कराय निःसंतान था । इसलिए उसने अपने अनुज बुक्कराय को अपना उत्तराधिकारी बनाया । आनेगुंदी नरेश जम्बुकेश्वर की पुत्री गौरांदेवी के साथ बुक्कराय का विवाह हुआ था । उसकी संतान परिपाटी चली ।

वे दोनों बन्धु विद्यारण्यस्वामी के भक्त थे । उनकी कृपा प्राप्त करके इस बंधुयुगल ने विजयनगर साम्राज्य की नींव डाली । सन् १३३६ में ६० मील के क्षेत्रफल विस्तार वाले विजयनगर का निर्माणकार्य प्रारम्भ हुआ । इसके पूर्व यहाँ हेमकूट को सटकर उत्तरीय खाई में हम्पी ग्राम और दक्षिण में कृष्णापुरम् ग्राम थे । हेमकूट तथा चक्रकूट नामक दो जैनतीर्थ भी थे तथा नदी पार भोट-जैन तीर्थ था । ये तीनों तीर्थ दिगम्बर संप्रदाय के अधीन थे । दिगम्बर जैन भट्टारकों के मठ भी थे ।

राजा बुक्कराय के समय में तीसरा एडवर्ड इंग्लैड की गद्दी पर था । बुक्कराय की पाट पर हरिहर द्वितीय और उसकी पाट पर राजा देवराय प्रथम राज्यारुढ़ हुए उस अर्से में यह नगर-निर्माण अच्छी तरह विस्तृत हो गया था ।

इस साम्राज्य के सिंहासन पर कुछ समय बाद राजा कृष्णदेवराय वीस वर्ष की आयु में विराजित हुए । वे महान पराक्रमी सर्वधर्मसमस्वभावी और उदार थे । सर्वधर्म संरक्षण-सम्बन्धित उसके शिलाशासन अद्यापि यहाँ विद्यमान हैं ।

सन् १५०९ से १५२९ तक के उसके शासनकाल में यह साम्राज्य अत्यंत विस्तृत हुआ । वर्तमान मैसुर राज्य, आंध्र राज्य, तमिलनाडु तथा महाराष्ट्र और केरल के कुछ मुख्य मुख्य भाग ये सारे इस राज्य के ही अंग थे । ओरिस्सा नरेश उसका अधीनस्थ था । संरक्षण विभाग में १० लाख सैनिक थे, उनमें से ३ लाख का लश्कर इस विजयनगर की छावनी में रहता था । यहाँ पाटनगर में नागरिक जनसंख्या १६ लाख से अधिक बतलाई जाती है ।

इस राजा को सुवर्ण से तोला जाता था और उसका दान होता था । उसके स्मृतिचिन्ह् के रूप में पथ्थर का विशाल तराजु ('तुलाभार') आज विद्यमान है । उस समय आठवाँ हेनरी इंग्लैंड की गद्दी पर था । अनेक विदेशियों ने इस नगर के दर्शन किए थे ऐसे उल्लेख मिलते हैं ।

उसके बाद इस साम्राज्य के सिंहासन पर अच्युतराय और बाद में अंतिम हिन्दु राजा सदाशिवराय आए । सदाशिवराय बहुत कमज़ोर था । उसकी कमज़ोरी का लाभ उठाने के लिए मुसलमान नवाब

आपसी मतभेदों का निवारण करके एकत्रित हुए । बीजापुर का अलि आदिल शाह, अहमदनगर का निझाम शाह, बिदर का बदीर शाह, गोलकोंडे का कुतुब शाह और बीहार का उम्मदशाह – इन पांचों ने मिलकर विजयनगर साम्राज्य के सैन्य का महासंहार किया । प्रजा को लूटा और इस नगर को तहस नहस कर दिया । नगर के स्थापत्यों को तोड़ते हुए प्रायः छ मास लगे थे । प्रजाजन बेचारे लाखों की संख्या में मौत के घाट उतार दिए गए । लाखों महालयों और हज़ारों मंदिरों को बारुद से उड़ा दिया गया..... ।

उस नगर की वैभवसंपन्नता की गुणगाथा सुनाते सैंकडों जिनालयों, सैंकडों शिवालयों, अनेक विष्णु-गणपति मंदिरों, हज़ारों गुफाओं, सैंकडों बाज़ारों, हज़ारों महालयों एवं कोट-परकोटों-किलों के ध्वंसावशेष यहाँ की पहाड़ी शिखरमालाओं और समतल भूमि में विस्तार से बिखरे हुए अद्यावधि प्रत्यक्ष देखे जाते हैं ।

उक्त ध्वंसावशेषों का यत्किंचित् शब्दचित्र इस प्रकार है :

१. जैनतीर्थ हेमकूट : यह एक ही पुढवीशिलामय, नाम मात्र की ऊँचाईवाला शिखर है, जिस की चारों और विशाल किले-कोट परकोटे और पूर्वाभिमुखी दो उत्तुंग प्रवेश द्वार हैं । उसमें सैंकड़ों जिनालय भग्न-अभग्न अवस्था में विद्यमान हैं, परंतु एक भी जिनबिम्ब बचा नहीं है । उनमेंसे कुछ जिनालयों को शिवालयों तथा शैवमठ के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है । कुछ सूने रिक्त खड़े हैं । जब कि कुछ नामशेष कर दिये गये हैं । शैवों के द्वारा जिनालयों के द्वार ऊपर के मंगल जिनबिम्ब घिस दिए गए हैं और उनके स्थान पर अन्य आकृतियाँ भी उत्कीर्ण की गईं हैं । शिलालेख मिटा दिए गए हैं । उनमें से एक पुढवी शिला में उत्कीर्ण शिलालेख में "ॐ नमो पार्श्वनाथाय" यह आदि वाक्य पढ़ा जा सकता है ।

वर्षाकाल में उसकी धोई गई मिट्टी में से सुवर्ण खोजकर मज़दूरी पाते हुए मज़दूर नज़रों से देखे हैं । इस कारण से ही इस शिखर का सार्थक नाम 'हेमकूट' प्रचलित है ।

हेमकूट के उत्तरीय भूभाग से सटकर तलहटी विभाग में कोट-कांगरों से सुसज्ज विशालकाय पंपापति शिवालय स्थित है, जिसका पूर्वाभिमुखी प्रवेशद्वार-गोपुरम् ११ मंझिल का एकसौ पैंसठ फीट ऊंचा है और उत्तराभिमुखी प्रवेशद्वार उससे छोटा है । इस मंदिर का निर्माणकार्य तीन तबक्कों में संपन्न हुआ दिखता है । संभव है कि नगरनिर्माण (विजयनगर-नगर निर्माण) के पूर्व यह श्री चंद्रप्रभ जिनालय हो और नगर-निर्माण के पश्चात् विद्यारण्य स्वामी की प्रेरणा से अमुक परिवर्तनों पूर्वक शिवालय के रूप में बदल दिया गया हो ।

इस शिवालय की पूर्व दिशा में प्राचीन जौहरी (झवेरी) बाज़ार के खंडहर दो श्रेणियों में विद्यमान हैं । उसे एवं मंदिर की उत्तर दिशा में आये हुए खंडहरों को व्यवस्थित करके दुकानों, होटेलों, धर्मशालाओं एवं मकानों के रूप में परिवर्तित कर और दूसरे भी नूतन मकान बांधकर अंतिम पैंतीस वर्षों से हम्पी ग्राम का पुनर्वसवाट चालु है । गाँव के उत्तरी तट पर बारहमासा प्रवाहवाली तुंगभद्रा नदी अस्खलित प्रवाह से बहती रहती है ।

२. जैनतीर्थ चक्रकूट : उक्त नदी का प्रवाह पंपापति शिवालय से आधा मील आगे बढ़ने के पश्चात् उत्तराभिमुख मुड़ता है। वहाँ उस जलप्रवाह में चक्र-भँवर-पड़ता है। उससे सटकर पूर्व दिशा में जो शिखर है उसे चक्रकूट कहते हैं। उसके नदी की ओर के विभाग में कुछ जिनालयों के ध्वंसावशेषों-खंडहरों की बिखरी हुई विस्तृत सामग्री दिखाई देती है। नदी के उसके बाद के पूर्वोत्तरीय मोड़ के आगे उस चक्रकूट पर विशाल मंडपों का समूह है वह जिनालयों का ही खंडहर है। नीचे कुछ अ-जैन अवशेष भी बाद में निर्मित किए हुए विद्यमान हैं।

इस शिखर के वायव्य कोने में खाई के ऊपर के भाग के चालु रास्ते को सटकर जैन मंदिरों का समूह है। इन सारे विद्यमान जिनालयों के सूचनादर्शक जैन बोर्ड को अ-जैन के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। शिलालेख मिटा देकर नष्ट किए गए हैं।

इस चक्रकूट का नदी की ओर का विभाग अति विकट है। इसलिए ही यहाँ के तीनों जैन तीर्थो का उल्लेख जिसमें है वह श्वेताम्बर-दिगम्बर उभय संप्रदाय को मान्य अति प्राचीन तीर्थवन्दना स्तोत्र 'सद्भक्त्या' में कहा है कि :

'कर्णाटे हेमकूटे विकटतरकटे, चक्रकूटे च भोटे।
श्रीमत् तीर्थकराणाम् प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे ॥'

शब्दार्थ : कर्णाटक देश में हेमकूट, विकटतर कटिभाग युक्त चक्रकूट तथा भोट ये तीन जैनतीर्थक्षेत्र हैं। वहाँ रहे हुए श्रीमान् तीर्थंकर देवों के चैत्यों की मैं प्रतिदिन वन्दना करता हूँ।

चक्रकूट के नीचे उत्तराभिमुख बहते जलप्रवाह को अ-जैन लोग चक्रतीर्थ कहते हैं और उसमें स्नान करके अपने भवोभव के पाप ताप शमित करने का संतोष मनाते हैं।

उक्त चक्रतीर्थ एवं वहाँसे जलप्रवाह में आधा मील दूर आये हुए भक्त पुरंदरदास मंडप के बीच नदी पार जाने के लिए प्राचीन पुल के अवशेष के रूप में दिखाई दे रही पथ्थर के स्तम्भों की हारमाला जहाँ जाती है वह भी विशाल जिनालय है जो खाली पड़ा है। वह और उसके निकटवर्ती विशाल गुफाएँ, मंडप-समूहों और ३० एकड़ मंदिर के हक्क की भूमि को एक शैव संन्यासी ने अपने अधीन कर ली और वहाँ मठ की स्थापना इस आश्रम की स्थापना होने के बाद कर ली है।

३. जैनतीर्थ भोट : उपर्युक्त मठ से प्राय: एक मील दूर उत्तर में आई हुई किला-परकोटा-युक्त शिखरमाला की दक्षिण खाई में एक चारों ओर से सीढ़ियोंयुक्त निर्मित विशालकाय जलकुंड और पश्चिममें उसके निकट में ही आया हुआ दूसरा छोटा जलकुंड है जिसे शैवों ने क्रमशः पंपा सरोवर और मानसरोवर के नाम से प्रचलित किया है। उन जलकुंडों से सटकर दक्षिण तट पर ऊपर के विभाग में विशालकाय जिनालय के मंडपों का समूह है उनमें जो जिनबिम्ब थे उन्हें अदृश्य किया गया है। केवल एकमात्र विशालकाय अधिष्ठायिका देवी की मूर्ति शेष बची है, जिसके ऊपर "जैन पद्मावती" नामक बोर्ड पैंतीस वर्ष पूर्व था ऐसे समाचार मिले हैं। उसे हटाकर उसे लक्ष्मीजी के नाम से प्रचलित कर एक अजैन बैरागी साधुने वहाँ मठ की स्थापना पैंतीस वर्ष से की है। मंदिर के पीछे की पर्वतश्रेणी में कुछ गुफाएँ हैं उनमें से एक का नाम शबरी गुफा प्रचलित करके

उस स्थान को शबरी आश्रम के नाम से पहचान कराया जाता है । यह स्थान ही भूतकालीन जैनतीर्थ भोट है ।

भोट एक प्रकार के पथ्थर की जाति का नाम है । इस प्रकार के पथ्थर की खदान वहाँ हो और पश्चात्काल में उस खदान को ही बांधकर जलकुंड बनवाये हों यह सम्भव है । इसलिए उस भोट पथ्थर की खदान के कारण ही वह तीर्थ भोट नाम से प्रचलित हुआ दिखता है । क्योंकि हेमकूट एवं रत्नकूट ये नाम भी उन सभी स्थानों में संबंधित वस्तु की उपलब्धि के कारण दिए गए हैं ।

अब तक के लेखकों ने इन तीनों में से केवल हेमकूट को ही जैनतीर्थ के रूप में वर्णित किया है । परंतु शेष दोनों का जैनतीर्थ के नाम से उल्लेख नहीं किया है । दिगम्बर संप्रदाय के प्राचीन लेखक ब्र. शीतलप्रसादजी लिखित 'मद्रास एवं मैसुर प्रान्त के प्राचीन जैन स्मारक' ग्रन्थ में भी अंग्रेज लेखकों के अनुसरण के कारण उक्त उभय तीर्थों का वर्णन नहीं है उसका कारण ऐसा प्रतीत होता है कि उन उन गवेषकों को यहाँ विशेष स्थिरता करने का-रहने का-अवसर मिला नहीं होगा ।

चक्रकूट की पूर्व दिशा में मंदिरों, महालयों के ध्वंसावशेष विपुल प्रमाण में विस्तृत विद्यमान हैं। उनमें से राजा विष्णुदेवराय निर्मित मंदिर अति विस्तृत सुरम्य और कलामय है । उसमें पाषाण रथ है जिसमे हाथी उत्कीर्ण हैं । बुंदेलखंड के दि. जैनों में गजरथ-महोत्सव की प्रथा आधावधि प्रचलित है उसका ही यह प्रतीक है । चार दीवारी में मंदिर की दीवार में एक छोटी दि. जैन मूर्ति भी विद्यमान है। कलापूर्ण सभामंडप में एक ही पथ्थर में २ से १६ पर्यंत अर्धविभागों में उत्कीर्ण स्तंभोंयुक्त अनेक स्तंभ हैं जिन्हें आस्फालन करने से अलग अलग सप्तस्वर ध्वनित होते हैं । (संगीत के सारेगम आदि स्वर) ।

हेमकूट की दक्षिण दिशा में स्थित विशालकाय विष्णुमंदिर से सटकर एक पक्की सड़क कमलापुरम् की ओर जाती है । उस पर एक मील चलने के बाद बांये हाथ पर कच्ची सड़क निकलती है । उस पर थोड़ा चलने के पश्चात् दांये हाथ पर बांधे हुए जलकुंड जैसे भाग में एक विशाल जिनालय विद्यमान है । उसमें प्रायः पानी भरा हुआ रहता है । उससे एकाध फर्लांग आगे बढ़कर किले में प्रवेश होता है । उसके कुछ खंडहरों को पार करने के बाद एक विशाल मंदिर कोट-कंगुरों से सज्ज है । उसके किले की दीवारों के भीतर-बाहर एवं मूलमंदिर की दीवारों के भीतर बाहर सर्वत्र राम-रावण के युद्ध का तादृश दृश्य उत्कीर्ण है । गभारे के पार्श्व की दो बाजुओं की दीवारों में दो जिनबिम्ब मनोज्ञ उत्कीर्ण हैं । उसके जैन मंदिर होने के चिन्ह होते हुए भी वह राममंदिर के नाम से प्रचलित किया गया है ।

उस मंदिर से बाहर निकलने पर आगे के मैदान के दोनों बाजुओं पर दो विभागों में विजयनगर साम्राज्य के भूतकालीन महाराजाओं के विशाल महल, शस्त्रागार, अश्वशालाएँ, गजशालाएँ, पाठशालाएँ, स्नानागार, उन्नत किले आदि के खंडहर विपुल प्रमाण में विद्यमान हैं । विशेष में यहाँ काष्ठ के बदले पाषाण में से उत्कीर्ण दरवाज़े भी थे, जिसका एक नमूना बचा हुआ है ।

गजशाला म्युझियम के रूप में परिवर्तित की गई है, जिसमें श्री बाहुबलीजी की एक प्रायः पांच फीट की खंडित खड्गासन प्रतिमा एवं दो एक जिनबिम्ब-शीर्ष केवल जैनों के अवशेष के रूप

में रखे गए हैं। शेष सारी वैदिक पद्धति की प्रतिमाएं विविध देवताओं की हैं। फौज़ी मनुष्यों-सैनिकों के लिए पथ्थर की शिला में ही उत्कीर्ण थाली-कटोरियाँ भोजनपात्र के रूप में संग्रहीत हैं।

म्युझियम के निकटवर्ती खेतों में भी कुछ जिनालयों के ध्वंसावशेष हैं। वहाँ से आधे मील दूर १० हज़ार की जनसंख्यावाला कमलापुरम् गाँव है। उसके नुक्कड़ से कंपली की ओर जाती हुई सड़क पर कुछ दूर दायें हाथ पर एक वृद्धा का जिनालय विद्यमान है, जिसकी रचना सिंहनिषादी है। उसे कन्नड भाषा में "गणिगित्ति बसदी" कहते हैं। उसके प्रांगण में दीपस्तंभ पर के लेख में निम्नानुसार हकीकत है :-

"मूल संघ, नंदीशाखा, बलात्कार गण, सरस्वती गच्छ में श्री पद्मनंदी आचार्य हुए। (उसके बाद उनकी शिष्य परम्परा के कुछ नाम देने के बाद बतलाया है कि) राजा बुक्कराय के पुत्र हरिहर द्वितीय, उसके दंडाधिपति चैत्र, तत्पुत्र इरुग दंडेश कि जो मुनि सिंहनंदी के परम भक्त थे, उन्होंने यह श्री कुंथु जिनालय निर्मित करवाया।" इस मंदिर में भी एक भी जिनबिम्ब नहीं है।

विजयनगर के पान-सुपारी बाज़ार के खंडहरों में एक शिलालेख है जिसमें सन् १३४८ में हुए राजा देवराय द्वितीय के द्वारा श्री पार्श्वनाथ का पाषाणमय जिनालय बनवाने का उल्लेख है।

म्युझियम के उत्तर की पहाड़ी खाई के उच्च प्रदेश में एवं पंपापति शिवालय के उत्तर में नदी तट पर कुछ जिनालयों के ध्वंसावशेष होने के चिन्ह हैं।

हंपी से ११ मील दूर नदी के बहाव (प्रवाह) के उद्गम की ओर विशालकाय तुंगभद्रा बांध (डॅम) है, जिसकी अपार जलराशि समुद्र की उपमा प्राप्त करती है।

वर्षाकाल में इस तुंगभद्रा नदी में से बाढ़ उतर जाने के बाद क्वचित् हीरे प्राप्त हो जाते हैं, जिन्हें खरीदने के लिए मद्रास के जौहरी चक्कर काटते रहते हैं।

हेमकूट की पूर्व दिशा में सड़क से सटकर लगभग तीस एकड़ के विस्तारवाला एक साधारण ऊंचाई वाला शिखर है जिसे रत्नकूट कहते हैं। उसके पूर्व छोर पर एक उन्नत शिखर है जिसे मातंगपर्वत कहते हैं। ठक्कर फेरु कृत रत्नपरीक्षा ग्रंथ में रत्नों की उत्पत्ति के स्थानों को दर्शाते हुए 'मायंग पव्वये' इस मातंग पर्वत का भी उल्लेख किया गया है। उसके कटिभाग में दो आरपार गुफाएँ हैं जिन में खुदाई किये जाने के चिन्ह हैं।

मातंग शिखर पर एक मंदिर और उसके चारों ओर मंडपों का समूह है। मंदिर में मातंगयक्ष की मूर्ति विद्यमान है, जिसे अजैन मातंगऋषि के नाम से पूजते हैं। संभव है कि उस मंदिर में सातवें तीर्थंकर श्री सुपार्श्वनाथ की स्थापना हुई हो और बाद में उसे अदृश्य किया गया हो !

रत्नकूट में नवरत्नों की खान होने की बातें पुरातत्त्व अन्वेषकों के पास से सुनी हैं। सांप्रत डामर रोड़ से रत्नकूट की ओर मुड़ते हुए दाहिने हाथ पर जो शिखर है उसका भी रत्नकूट में ही समावेश है, जिसमें दो लंबायमान बड़ी गुफाएँ और कुछ छोटी गुफाएँ हैं। इसके अतिरिक्त रत्नकूट के शेष हिस्सों में उत्तरी और दक्षिणी छोर पर भी कुछ गुफाएँ हैं। इन सब गुफाओं में कहीं कहीं खुदाई होने के चिन्ह हैं। फिर उनमें गुप्त मार्ग भी हैं जो अभी बंद हैं।

इस रत्नकूट पर चार प्राकृतिक जलकुंड, दो-तीन छोटे खेत और बाकी का पृथ्वी शिलामय विस्तार है। जिस पर वि.सं. २०१७ के आषाढ़ एकादशी के दिन श्रीमद् राजचंद्र आश्रम की स्थापना अत्यंत ही उल्लासपूर्वक योगानुयोग से हुई है।

इस आश्रम के प्रादुर्भाव के कारण :

इस आश्रम के प्रादुर्भाव में तथाप्रकार के कर्मोदय से यह देहधारी मुख्य निमित्त बना ।

मूलमार्ग-आत्मसमाधि मार्ग में प्रवेश करने, स्वानुभूति श्रेणी विकसित करने प्रयत्नशील ऐसे कुछ गुणानुरागी मध्यस्थ मुमुक्षुओं का आराधना-उत्साह बढ़ाने हेतु तथाप्रकार के अपने प्रेरक प्रसंग क्रमबद्ध लिपिबद्ध करने हेतु, माननीय मुरब्बी मुमुक्षुओं द्वारा सस्नेह अनुरोध होने से उनकी भावना को संतुष्ट करने, क्रमप्राप्त स्व-साधकीय जीवन के कुछ प्रेरक प्रसंग इस आश्रम की उत्पत्ति के कारण बनने से, यह देहधारी उसका शब्दचित्र यहाँ प्रस्तुत करता है ।

यह प्रस्तुतीकरण करते समय 'अपने को अभिमान न हो जायँ' इस पथ्यपालन की वर्तमान परिणति का उसे भलीभाँति ख्याल है । आत्मप्रशंसा के द्वारा आत्मवंचना करके भावी संसार की वह वृद्धि करना हरगिज़ नहीं चाहता ।

अपने अलौकिक अनुभवों के निखालस कथन को आत्मप्रशंसा में अगर गिना जाता तो पूर्व के ज्ञानियों ने एसी प्रवृत्ति की ही नहीं होती, उस कारण से दूसरे कोई उनके अनुयायी बन ही नहीं सकते थे । परिणामतः मोक्षमार्ग की परिपाटी पूर्ण रूप से बंद ही हो जाती ।

श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत ग्रंथ के अनुसार पत्रांक ६८० और वैसे दूसरे कुछ पत्रों में श्रीमद् ने जो कुछ स्वानुभूतियाँ अंकित की हैं वे जैसे वास्तविक आत्मज्ञान अभ्यासियों की दृष्टि से आत्मप्रशंसा नहीं है, वैसे उसी प्रकार से अब के बाद के काल में यावत् पांचवे आरे के अंत पर्यंत होनेवाले इस भरतक्षेत्र के ज्ञानियों में से जिन जिन को जितने अंश में ज्ञानप्राप्ति होगी, उनको उतने अंश में स्वयं को हुए अनुभवों का निखालस इकरार वे परार्थ हेतु करें तो वह आत्मप्रशंसा में नहीं ही गिना जाता । बाकी बगुला होते हुए भी जो हंस का दिखावा करेगा वह तो मुँह की खाएगा यह निर्विवाद है ।

चौथे गुणस्थानक से बारहवें पर्यंत साधकीय जीवन में दो प्रकार की धाराएँ होती हैं - एक अनादीय ऋण चुकाने रूप कर्मधारा और दूसरी प्राप्त चैतन्यवैभव सूचक ज्ञानधारा । इसलिए ही कर्मधारा के 'समलवासां' और ज्ञानधारा के 'निर्मलवासां' (निर्मल बाजु) इस प्रकार उभयस्थिति युक्त साधकीय जीवन होता ही होता है । उन दोनों बाजुओं को यथास्थान पर रखकर यदि जीवन-चित्रण किया जाय तब ही यह वास्तविक माना जाएगा - यह सिध्धांत इस लेखक की दृष्टि के बाहर नहीं है । परंतु यहाँ वह अपना जीवनचरित्र लिखने बैठा नहीं है, यथाप्रसंग अन्य को हितकर प्रेरक प्रसंग आलेखित करने बैठा है । इसलिए केवल अपनी उज्वल बाजु को दृष्टि में रखकर वह जो कुछ लिखे उसे हंसचंचुन्याय से चिंतन करने वाचकवृंद को बिनति कर वह अपना निजी वक्तव्य अब प्रस्तुत करता हैं ।

इस आश्रम के प्रादुर्भाव के निमित्तत्व में उसे प्रेरक था - आकाशवाणी का आदेश ।

("इस देह की उन्नीस वर्ष की आयु में-" इन शब्दों से यहाँ से गुरुदेव की 'आत्मकथा-आश्रमकथा' अनूदित कर आगे लिखी गई है) ।

प्रकरण-४ Chapter-4

आत्मकथा-आश्रमकथा

संक्षिप्त गुजराती में

गुरुदेव के स्वयं के हस्ताक्षरों में स्व-कथा

(परार्थ हेतु स्व-जीवन एवं स्वानुभवों की निखालस कथा)

इस देह की १९ वर्ष की आयु में यह देहधारी जब मोहमयी नगरी के भातबाज़ार में शा. लालजी जेठा कंपनी का विक्रय विभाग सम्हालता था, तब एक उत्तम क्षण पर एक अकथ्य निमित्त पाकर भवान्तर के अभ्यास-संस्कार से गोडाउन के एकान्त भाग में स्वविचार* में बैठे बैठे उसका देहभान छूटकर सहजसमाधि स्थिति हो गई। उस दशा में उसे ज्ञान की निर्मलता के कारण इस दुःखी दुनिया का भासन हुआ। उसमें इस भरतक्षेत्र के गृहस्थ जनों की तो क्या बात, साधु-संत भी आत्मसमाधिमार्ग से लाखों योजन दूर भटक गए दिखाई दिए। यह आत्मा भी पूर्व-आराधित समाधिमार्ग से विच्छिन्न पड़ गई दिखाई दी। तत्पश्चात् उसे यकायक प्रश्न स्फुरित हुआ कि, 'मेरा मार्ग कहाँ ?' तब उसे तत्काल आकाशवाणी सुनाई दी कि "..... यह रहा तेरा मार्ग ! जा ! सिद्धभूमि में जा ! शरीर को वृक्षतल में वृक्षवत् रखकर स्वरूपस्थ बनकर रह जा !" ॐ

बाद में इस आत्मा के प्रदेश प्रदेश में आनंद की लहरें उठीं ..... उसका शब्दचित्र खड़ा करने अबतक कोई शब्द उसे संप्राप्त नहीं हुआ है, क्योंकि वह अनुभव शब्दातीत था।

कुछ समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् किसी ग्राहक ने इस देह को झंझोड़ने से उसे पुनः देहभान प्राप्त हुआ। उक्त आदेश को उसने लक्ष्य में टंकोत्कीर्ण किया। क्रमशः उसे कार्यान्वित करने हेतु उसने हितैषियों और बुज़ुर्गों की आज्ञा मांगी, परंतु घर में ही रहकर साधना करने का सब का आग्रह दृढ़ रहा। फिर भी उनके इस आग्रह को परिवर्तित करने के अपने दृढ़ निर्धार से वह प्रयत्न करता रहा। फलस्वरूप वर्षभर के अंत में वे सब पिघले, फिर भी निराधाररूप में साधना करने में तो वे सहमत हुए ही नहीं; परंतु मुनिदीक्षा ग्रहण कर कुछ वर्षों पर्यंत गुरुकुलवास में बसकर, निर्भयदशा प्राप्त होने पर ही उक्त आदेश के अनुसार साधना करने की आज्ञा बुज़ुर्गों ने अतीव दुःखी हृदय से प्रदान की, जिसे इस देहधारी ने शिरोधार्य की। इस प्रकार कर्मसंस्कार से वडीलों के पूर्वऋण चुका कर वह अति हर्षित हुआ।

* "शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम।
और कहें क्या-कितना, कर स्व-विचार तो पाम।"
११७ श्री आत्मसिद्धिशास्त्र : सप्तभाषी आत्मसिद्धि (हिन्दी)

अब धर्मसंस्कार से जिनका ऋण शेष था, उन्हें वह खोजने लगा और खोज सका। वे थे खरतरगच्छीय श्री जिनरत्नसूरिजी महाराज आदि। चार महीनों का उनका परिचय साधकर वि.सं. १९९१ के वैशाख शुक्ला षष्ठी के पूर्वाह्न में महामहोत्सव से १२००० जनसंख्या की उपस्थिति में मुनिदीक्षा अंगीकार कर इस देहधारी को मुळजीभाई मिटाकर भद्रमुनि के नाम से घोषित किया गया।

गुरुकुलवास में बसते हुए विनयोपासनापूर्वक साधु समाचारी, प्रचलित प्रकरणग्रंथ, संस्कृत-प्राकृतादि व्याकरण, कोष, छंद, अलंकार, काव्य आदि ग्रंथ, जैन-अजैन न्यायग्रन्थ और दशवैकालिक आदि अल्पसूत्र कंठस्थ कर यह देहधारी गुरुगण में प्रीतिपात्र बना और सेवा के आदान-प्रदान पूर्वक दीक्षापर्याय के बारहवें वर्ष में धर्मऋण चुकाकर उऋण होकर आकाशवाणी के आदेश को आचार में कार्यान्वित करने वह गुफावासी बना।

गुफावास के लिए सर्वप्रथम वह वि.सं. २००३ के पोष शुक्ला १४ और सोमवार के दिन मारवाड़ के मोकलसर गाँव निकटस्थ पहाड़ी गुफा में प्रविष्ट हुआ। गुफावास के पूर्व ही उसे सहसा श्वासानुसंधानपूर्वक प्रतिक्रमण आदि धार्मिक अनुष्ठान करते हुए अनहदध्वनि प्रकट हो चुकी थी, जिससे गुफा में मंत्रस्मरण के प्राण और वाणी इन दोनों स्टेज को पार कर उसके तीसरे स्टेज रस में वह प्रविष्ट हुआ। इस स्थिति में देहभान छूट जाकर उसकी सहजसमाधि में अवस्थिति होती थी। समयमर्यादा की सीमाबन्दी का वह उल्लंघन कर गया और सहजानंद खुमारी का अनुभव कर वह सहजानंदघन बना !

१२ माह पश्चात् उसने वहाँ से अन्यत्र प्रयाण किया।

तत्पश्चात् क्रमशः अनेक देश-प्रदेश के अनेक गुफा-गह्वरों तथा एकान्त वनोपवनों में विचरण करते रहने पर उसे अनेक धर्म के त्यागी-तपस्वियों एवं सद्गृहस्थों का परिचय हुआ। उनमें से विशेष परिचय में आये हुए भावुकों ने स्वेच्छा से भक्तिभावनावश उन्हें संप्राप्त आध्यात्मिक अनुभव का लाभ अन्यों को दिलवाने हेतु, आश्रम पद्धति को उचित मानकर, अपने खर्च से आश्रम बांध देने की ओफर की; इतना ही नहीं, एक संन्यासी महात्मा तो अपने ही आश्रम को अर्पण करने हेतु तत्पर हुए। परंतु भीतर के आदेश के बिना उसने किसी का भी स्वीकार न किया।

(उक्त) प्रस्ताव रखनेवाले श्वे.दि. जैनों-अजैनों के नाम और स्थान निम्नानुसार हैं :-

१.	जोधपुर स्टेट	मोकलसर की पहाड़ी गुफा के निकटः वहाँ के कबीरपंथी शा. हंसराजजी ललवाणी की ओर से
२.	मेवाड स्टेट	चारभुजा रोड़ स्टेशन से १ मील दूर चंद्रभागा नदी तट पर विवर नामक स्थान में शा. लालचंद कपुरचंद कं. के भागीदार मुलचंदजी की ओर से
३/६.	मध्यप्रदेश	(१) भोपाल से ६० मील दूर विन्ध्याचल पर्वत की गुफाओं में वाडीगाम निवासी दि. जैनों की ओर से

		(२) साँची स्तूप के पूर्व में २८ मील पर राहतगढ़ समीप बेतवा नदी तट पर की गुफाओं में वहाँ के दि.जैनों की ओर से ।
		(३) जबलपुर निकटस्थ पनागर गाँव से ३ मील दूर पहाड़ में वहाँ के दि.जैनों की ओर से ।
		(४) चंदेरी निकट १ मील दूर खंदारजी-गुफा मंदिरों के समीप चंदेरी के दि.जैनों की ओर से ।
७	मैसुर स्टेट	बेलगाँव जिले के गोकाक कस्बा के निकट की जैन गुफाओं में वहाँ के दि.श्वे.जैनों की ओर से ।
८, ९	बीकानेर स्टेट	(१) बीकानेर से ३ मील दूर शिववाडी निकट साक्षरवर्य पुरातत्त्वाचार्य श्री अगरचंदजी नाहटा के अग्रज श्री शुभराजजी नाहटा द्वारा ।
		(२) बीकानेर से ५ मील दक्षिण में उदरामसर के धोराओं में ढ़ाई लाख की लागत से तैयार अपने आश्रम को उसके मालिक सुप्रसिद्ध वैद्यराज संन्यासी बाबा आसोपा द्वारा सादर भेट दिया जाना ।
१०, ११, १२	उत्तरप्रदेश	(१) देहरादून-मसुरी के बीच राजपुर के उपवन में देहरादून निवासी लाला कृष्णाचंद्रजी जैन रइस की ओर से ।
		(२) मसुरी की शिखरमालाओं में मसुरी से ३.५ मील नीचे जडीयानी गाँव के पास पू. क्षुल्लक श्री छोटे वर्णीजी महाराज के साथ में देहरादून निवासी लाला दीपचंदजी जैन आदि की ओर से ।
		(३) देहरादून से ५ मील पूर्व में सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक समरभूमि नालापानी शिखर पर स्थित संन्यासी आश्रम की १३ बीघा जमीन का दान वहाँ के महंत की ओर से और आश्रमनिर्माण देहरादून के दि.जैनों की ओर से ।
१३.	हिमाचल प्रदेश	ऋषिकेश-बद्रीनाथ के मार्ग पर कर्णप्रयाग और रुद्रप्रयाग के बीच सुनला गाँव समीप गंगातट पर स्थित पूर्वशिखर पर बीकानेर नरेश गंगासिंध के मित्र, अवेतनिक राज्यमान खजान्ची श्री प्रेमचंदजी सा'ब तथा श्री शुभराजजी आदि ।
१४.	बिहार प्रान्त	सिद्धक्षेत्र तीर्थराज श्री समेतशिखर की तलहटी मधुवन में पू. क्षुल्लक श्री छोटेवर्णीजी के साथ उत्तरप्रदेश के दि.जैनों की ओर से ।
१५.	सौराष्ट्र	सिद्धक्षेत्र श्री गिरनार के सहस्राम्र वन में बीकानेर के श्री शुभराजजी नाहटा की ओर से ।

१६.	ओरिस्सा	भुवनेश्वर से ७ मील पश्चिम में खंडगिरि गुफाओं में कलकत्ता निवासी श्री साहूजी और अन्य भक्तमंडल की ओर से ।
१७.	कच्छ स्टेट	रायघणगर गाँव की पहाड़ी गुफाओं में वहाँ के श्री जैन संघ की ओर से ।
१८.	नीलगिरि	कूनूर के सुरम्य शिखरों में वहाँ के रइस श्री अनोपचंदजी झाबक की ओर से ।

इन सब के अतिरिक्त इडरगढ़ की गुफाओं में, चंबलघाटी की अषादी पास की गुफाओं में, पंजाब में भीवानी शहर समीप और कर्नाटक में वरंग, कुन्दाद्रि आदि स्थानों में स्थायी होने का आग्रह उन सब स्थान-निवासियों ने अतीव किया था ।

फिर प्रथम से स्थापित श्रीमद् राजचंद्र आश्रमों में अपनाने हेतु इस देहधारी को स्निग्ध आमंत्रण भी संप्राप्त हुए थे, यथा :

१. श्रीमद् राजचंद्र विहारभवन इडर-घंटिया पहाड़ पर वहाँ के ट्रस्टी श्री मणिलाल माधवजी ने उदारता दर्शाई थी ।
२. श्रीमद् राजचंद्र आश्रम-अगास में स्थिर होने हेतु वहाँ के अधिष्ठाता पराभक्तिनिष्ठ पू.श्री ब्र. गोवरधनदासजी ने अपने देहविलय के दो माह पूर्व आगामी चातुर्मास के मिस से आमंत्रण पत्र श्री पावापुरी तीर्थ के चातुर्मास के दौरान इस देहधारी को प्रेषित किया था । उनका प्रथम परिचय वि.सं. २००४ में हुआ । दो महीने बाद वहाँ से धामण की ओर प्रयाण करते समय उन्होंने स्वयं को परंपरागत संप्राप्त एक अद्‌भुत निधि अत्यंत उल्लासपूर्वक इस देहधारी को सौंपी थी, जिसका वर्णन करने की इच्छा इस देहधारी ने स्थगित कर दी है ।
३. श्रीमद् राजचंद्र आश्रम-वडवा में स्थिर करने हेतु उस आश्रम के माननीय उत्साही अध्यक्ष गुणानुरागी श्री मोहनभाई ने इस देहधारी को वि.सं. २०१५ से अनेक बार आमंत्रित किया था ।
४. श्रीमद् राजचंद्र जन्म भवन-ववाणिया में स्थिर करने हेतु परम कृपाळु की ही अंगजा पू. मातेश्वरी श्री जवलबा ने अपने सरल वात्सल्य से इस बालक को बहुत नवाजा था । उपर्युक्त समस्त स्थानों में स्थिर होने हेतु इस देहधारी को जब जब आमंत्रण मिला, तब तब इस आत्मा में ऐसा अंतर्नाद सुनाई देता था कि, "तेरा उदय दक्षिण में है" । तथा प्रकार का प्रत्युत्तर भी श्री शुभराजजी आदि कुछ लोगों को दिया गया था ।

इस दक्षिण भारत के कर्णाटक प्रदेश में गोकाक की जैन गुफाओं में दि. २२-२-१९५४ से दि. २२-२-१९५७ पर्यंत ३ वर्ष अखंड मौनपूर्वक की साधना यह देहधारी पूर्व में करके गया था । परंतु तथा प्रकार के समवाय-कारण के अभाव से इस हम्पी तीर्थ पर वह नहीं आ सका । किन्तु अंततोगत्वा महाराष्ट्र के बोरड़ी गाँव में वि.सं. २०१७ के प्रथम ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा पर्यंत २१ दिवस के अनायास साधे गए चिरस्मरणीय सत्संग प्रसंग के पश्चात् वह महाराष्ट्र के कुम्मोज तीर्थ पर आया ।

वहाँ से गदग के कच्छी भावुक उसे गदग ले आए। वहाँ से बेल्लारी और होस्पेट के पूर्वपरिचित मारवाड़ी बन्धु वि.सं. २०१७ के द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी के दिन इस देहधारी को हम्पी लेकर आए।

सर्वप्रथम हम्पी के रत्नकूट की गुफाओं में ही प्रवेश किया और इस आत्मा में यकायक स्फुरणा हुई कि, "जिसे तू चाह रहा था वही यह तेरी पूर्व-परिचित सिद्धभूमि !"

पूर्वकाल में यहाँ पर अनेक साधकों ने विद्या की सिद्धियाँ प्राप्त की हैं अत: उसे विद्यासिद्ध भूमि – 'विद्याधर भूमि' कहा गया है। इस वातावरण के स्पर्श से हृदय नाच उठा ! अवसर देखकर साथ आए हुए भावुकों ने यहाँ पर ही चातुर्मास करने हेतु सादर अनुरोध किया जिसे इस देहधारीने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

इस उजड़े हुए स्थान को व्यवस्थित होने में कुछ समय लगने की संभावना के कारण समीपवर्ती हेमकूट पर संस्थित अवधूत मठ की एक गुफा में इस देहधारी ने निवास किया। वहाँ हम्पी तहसीलदार गुणानुरागी बसलिंगप्पा आदि सत्संग में पधारे। वे स्वयं लिंगायती होने से उन्होंने इस देहधारी की धार्मिक विचारणा समझने हेतु कुछ प्रश्न पूछे। सात्विक समाधान से प्रभावित होकर उन्होंने इस देहधारी को यहाँ पर ही स्थायी होने का सविनय आग्रह किया। फिर उन्होंने होस्पेट कोंग्रेस के वर्तमान प्रेसिडेन्ट एस.पी. घेवरचंद जैन आदि समक्ष ऐसा प्रस्ताव रखा कि, "अगर आप स्वामीजी को हम्पी में रहने का कबुल करवायें तो आश्रम के लिए मैं फ्री पट्टे पर ज़मीन दूँ" - इस प्रस्ताव को उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। और जमीन नि:शुल्क पट्टे पर प्राप्त हुई।*

फिर आश्रम की स्थापना, नामकरण, व्यवस्था, प्रचार

पर..... पट्टा किस नाम का बनवायें ? यह प्रश्न उपस्थित होने पर 'सहजानंद आश्रम' यह नाम सर्वानुमत से पारित हुआ, जिसकी जानकारी इस देहधारी को बाद में दी गई। उसने श्रीमद् के अलौकिक जीवन संबंधित कुछ वर्णन करके उनके प्रति सभी का आदरभाव उत्पन्न करवाया और बाद में श्रीमद् राजचंद्र आश्रम के नाम का पट्टा बनवाया जाये ऐसा निश्चित करवाया।

यद्यपि इस प्रदेश में तथा प्रकार के प्रचार के अभाव से श्रीमद् के प्रति श्रद्धाभक्ति रखनेवाले कोई नहीं थे, परंतु इस देहधारी के प्रति पूर्व परिचय के कारण से कुछ लोगों को विश्वास था इसलिए उन लोगों ने वह बात मानी। परंतु जो लोग गच्छ-मत के दृढ़ संस्कारी थे उनको उनके उपदेशकों ने इस सत्संग में आने से रोक दिया।

आश्रम निर्माण कार्य के लिए श्रद्धालुओं ने परस्पर मिलकर फंड एकत्रित किया और एक शिवभक्त गुत्ती तोटप्पा ने जी जान लगाकार एक महीने में गुफामंदिर तैयार करवाया। जिससे वि.सं. २०१७ के आषाढ़ शुक्ला एकादशी के दिन अति उत्साहपूर्वक इस श्रीमद् राजचंद्र आश्रम की स्थापना और गुफामंदिर में परम कृपाळुदेव के चित्रपट की स्थापना की गई..... ट्रस्टी मंडल रचा गया।

* यह सारा वर्णन 'उपास्यपदे उपादेयता' आदि में विस्तार से दिया गया है।

निर्माणकार्य का विकास.... आगंतुकों हेतु निःशुल्क भोजनव्यवस्था .... भक्ति-सत्संग में जनसंख्या का बढ़ना.... और जैनधर्म की प्रतिष्ठा की ध्वनि का इस प्रदेश के शैवों के कानों में टकराना..... !

उपसर्गकारक-विरोधी : विधर्मी भी स्वधर्मी भी !*

इस क्षेत्र में शैवों का एक छत्री राज्य था । उन्होंने जैन संप्रदाय के नामों-निशान मिटा दिए थे । उन लोगों में इन जैनों के पैर अचानक जमते हुए देखकर खलबली मच गई । 'हस्तिनां ताड्यमानेऽपि, न गच्छेत् जिनमंदिरम्' - इस अपने विरासत में प्राप्त सिद्धांत को वफ़ादार रहने वे संगठित हुए और अपने विरासती माने हुए शत्रुओं को उभरने से पूर्व ही नष्ट कर देने के लिए वे कटिबद्ध हुए । उन्हें उत्तेजित करनेवाला था होस्पेट निवासी सिरोही-मारवाड़ का एक धनसंपन्न सुनार । उसने तन-मन-धन खर्च करने के लिए अपने जाति-भाइयों को और लड़ाई लड़ने के लिए स्थानिक कन्नडभाषी लोगों को सज्ज किया ।

शाम, दाम और भेदनीति के द्वारा जब वे सफल नहीं हुए तब उन्होंने दंडनीति अपनाकर मारपीट और लूटपाट के द्वारा आश्रमवासियों को भगा देने के लिए गुंडों की एक टोली भेजी । परंतु आश्चर्य.... ! गुफामंदिर के आगे वह भीड़ जमा तो हुई, किन्तु गुफा के द्वार खुले हुए होने पर भी भीतर कोई प्रवेश ही नहीं कर पाया... !! ... उनके पैर रुक गए, हृदय काँपने लगे और वे बेचारे घबराकर चुपचाप पलायन कर गए..... !!!

आख़िर राज्याश्रय पाने हेतु वे यावत् मिनिस्टरों पर्यंत पहुँचे । "हमारे महादेवजी को अदृश्य करके एक जैन महात्मा ने हमारी दत्तात्रय गुफा का कब्ज़ा ले लेकर हम पर अन्याय किया है...." ऐसे आशय की पत्रिकाएँ छपाकर उन्होंने बहुत प्रचार किया । मैसुर राज्य, मद्रास राज्य और आंध्र प्रदेश से लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी इस आश्रम की मुलाकात हेतु । गुप्तचर और संरक्षक पुलिस विभाग के पदाधिकारियों, यावत् मिनिस्टरों तक का बिना निमंत्रण के इस आश्रम में, पधारना चल पड़ा... । परन्तु आश्चर्य ! परमकृपाळु की कृपा से किसीने न तो उपालम्भ का एक शब्द भी उच्चारित किया, न अप्रीति दर्शाई, विपरीत इसके उन सत्ताधीशों ने प्रभावित होकर, इस रत्नकूट पर जो सरकारी भूमि थी वह इस आश्रम को सादर भेंट की ।** उस भेंट में मुख्य योगदान था मैसुर राज्य के तत्कालीन गृहप्रधान श्री आर.एम. पाटील का । तब से वे प्रतिवर्ष आश्रम की मुलाकात पर आते रहते हैं । अभी उन्होंने जलसुविधा हेतु सरकार की ओर से नलयोजना भी मंजुर की है ।

* "बहु उपसर्गकर्ता प्रत्ये पण क्रोध नहीं.... ।"
क्रोध नहीं, प्रतिक्रिया नहीं, उल्टे करुणावश रक्षण-प्रदान ।
देखें, गुरुदेव, कितने प्रशांत करुणावान, कितने महान ॥ – प्र.

** ईसा मसीह की घटना का तादृश्य : जो विरोध करने आए, वे भक्त बन गए ।
"Those who came to scoff, remained to pray".

विरोधी परास्त हुए उससे घबराकर उस बेचारे सोनारे का हृदय अचानक बंद पड़ गया ।.... विरोधीमंडल बिखर गया !! उस सोनारे के बड़े भाई जयवंतराज परमकृपाळुदेव के अनुरागी बने और प्राय: प्रति रविवार तथा पूर्णिमा को और पर्युषण आदि पर्वो में सपरिवार सत्संग-भक्ति का लाभ लेते रहते हैं ।

इस एक परीक्षा से पार उतर रहे थे उसी दौरान अन्य कुछ परीक्षक भी कमर कसने लगे । उनमें से मुख्य परीक्षक निकले हुबली निवासी... कि जो अपने आप को कृपाळुदेव का मुख्य वारिसदार और आत्मज्ञानी मानते हैं । उन्होंने इस देहधारी को अपना आंज्ञाकित बनवाने और इस आश्रम का सर्वेसर्वा बनने हेतु प्रयत्न प्रारम्भ किये । प्रथम कपटभाव से बाह्यभक्ति दिखलाकर अपना प्रभाव स्थापित करने का अभिनय किया और धीरे धीरे अपना आधिपत्य जमाने की चेष्टा की । अपनी मनमानी नहीं होने से आखिर परमकृपाळु के जयन्ती अवसर पर, नये नये जुड़े हुए २५०-३०० मुमुक्षुओं की उपस्थिति में अपने १५-२० अनुयायीओं को कुम्भोज तीर्थ ले जाने का बहाना बतलाकर यहाँ ले आकर उधम मचाया । ट्रस्टियों ने प्रस्ताव पारित कर उसका बहिष्कार किया । तेरापंथी और बाईस समुदाय के अग्रणी श्रावकों की भी यहाँ उपस्थिति थी । उन्होंने भी उसे बहुत समझाया फिर भी वह टस से मस नहीं हुआ । चिपक कर बैठा रहा । उग्र बने हुए कुछ सभ्यों ने उसकी पिटाई करने की तैयारी की, जिन्हें इस देहधारी ने समझाकर, रोककर उस निंदकमित्र को रक्षण प्रदान किया, अन्यथा यहाँ महाभारत का कुरुक्षेत्र बन जाता था !

विरोधियों पर सत्य की विजय

उसके साथ आए हुए बेचारे शरमिंदा हो गए और (उन्होंने) ज़ाहिर किया कि हमें वह कपट-धोखा कर यहाँ ले आये । आखिर ऊठकर वे सब चलते बने जिससे उसने भी रास्ता नापा । इस प्रकार पूर्वग्रह बांध कर इस आश्रम की नींव उखाड़ डालने की उसने प्रतिज्ञा की ।*

प्रतिज्ञापालन हेतु हज़ारों रुपये खर्चकर अनेक पत्रिकाएँ क्रमबद्ध छपवाकर उसने प्रचारित कीं । अनेक ग्राम-नगरों में अपने मित्रों को प्रचारार्थ भेजा । प्रचारित पत्रिकाओं में उसने अपना छलकनेवाला आत्मज्ञान ऊँडेला । इस देहधारी को अनेक कलंक देकर उसे नीचा दिखाने में कोई कसर न छोड़ी* । परिणाम स्वरूप गच्छवासियों को परमकृपाळुदेव की निंदा करने का मौका मिला । उन्होंने गाँव गाँव घूमकर, यहाँ आनेवाले जिज्ञासुओं को रोकने में अपनी शक्ति खर्च कर दी । बहुतों से हम्पी आश्रम में नहीं जाने की प्रतिज्ञा लिवायी ।

* परमकृपाळु प्रति प्रार्थना : "आवो आवो गुरुराज, मारी झुँपडीए; राखवा पोतानी लाज मारी झुँपडीए
"जंबु भरते आ काळे प्रवर्ते धर्मना ढोंग समाज.... मारी. १
तेथी कंटाळी आप दरबारे, आव्यो हुं शरणे महाराज... मारी. २
छतां मूके ना केडो आ दुनिया, अंध परीक्षा व्याज... मारी. ३
नामधारी कंई आपना ज भक्तो, पजवे कलंक दई आज... मारी. ४
न हो कोई अंतराय, मारा मारगमां, नहीं तो जाशे तुज लाज... मारी. ७
मूळ मारग निर्विघ्ने आराधुं, सहजानंद स्वराज..." मारी. ८

(सहजानंद सुधा : ६३/५९)

इस प्रकार विरोधी मित्रों के प्रचार के बावजूद यहाँ के आगंतुकों की संख्या में प्रतिवर्ष वृद्धि ही होती दिख रही है ।

उपर्युक्त उभय प्रकार के विरोधी प्रचार को रोकने के लिए इस देहधारी ने किसी प्रकार की प्रतिक्रिया की ही नहीं, क्योंकि उसे पूर्ण विश्वास है कि आख़िर सत्य की ही विजय होती है ।

वात्सल्यमूर्ति तोळप्पाचार्य द्वारा आश्रम को समग्र रत्नकूट-भूमि का महादान :

प्रथम चातुर्मास पूर्ण होने के पश्चात् रामनवमी के दिन हम्पी को सटकर आई हुई कृष्णापुरम् जागीर के मालिक, अनेगुदी राज्य के राजगुरु रामानुज संप्रदाय के वयोवृद्ध आचार्य वात्सल्यमूर्ति श्री तोळप्पाचार्य ने श्री रामनवमी के प्रसंग पर इस देहधारी को होस्पेट की जाहिरसभा में ले जाकर प्रवचन करवाया ।

उस प्रवचन में आध्यात्मिक दृष्टि से रामायण के पात्रों का वर्णन सुनकर वे प्रमुदित हुए । उल्लास में आकर उन्होंने खड़े होकर घोषणा की कि, "हम्पी रत्नकूट पर हमारे हक की जो भूमि है वह जितनी चाहिए उतनी आज से पूज्य स्वामीजी के चरण में सादर भेट धरता हूँ ।" सभाजनों ने तालियों की गड़गड़ाहट पूर्वक इस भेट की अनुमोदना व्यक्त की ।

इस प्रकार विरोधी मित्रों की कृपा से ही इस देहधारी की सारे मैसुर राज्य में प्रसिद्धि होने पर इस आश्रम को ३० एकड़ के विस्तारवाला यह सारा रत्नकूट "फ्री ओफ मार्केट वेल्यु"-इस तरह निःशुल्क प्राप्त हुआ ! इस के साथ ही परमकृपाळु देव के नाम की सुगंध दक्षिणभारत में सर्वत्र प्रसरित हो गई ।

इस आश्रम के साथ श्रीमद्-नाम-संयुक्तिकरण क्यों ?
नाम जोड़ने के कारण

पूर्वकाल के जन्मान्तरों में परमकृपाळु देव, श्री तीर्थंकरदेव आदि अनेक महाज्ञानी सत्पुरुषों के महान उपकारों के नीचे यह देहधारी अनुग्रहबद्ध रहा है । उनमें से दो सत्पुरुषों का उपकार उसे इस देह में बारंबार स्मृति में आया करता है – एक स्वलिंग संन्यस्त युगप्रधान श्रीमद् श्री जिनदत्तसूरिजी और दूसरे गृहलिंग संन्यस्त युगप्रधान श्रीमद् श्री राजचंद्रजी । इन उभय ज्ञातपुत्रों की असीम कृपा इस देह पर वारंवार अनुभव करती हुई यह आत्मा, धीमी गति से फिर भी सुदृढ़रूप से आध्यात्मिक उन्नति श्रेणी पर अग्रसर हो रही है ।

युगप्रधान श्रीमद् श्री जिनदत्तसूरिजी कि जो ८०० वर्ष पूर्व इस भारतभूमि के लाखों भव्यों को श्री तीर्थंकरों द्वारा निर्दिष्ट आत्मसमाधिमार्ग पर आरुढ़ कराके वि.सं. १२११ की आषाढ़ शुक्ला एकादशी के दिन मानवदेह छोड़कर गए, वे वर्तमान में श्री देवेन्द्रदेव नामक त्रायत्रिंशक देव हैं । प्रथम देवलोक की सुधर्मसभा में शक्रेन्द्र के गुरु स्थान को शोभित कर रहे हैं । वे पूर्व के ऋणानुबंधानुसार इस बालक को प्रत्यक्षरूप से अज़ीब प्रेरणाओं के साथ प्रतिदिन आशीर्वाद प्रदान करते रहते हैं । उनकी ही प्रेरणा से यह देहधारी जिनका निश्चयात्मक आश्रय ग्रहण कर (सांप्रदायिक) गुटबन्दी से

मुक्त रहकर निर्भय रूप से आराधन कर रहा है उन श्रीमद् राजचंद्रजी के असीम उपकार परंपरा की स्मृति हेतु उनका पवित्र नाम, अपने निमित्त से उत्पन्न हुए इस आश्रम के साथ जोड़ देने का साहस इस देहधारी ने किया है ।

उन ज्ञानावतार-अनुग्रह से पूर्वज्ञान-प्राप्ति

उन ज्ञानावतार की असीम कृपा से यह देहधारी निश्चयात्मक रूप से ऐसा जान सका है कि पूर्व के कुछ जन्मों में केवल पुरुषवेद से इस आत्मा का उन महान पवित्र आत्मा के साथ व्यवहार से निकट का सगाई सम्बन्ध और परमार्थ से धर्म सम्बन्ध घटित हुआ है । उनकी असीम कृपा से यह आत्मा पूर्व में अनेकबार व्यवहार से राजऋद्धियाँ और परमार्थ से महान तप-त्याग के फलस्वरूप लब्धिसिद्धियाँ अनुभव कर चुकी है ।

राजऋद्धियों से उद्‌भव होनेवाले अनर्थों से बचने हेतु पूर्वजन्म में आयुबंध काल में किये हुए संकल्प से यह देहधारी इस देह में एक खानदान किन्तु उपजीवन में साधारण स्थितिवाले कच्छी वीसा ओसवाल अंचलगच्छीय जैन कुटुम्ब में जन्मा है । स्तनपान करते करते वह जननी-मुख से श्रवण कर नवकार मंत्र सीखा ।*

शिशु-किशोरवय चर्या और पूर्व-परिचित श्रीमद्-वचनामृत प्रभाव :

जिस मंत्र के प्रताप से केवल २.५ वर्ष की आयु में वह स्वप्न अवस्था में संसारकूप का उल्लंघन कर गया.....

..... ४ वर्ष की आयु में उसे खुले नेत्र से प्रकाश प्रकाश दिखाई दिया .....

... ७-१० वर्ष की आयु से वह पौषधोपवासव्रत पूर्वक सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करने लगा....

.... १२ वर्ष की आयु में उसे श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत ग्रंथ पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिसे पढ़ने पर वह शिक्षा पूर्व-परिचित प्रतीत हुई । उसमें से "बहु पुण्य केरा पुंजथी.... निरखीने नवयौवना.... क्षमापना पाठ" इत्यादि उसने सहसा कंठस्थ किए । "मैं कौन हूँ, कहाँ से हुआ ?" (हुं कोण छुं, क्यांथी थयो ?) यह गाथा उसकी जीभ पर लगी खेलने एवं "निरखीने नव यौवना"—इस शिक्षाबल से लघुवय में संपन्न सगाईवाली कन्या का विवाहपूर्व ही देह छूट जाने पर, दूसरी कन्या के साथ हो रहे सगाई सम्बन्ध को टालकर वह आत्मसमाधि मार्ग पर अग्रसर हो सका; और १९ वर्ष की आयु में उसे मोहमयी नगर नें अनायास सहजसमाधि दशा का साक्षात्कार हुआ, जिसका वर्णन वह पहले कर चुका है ।

देशावधिज्ञान-आत्मज्ञान-प्रदाता मुनिजीवन की चंद अलौकिक, अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ

वयमर्यादा के इक्कीसवें वर्ष में यह देहधारी जैन श्वेताम्बर साधु बना । उसके पश्चात् उसे अनेक अद्‌भुत अलौकिक अनुभव हुए । उनमें से चंद महत्त्वपूर्ण अनुभव, साहसिक साधकों को उत्साहित करने यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं :-

* घोळां धावण केरी धाराए धाराए नीतर्यो नवकारनो रंग ।
हो राज ! मने लाग्यो जिनभक्तिनो रंग ॥

१. आकाशवाणी का अनेक बार परिचय ।

२. अनहद ध्वनि, दिव्य दर्शन, दिव्य सुगंध, दिव्य सुधारस और दिव्यस्पर्श — इन पांचों दिव्य विषयों का साक्षात्कार ।

३. भावि में होनेवाली घटनाओं का वर्तमान में क्वचित्-अनायास भासन ।

४. इन्द्र पर्यंत के देवलोकवासियों का अनेकबार प्रत्यक्ष मिलन ।

५. चैतन्य-टेलिविझन पद्धति से परम कृपालु श्रीमद् राजचंद्रजी का प्रत्यक्ष दर्शन और आशीर्वाद ।

६. श्री सीमंधर प्रभु के आशीर्वाद से एक विशिष्ट पद की अनुभूति ।

७. महाविदेह क्षेत्र इस दुनिया से अलग स्वतंत्र दुनिया है ऐसी अचल प्रतीति ।

८. आत्मलब्धि से श्री अष्टापद तीर्थगमन और वन्दना ।[१]

९. नर्कागार से लेकर सिद्धालय पर्यंत के जीवसमुदाय की बद्ध से मुक्त पर्यंत की विविध अवस्थाओं का प्रत्यक्ष तादृश दर्शन ।[२]

१०. आत्मा और कर्ममल का तथा शरीर का भिन्न-भिन्न रूप में प्रत्यक्ष दर्शन ।[३]

११. धर्मास्तिकाय आदि अरूपी जड पदार्थों का प्रत्यक्ष दर्शन ।

१२. एकाकी विहार में विचरण करते हुए वन में मार्ग भूल जाते समय साकार स्वरूप का प्राकट्य और मार्गनिर्देशन; विधिवत् नदी-जल उल्लंघन करते हुए चम्बल के अथाग जल में देह का डूब जाना और तत्काल दैविक शक्ति के द्वारा शरीर को ऊपर उठा लेना, नौका-प्राकट्य होना और उस नौका द्वारा नाविक के रूप में दिव्यदेहधारियों का इस देह को उस पार पहुँचाकर अदृश्य हो जाना; पर्वतमालाओं में आसनस्थ रहते हुए सिंह, चित्ता आदि हिंसक पशुओं का सन्मुख आ जाना और फिर भी अडोल आसन में रहकर निर्भयत्व; फणीधर नाग का शरीर को स्पर्श कर लिपटकर बैठना' फिर भी समाधिस्थिति का बना रहना-देहभान प्राप्त होने पर उसका चुपचाप चला जाना; व्याधिकाल में दिव्य देहधारियों का प्रकट होना और आत्मनिष्ठा में बलप्रदान करना....[४] इत्यादि इत्यादि — यह सारा परमकृपालु की कृपा का ही फल है, इस लिए इस आश्रम के साथ उनका पावन नाम जोड़कर, उनकी सद्‌भावस्थापना को उपास्यपद पर प्रतिष्ठित कर के यह देहधारी एकनिष्ठापूर्वक आराधना कर रहा है— करा रहा है ।[५]

---

१. सन्दर्भ : स्वयं-स्वर में 'अष्टापद रहस्य दर्शन' नूतन सी.डी. में भी ।
२. सन्दर्भ : स्वयं-स्वर में 'आत्मदर्शन से विश्वदर्शन' नूतन सी.डी. में भी ।
३. सन्दर्भ : स्वयं-स्वर में 'आत्मसाक्षात्कार का अनुभव' १ से ५ सी.डी. सॅट ।
४. सन्दर्भ : स्वयं-स्वर में अनेक अन्य सी.डी. + स्वयंलिखित पत्र, लेख एवं 'अनुभूति की आवाज़' आदि पुस्तक में ।
५. सन्दर्भ : स्वयंलिखित "उपास्यपदे उपादेवता" (गुजराती + हिन्दी) पुस्तक में ।

प्रकरण-५ Chapter-5

स्वयंप्रज्ञ, स्वयंभद्र प्रतिमा के धारक सहजानंदघन भद्रमुनि

प्रा. प्रतापकुमार टोलिया

परमगुरुओं के परमप्रज्ञा के पथ पर चलकर वे ही परा-प्रदेश में पहुँच पाते हैं जिन्होंने अशेष होकर, अपना सर्वस्व समर्पित कर, परम शरण ग्रहण किया हो ।

परमप्रज्ञा के रत्नत्रयी पथ के ऐसे अनुपमयात्री इस काल में यदि कोई हो तो वे थे स्वयंप्रज्ञ, स्वयंभद्र प्रतिमा के धारक योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानंदघनजी, भद्रमुनिजी ।

बाह्य गिरिकंदराओं गह्वर-गुफाओं में निर्भय होकर एकाकी विचरकर, परमशरणसमर्पण कर, अंतस्तल की निगूढ़ गहराईयों में उतरकर, अंतस्‌गुफामें प्रवेश कर उन्होंने पा लिया था अपने भीतर ही लहराता हुआ वह परिशुद्ध चैतन्य का सागर, स्वात्मा का लोक, लोकालोकप्रकाशक अंतरालोक ।

परा-प्रदेश का, कैवल्य का यह अंतरालोक, इस बाह्यसृष्टि में उनको रखते हुए भी, देहातीत महाविदेह की दशा और दिशा में अवस्थित किये रखता था ।

उनकी इस विरल योगसाधना ने, 'योग' से 'अ-योग' की ओर ले जानेवाली आत्मसाधनाने, उन्हें इस काल के एक अद्वितीय आत्मरत्न बना दिया था, परन्तु वे रहे सर्वथा निस्पृह, सर्वथा गुप्त, सर्वथा अ-प्रचारक स्वयं के । अतः उन्हें चंद सच्चे खोजी ही खोज पाये, जान पाये, समझ पाये । मोकलसर उत्तरापथ के अष्टापद कैलाश, पूर्वपथ के बिहार-उत्कल (पावापुरी-खंडगिरि-उदयगिरि) एवं दक्षिणापथ के कर्णाटक गोकाक एवं रत्नकूट की उपर्युक्त बाह्यगिरिकंदराएँ उन्हें जीवनभर अपने में बसाकर धन्य होतीं रहीं । मानों अतीत के अनगिनत निर्ग्रंथ योगियों के आवासों के पश्चात् युगों से अनावासीय पड़ी हुई ये गिरिकंदराएँ पुनः जीवित हो उठी थीं । क्रहाँ आता उनका ऐसा लाड़ला जोगी-सपूत उनकी खबर लेने इस पंचम कलिकाल में ?

सूनी पड़ी इन गुफा-कंदराओं ने अपने इस पावन सपूत को बहुत कुछ दिया, अपने गुप्त अनुभूति-भंडार खोल खोलकर दिया, उसे अंतस् संपदा से संपन्न, सराबोर कर दिया !

श्रीमद् सद्गुरु-कथनः" जहाँ सर्वोत्कृष्ट शुद्धि, वहाँ सर्वोत्कृष्ट सिद्धि !"

सिद्धसम्यग्दृष्टि, योगसमाधि की अनुभूतिभरी अन्तर्दृष्टि-दिव्यदृष्टि और इससे उस पर सदा होती रही – जगजनों के लिये एक अज़ीब 'पहेली' सी - सौगन्धिक दिव्य वृष्टि ।

वर्तमान काल में कर्णाटक की कंदराओं के महाप्राण-ध्यानी युगप्रधान आचार्य भद्रबाहु की पावनरज से धूलि घूसरित ऐसी इस धरा पर पधारे हुए प्रायः अज्ञात ऐसे भद्रमुनि-सहजानंदघन समान दुसरे युगप्रधान महा-सपूत को जो खोजी थोड़े-से भी समझ पाये, पहचान पाये, उन्होंने अल्पांश में भी, इस गिरि-योगी की गुण-गरिमा को व्यक्त कर दिया । ऐसे एक दर्शक खोजी लिखते हैं :-

" ०००० योगीन्द्र युगप्रधान सत्गुरु श्री सहजानंदघन स्वामी ऐसी ही एकमात्र महान् विभूति हैं जिनकी आत्मसाधना सौगन्धिक दिव्य वृष्टि की सिद्धि से अभिभूत है, जो प्रशस्त आत्मसाक्षात्कारमय अलौकिक पथ के पंथी हैं । सतत् जागरुक अभेद चिन्तन की अन्तर्दृष्टि ने जिनके अनुराग व विराग के अन्तराल क्रो समाहित कर लिया है ।"

कैसे कैसे, कितने कितने गुणों और विशेषताओं से युक्त हैं यह आत्मसाक्षात्कारमय अलौकिक पथ के पंथी ?

अघाते नहीं, थकते नहीं उपर्युक्त खोजी दर्शक उनका बहिरांतर वर्णन करने से —

"सम्यगदृष्टि, स्थितप्रज्ञ, आध्यात्मिक व भौतिक अस्तित्व की विषम विभिन्नताओं से परे सद्ध्यानाभ्यासी महान विचारक, रीति-नीति-परम्परा-धर्म-जाति प्रभावित विभिन्न सामाजिक मान्यताओं व चिन्तन परम्पराओं से पराभूत गर्हित ज्ञान विज्ञान व दर्शन की जटिलताओं के मर्मज्ञ, प्रमाद आलस्य व क्षिप्रकारिता जैसे मानवीय दोषों से रहित, प्रमत्त सैद्धान्तिक तार्किक जाल की प्रणाली से सर्वथा मुक्त, मानापमान रहित, देव प्रकृति तुल्य गुरुदेव अविस्मरणीय योग्य दर्शन हैं । अमरत्व की दीपशिखा हैं । पवित्रता की मूर्ति हैं । ज्ञान की अविरल अमृतमयी वारिधारा से ओतप्रोत हैं । आपका संस्पर्श, आपका साहचर्य, वासनालिप्त सर्वसाधारण विकृत मानव धातु के लिए पारसमणि है । मात्र दर्शन ही मुक्तिपथ है । निर्धूम अग्निशिखा के सदृश सतत ज्वलित ज्ञान के अप्रतिम तेज की आभा से आलोकित (उनकी) वाणी के पवित्र मधुर उद्गार मोह-तिमिर नाशक हैं । जड़ता, दीनता व मानसिक दुर्बलताएँ, तथा भय, क्रोध, लोभ व मिथ्या अभिमान प्रसूत सांसारिक वासनाएँ जिनके तपःपूत सदुपदेश से विनष्ट हो जाती हैं, जिनके जीवन का सदाचरण श्लाध्य है, जिनका दर्शन श्रेय, प्रेय व शिवत्व की महिमा से मंडित है, ऐसे अविस्मरणीय मानवीय महान विभूति का दर्शन प्रार्थनीय है । उनके सदुपदेश श्राव्य हैं, साहचर्य अभिप्रेत है । विचारक हो या समाज-सुधारक, श्रद्धालु हो या भक्त, दार्शनिक हो या विद्वान्, चिंतक हो या मनीषी, रागी हो या विरागी, भोगी हो या मुक्त, सभी सामान्य व असामान्य व्यक्तियों के लिए परमादरणीय, परमाराध्य-सर्वविदित विश्रुत स्वामी श्री सहजानंदघनजी एक साथ ही योगी, साधक व विचारक, रागद्वेषरहित आचार्य गुरु व सद्धर्म-प्रचारक विभूति हैं ।"

फिर यह खोजी दर्शक इस महा-विभूति की, आज के 'क्रान्ति क्रान्ति' चिल्लानेवालों के लिये चिंतनीय ऐसी युगचिन्तना, युगावश्यक सर्वादरणीय उपयोगिता दर्शाते हैं :-

"॥ ००० वस्तुतः क्रान्ति का क्षेत्र बाहर नहीं, भीतर है । वह आत्मकेन्द्रित है, भौतिक नहीं । ध्वंसात्मक भौतिक क्रान्ति शान्ति नहीं प्रदान कर सकती, प्रत्युत् आध्यात्मिक क्रान्ति ही सृजनात्मक शांति को जन्म दे सकती है । अतः विचारों के इस विषम युग में आत्मनिष्ठायुक्त स्थिर अव्यवसायात्मिका प्रज्ञा की आवश्यकता है और यह प्रज्ञा बिना ऐसे दिव्य दृष्टि और पारदर्शी चेतना के सान्निध्य से प्राप्त नहीं हो सकती । परमपूज्य युगप्रवर आचार्यपाद गुरुदेव की वाणी में ओज है प्रसाद और माधुर्य भी । अपनी साधना, तपस्या तथा चिन्तन से आपने अपने विचारों को

तपाया है, स्थिर और दृढ़ किया है । ०००० सद्गुरुदेव युगप्रधान आचार्य हैं । युग की समस्त चिन्तन परम्परा का उनमें आवास है । सभी धर्म, सभी जाति, सभी विचार उनमें एकरस हैं । वे तन्मय हैं अतः एकनिष्ठ हैं । उनका ज्ञान एकदेशीय नहीं, सार्वभौम है । चरित्रपूत है । भावनाएँ पवित्र हैं, कार्य अनुसरणीय है, ज्ञान स्मरणीय है । वस्तुतः त्रिकालदर्शी समय और स्थान से परे होता है । जाति और धर्म से पृथक् होता है । अतः मानवकृत वर्गीकरण की संकुचित परिधि को पार कर निःसीम ब्रह्मांड उनके लिये हस्तामलकवत् है ।''[१]

ऐसे योगीन्द्र, युगदृष्टा युगप्रधान महामानव को, बिना सदेह मिले भी, अंतर्दृष्टि से पहचानकर, उनके आत्मसाक्षात्कारमय अलौकिक आत्मपथ पर विचरण कर रहे दूसरे एक नूतन खोजी दर्शक साधक इस प्रकार वर्णित करते हैं –

आज वर्तमान युग में हमारा सारा साधु समाज जहाँ पूजा-प्रतिष्ठा-उत्सव-महोत्सवों और बाहरी क्रियाकांडों के बहाव में बहा जा रहा है, वहाँ यह साधु दिन में एकाध बार आयंबिल का रुखा-सूखा टुकड़ा खाकर एकान्त गिरिकंदराओं में मौन विचरण कर साधना की गहराईयों में उतरकर आत्मानुभूति के मोतियों को पाता रहा है.... आत्मज्ञान के शिखरों को छूता रहा है... महावीर और राजचन्द्र के 'मूल मारग' को पाकर उजागर करता रहा है ।... ऐसे साधना-सिद्ध साधु-साधक आज कहाँ ?''[२]

यही बात इस नूतन खोजी दर्शक साधक ने, सहजानंदघनजी के पदों की पुस्तक 'सहजानंद सुधा' की भूमिका में लिखी है बड़े भावोल्लास के साथ –

योगीराज सहजानंदजी को मैं कलियुग में साधना का प्रतीक मानता हूँ । मेरी समझ से, साधना के लिए उन्होंने जितने प्रयत्न किये वह अपने आप में अनुकरणीय हैं । साधना के लिए किस क्षेत्र का चयन किया जाए इसके लिए उन्होंने देश के कई स्थानों का भ्रमण किया । वे अनेक स्थानों पर तपे, पर अन्ततः हम्पी का अरण्य और कन्दराएँ उन्हें रास आईं । मोकलसर की जिस सुनसान गुफा में वे तपे थे उसे देखकर मुझे लगा कि इस भयंकर एकांत में रहकर साधना करना तभी सम्भव है, जब कोई व्यक्ति भय और लालसाओं पर विजय प्राप्त कर चुका हो । सिंह-भालू की बात न भी उठाएँ, पर इतना तो तय है कि वहाँ सर्प, बिच्छु, नेवले तो स्वच्छन्द विचरते ही थे ।

योगीराज सहजानंद के अध्यात्मप्रिय दृष्टिकोण और जीवन-शैली से मैं प्रेरित तो था ही, हम्पी में रहने से मुझे अहसास हुआ कि ये वास्तव में निर्भय और अध्यात्मनिष्ठ थे । स्वयं मैंने वहाँ बाघ को देखा है । यह अलग बात है कि मैं बंद कमरे में सुरक्षित था, जब कि सहजानंदजी वहाँ तब रहे थे जब वहाँ कोई मकान या कमरा नहीं था ।

१. 'सर्वदर्शी' द्वारा लिखित ''संक्षिप्त परिचय'' : ''अध्यात्म-योगी सन्तप्रवर'' ।
२. इस लेखक का यात्रा-लेख ''संबोधिधाम की अभिनव आत्मबोध-भूमि पर'' : पृ. ३

"यद्यपि सहजानंदजी के सशरीर रहते मुझे उनके सान्निध्य में रहने का अवसर नहीं मिला, पर मैंने उनकी गुफा में उनकी आध्यात्मिक उपस्थिति का अहसास पाया है ।००० योगीराज सहजानंद साधनात्मक जीवन के प्रेरणा के प्रकाश-स्तंभ हैं । इतिहास-पुरुष अगरचंदजी नाहटा जैसे लोग तो सहजानंदजी के पदों पर घंटों अपना विवेचन करते थे ।... साहित्य वाचस्पति श्री भंवरलालजी नाहटा ने सहजानंदजी की अनमोल साहित्यिक-सेवा की है... प्रतापजी टोलिया ने सहजानंदजी के प्रवचनों को अध्यात्मप्रेमियों तक पहुँचाने में अहम् भूमिका निभाई ।"[३]

वर्तमान में, दादाश्री जिनदत्तसूरीश्वरजी से एवं स्वयं सहजानंदजी से दिल्ली में प्रेरणा पाकर नूतन अहिंसक जैन बनवाने और विदेशों में जैनधर्म प्रचार करनेवाले आचार्य मुनिश्री सुशीलकुमारजीने अमरिका सिद्धाचलम् की सभा में, सहजानंदजी की कल्पसूत्र केसेट मंजुषा का लोकार्पण करते हुए डंके की चोट पर कहा था कि, "टोलिया जी के गुरुदेव सहजानंदजी भारत के सर्वोच्च अध्यात्म योगी थे" ।[४]

ऐसे विरल अध्यात्म योगी ने हंपी कर्नाटक की गिरिकंदराओं में जो धुनि रमाई उसे उस भूमि को, लक्ष्यकर उन्हें परोक्ष रुप से भाव-अंजलि दी है, शरीर से उन्हें नहीं मिले हैं ऐसे गुजरात के अलख-मस्ती के कवि श्री मकरंद दवे ने अपने इन शब्दों में :-

"भारत में आज अध्यात्म का, सच्चे अध्यात्म का दुष्काल दिखाई देता है तब हंपी के खंडहरों में मुझे नूतन प्रकाश का दर्शन हो रहा हैं ।"[५]

ऐसे, वर्तमान भारत में अध्यात्म का नूतन प्रकाश फैलाने वाले सर्वोच्च अध्यात्म योगी सहजानंदघनजी स्वयं तो अपने विषय में सर्वथा मौन, गुप्त साधनारत, प्रसिद्धि से कोसों दूर रहे । जो उन्हें पहचान कर उनके पास पहुंच गये उन्हें प्रतीत हुआ कि –

"गुलाब के फूल तुल्य गुरु का दिल कोमल था;
गो-क्षीर धारा की भाँति, उनका सुयश उज्जवल था !
मेरे लिये अप्राप्य है, गुरु का विराट व्यक्तित्व;
गंगा के सलिल समान, उनका आचार, निर्मल था !!"[६]

और –

"कितने निर्मल, कितने प्रशान्त, कितने सहज, कितने सुशान्त !
बालवत् सरल; प्रबुद्ध और तरल, कहाँ मिलेंगे तुझे निशान्त ?"[७]

---

३. श्री चन्द्रप्रभसागरजी लिखित "सहजानन्द सुधा" ग्रंथ की भूमिका ।
४. श्री सिद्धाचलम्, न्यूजर्सी, अमरिका, 1986
५. इस लेखक की कृति "दक्षिणापथ की साधनायात्रा" (गुज. आवृत्ति) पृ. ११
६. साध्वी डा.श्री. प्रियलताश्रीजी ।
७. निशान्त अनंतयात्री : "गीत निशान्त"

ऐसे प्रबुद्ध महामनुज श्री सहजानंदघनजी को जब किसी के द्वारा उनका नाम-ठाम परिचय पूछा गया, तब पता है उन्होंने आत्म-परिचय में अपना क्या नामादि बताये ?

"नाम सहजानंद मेरा नाम सहजानंद,
अगम-देश-अलख-नगर-वासी में निर्द्वंद... नाम. १
सद्‌गुरु-गम-तात मेरे, स्वानुभूति मात,
स्याद्वाद कुल है मेरा, सद्-विवेक भ्रात... नाम. २
सम्यक्-दर्शन देव मेरे, गुरु है सम्यक् ज्ञान
आत्म-स्थिरता धर्म मेरा, साधन स्वरुप-ध्यान... नाम. ३
समिति ही है प्रवृत्ति, गुप्ति ही आराम,
शुद्ध चेतना-प्रिया सह, रमत हूँ निष्काम... नाम. ४
परिचय यही अल्प मेरा, तन का तन से पूछ !
तन परिचय जड़ ही है सब, क्यों मरोड़े मूछ ?..." नाम. ५[८]

इस 'अगम-देश अलख-नगर' के वासी अवधूत का एक अद्‌भुत प्रसंग बना ।

उत्तरापथ की उनकी एक यात्रा !

अपने आराध्य-श्रीमद् राजचन्द्रजी का आदेश कि, "मैं किसी गच्छ-मत में नहीं, आत्मा में हूँ" इसे शिरोधार्य कर वे बिना किसी धर्म-संप्रदाय का वेश धारण किये, अपने अल्प-से परिग्रह-एक चद्दर, एक लंगोटी, एक जलकमंडलादि लिये अपनी मस्तीभरी पदयात्रा में घूम रहे थे ।

घूमते घूमते वे पधारे तीर्थसिलिला गंगा के तट पर हरिद्वार ऋषिकेश । पहुँच गये निकट चल रहे एक विशाल-साधु समूह के सम्मेलन में अपनी सहज आभा धारण किये हुए और बैठ गये चुपचाप सभी के बीच में ।

सम्मेलन की कार्यवाही चली ।

थोड़ी ही देर में मंचस्थ एक संन्यासी अध्यक्ष महावक्ता की दृष्टि इस चुपचाप बैठे अवधूत पर दौड़ गई ।

उनकी सक्षम "खोजी" नज़र ने उसकी सहज प्रकाश बिखेर रही आभा और ओरा को पहचान लिया । सच्चे मुमुक्षु के नेत्र मुमुक्षु अवधूतों को पहचान लेते हैं । गाय हज़ारों पशुओं – गायों के बीच होते हुए भी बछड़ा अपनी माँ को खोज निकालता है । इस पारखी अध्यक्ष संन्यासी ने इस छिपे अवधूत को दूर से पहचान लिया - किसी भी पूर्व परिचय के बिना - वे तुरन्त ही बोल उठे

८. "सहजानंद सुधा" पृ. १२४

मंच से –

"हम सब कौओं के बीच में एक 'हंस' आकर बैठ गया है । हम उसकी अनदेखी-अनादर कैसे कर सकते है ?"

और इतना कहकर, मंच से नीचे उतर कर सहसा पहुंच गये इस अवधूत अनजान योगी के पास ।

करबद्ध विनय किया –

"महात्मन् ! मंच पर पधारिये और वहाँ अपना आसन ग्रहण कीजिये ! आप जैसे हंस-परमहंस को हम कौए पहचान नहीं पाये !"

और इस अवधूत की अनीच्छा फिर भी उन्हें वे अपनी प्रेमभरी आगता-स्वागता करते हुए मंच के ऊपर ले गये ।

अपरिचित फिर भी परिचित दिखाई दिये इस नवागंतुक योगीराज का उन्होंने अपनी अंतरानुभूति से परिचय दिया और अपने वक्तव्य के स्थान पर उनका प्रवचन सुनने-सुनाने का इस अध्यक्ष संन्यासी ने विनयाग्रह किया ।

नूतन आगंतुक योगी मुनिराजने जब अपना मौन खोला और मुखर होकर अपनी वाग्धारा बहाई तब सारा स्तब्ध मुग्ध श्रोतासमूह उनकी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति को इतनी सक्षम देखकर डोल उठा ।

प्रकरण-६ Chapter-6

साधना-सद्गुरुदेव श्री सहजानंदघनजी की सम्यग्दृष्टि में

सम्यग् साधना की समग्र दृष्टि

"आपके हृदयरूपी मंदिर में अगर श्रीमद् की प्रशमरस निमग्न, अमृतमयी मुद्रा प्रकट हुई हो, तो उसे वहीं स्थिर बनाइए। अपने चैतन्य का उसी स्वरूप में परिणमन ही साकार उपासना का साध्यबिंदु है, वही सत्यसुधा है। लक्ष्यमंदिर से सहस्त्रदल कमल में उसकी प्रतिष्ठा कर, वहीं लक्ष्यवेधी बाण की तरह चित्तवृत्ति प्रवाह का अनुसंधान बनाये रखना, यही पराभक्ति या प्रेमलक्षणा भक्ति है।०००

"ऐसे भक्तात्मा का चिंतन एवं आचरण विशुद्ध हो सकता है, अतएव भक्ति, ज्ञान एवं साधना का त्रिवेणी संगम संभव होता है। ऐसे साधक को भक्ति-ज्ञान शून्य मात्र योग-साधना करनी आवश्यक नहीं। दृष्टि, विचार एवं आचारशुद्धि का नाम ही भक्ति, ज्ञान एवं योग है और यही अभेद 'सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्राणि मोक्षमार्ग' है। बिना पराभक्ति के ज्ञान एवं आचरण को विशुद्ध रखना दुर्लभ है। ०००" (प्र. से 'दक्षिणापथ की साधनायात्रा' : २९-३१)

● ध्यान बल-स्वाध्याय बल

"ध्यान बल द्वारा समाधि स्थिति उत्पन्न होती है, और वही 'संवर समाधिगत उपाधि' सम्यक् चारित्र है, जिसका फल मोक्ष है। स्वाध्याय बल द्वारा ध्यानबल बढ़ता है। अतएव अहोरात्र (२४ घंटे) में ४ चार प्रहर स्वाध्याय और दो प्रहर ध्यान करने की आज्ञा उत्तराध्ययन में बतलाई है। जब जिस ध्यान में स्थिरता रह नहीं सके तब उस व्यक्ति के लिये स्वाध्याय आवश्यक है। यदि ध्यान टिका रहता हो तो उसे, उस काल में, स्वाध्याय आवश्यक नहीं है। व्याख्यान काल में 'स्वलक्ष से स्वाध्याय करता हूँ' ऐसा भाव समुत्पन्न कर कर्तव्य प्रस्तुत करने से अभिमान नहीं आता। श्रोता भले सुनें, हमें तो चाहिये कि हम अपने को ही उद्देशकर व्याख्यान करते रहें।०००"

(मुनिश्री आनंदघनजी से : 'सहजानंदघन पत्रावली'-१४६)

● धर्मध्यान से शुक्लध्यान की ओर.....

"००० भूत-भविष्य की कल्पनाएँ त्याग कर केवल वर्तमान क्षण धर्मध्यान में ही बीते तो शुक्लध्यान के प्रथम पाद में प्रवेश होकर आत्मसाक्षात्कार अवश्यमेव हो। अत: शेष सारी कल्पनाएँ हटा दें और आगे कूच करें।"

(मुनिश्री आनंदघनजी से : 'सहजानंदघन पत्रावली'-१३३)

● जप है ध्यान के भेदरूप में, अत: हितकर है।

"आपको वाचन-अध्ययन-से जप पर अधिक रूचि है वह हित रूप है, क्योंकि तत्त्वनिर्णय में दृढ़ता हेतु स्वाध्याय और तत्त्वानुभूति हेतु ध्यान ये साधन हैं। जप यह ध्यान के भेद रूप में है अत: उल्लसित रोमांकुर से उस में निमग्न बनें।"

(मुनिश्री आनंदघनजी से : 'सहजानंदघन पत्रावली' : १२२)

● त्रिवेणी संगम रूप मोक्षमार्ग किन्तु एकान्त क्रिया मार्ग नहीं।

१. जो हृदयप्रधान हो, जिसने अपने हृदयमंदिर में साकार भगवान विराजमान किये हों, वृत्तिप्रवाह प्रभु प्रति बहता हो, उस प्रकार की 'शरणता' और प्रभु का विस्मरण न हो उस प्रकार का 'स्मरण' ये दोनों जिसके चलते हों वह भक्त गिना जायेगा और उसकी यह आराधना पद्धति भक्तिमार्ग कही जायेगी ।

२. जो मस्तिष्कप्रधान हो, जिसका उपयोग ज्ञेयों से असंग ऐसे ज्ञान मात्र में टिका रहता हो वह ज्ञाननिष्ठ ज्ञानी कहा जायेगा और उसकी आराधना पद्धति ज्ञानमार्ग कही जाती है ।

३. उपर्युक्त उभय मार्ग में से एक भी मार्ग पर जो आरूढ़ न हो फिर भी मार्गारूढ़ होने की जिसकी प्रबलतम भावना हो वैसे प्रत्याशी (उम्मीदवार) को उसकी पात्रता विकसित करने भक्ति और ज्ञानगर्भित क्रिया मार्ग का आश्रय अनिवार्य है, जिसमें विधिवत् यम-नियमों का पालन आवश्यक होता है। उन नियमों में से सामायिक प्रतिक्रमणादि मुख्य हैं। वे नियमित जिनवंदनादि भक्ति करें, शास्त्राभ्यास करें और प्रतिक्रमणादि करें ये तीनों पद्धतियाँ ही भक्ति, ज्ञान और योगसाधना का त्रिवेणी संगम, जिसका नाम क्रियामार्ग है ।ooooo

"क्रियामार्ग अपनाने के बाद भी - असत् अभिमानवश बाहुबलीजी का वर्षभर का कायोत्सर्ग प्रयत्न निष्फल गया और मान वमन होने के बाद चलने की क्रिया करते ही केवलज्ञान हुआ ।

"आज तो क्रियामार्ग के नाम से क्रियाभास इतने बढ़ गये हैं और साथ में गर्व ने भी मानों उन लोगों को सातवें आसमान पर पहुंचाया हो ऐसा प्रत्यक्ष देखा जाता है ।ooo

"बाहुबलीजी ने कौन-सा प्रतिक्रमण किया था ? स्थुलभद्रजी के शेष तीन साथी जो सर्पबिल, सिंहगुफा और कुएँ के छोर पर चातुर्मास रहे थे वे कौन सी क्रिया करते थे ? समवसरण में कौन से क्रियाकांड का वर्णन शास्त्र करते हैं ? बहुतों को तो उपदेश श्रवण करते करते केवलज्ञान हो जाने की बातें शास्त्र स्वयं ही सुनाते हैं यह तो जगप्रसिद्ध बात है तो फिर आप क्रियाकाँडियों को भक्तिमार्ग पर चलनेवाले कृपाळु के भक्तों की ओर कटाक्षवृत्ति क्यों उत्पन्न होती है ?ooo

"उक्त त्रिवेणीसंगमरूप मोक्षमार्ग अतीत के ज्ञानीजन आकर हमें समझा सकेंगे नहीं, हमारी भूल शास्त्र निकाल नहीं सकेंगे - इसलिये प्रत्यक्ष सत्पुरुष भगवान मार्गदर्शक रूप में अनिवार्य बन जाते हैं और उन्हें ही भगवान मानकर उनके मार्गदर्शन से जीव चले तो ही - वह क्रमशः भक्ति, ज्ञान और संवरक्रियारूप रत्नत्रय की सिद्धि कर सकता है ।

"इसलिये कृपाळुदेव की उपस्थिति में, उन्होंने तीन रत्नों में से प्रथम सम्यग्दर्शन की आराधना रूप भक्तिमार्ग की प्रधानता बतलाई ।

"फिर अनादि सिद्ध नवकार के पांचों पदों को 'परमगुरु' शब्द में समापन कर के उस पद का आंतरिक रहस्य प्रकट करने सहजात्म स्वरूप का अवलंबन लेकर 'सहजात्म स्वरूप परमगुरू' इस नवकार के सार रूप मंत्र को रटना यह नवकार मंत्र की ही महिमा रूप में है। नवकार के अर्थ रूप में ही यह संक्षिप्त मंत्र है ।

परिचय झांकी-अवधूत आत्मयोगी की :

महत् पुरुषों का देहधारण उनके स्वयं के आत्मसिद्धि क्रमारोहण के उद्देश्य के उपरान्त जगत् के जीवों के कल्याण के लिए भी होता है । कई महापुरुषों की जीवनचर्या, उनकी लघुता, अहंशून्यता एवं केवल आत्मलक्षिता के कारण अप्रकट, अज्ञात एवं गुप्त रहती है । इस काल में ऐसे ही सत्पुरुष थे 'भद्रमुनि' दीक्षा-नामधारी एवं अद्वितीय स्वपुरुषार्थ से आत्मज्ञान संप्राप्त अवधूत योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानंदघनजी महाराज । न तो उन्होंने अपने जीवन के सम्बन्ध में विशेष कुछ प्रतिपादित या प्रचारित किया है, न उन्होंने औरों को भी इस कार्य हेतु लेशमात्र प्रेरित किया है । इतना ही नहीं, उनके सम्बन्ध में लिखने और प्रसिद्ध करनेवालोंको उन्होंने रोका भी है !! "हीरा मुख से ना कहे लाख हमारा मोल" वाली उक्ति से भी आगे बढ़कर यहाँ तो पारखीजनों को भी अपनी प्रसिद्धि या प्रचार के सम्बन्ध में रोकने की उनकी वृत्ति और प्रवृत्ति परिचायक है उनकी लघुता में छिपी महानता की !

उनके अखंड साधनारत अज्ञात-गुप्त जीवन की अनेक में से एक घटना इस बात का महत्त्वपूर्ण संकेत करती है । पूर्व प्रकरण अनुसार एक बार किसी अपरिचित साधक-संत ने उनके जीवन से अभिभूत होकर, उनके सम्बन्ध में विशेष जानने हेतु उनका नाम-ठाम जाति-धर्मादि परिचय पूछा । आप कल्पना कर सकते हैं उन्होंने क्या प्रत्युत्तर दिया होगा ? उन्होंने अपनी अंतरात्मावस्था का इंगित करनेवाली यह अद्‌भुत मर्म वाणी अभिव्यक्त की :-

"नाम सहजानंद मेरा नाम सहजानंद ।
अगम-देश अलख-नगर-वासी मैं निर्द्वन्द्व ॥ नाम...
परिचय यही अल्प मेरा, तनका तनसे पूछ ।
तन-परिचय जड़ ही है सब, क्यों मरोड़े मूँछ ?"

अपने बाह्य परिचय बाह्य जीवन से नितान्त उदासीन ऐसे इस महापुरुष का परिचय हम दें भी क्या ? बाह्य जानकारी अल्प लभ्य है और आंतरिक असम्भव !!

यदि उनकी ही अनुग्रहाज्ञा हुई तो यह असम्भव भी सम्भव हो पायेगा और हम उनके बाह्यांतर जीवन की कुछ परिचय-झांकी हमारी 'दक्षिणापथ की साधना यात्रा' के संधान-पंथ में दे पायेंगे । तब तक के लिये इस अवधूत आत्मयोगी द्वारा प्रज्वलित सभी के आत्मदीपों को अभिवन्दना ।

प्रकरण-७ Chapter-7

जैन योग

अ-योग की समग्रसिद्धि का अनुभवमार्ग
उस मार्ग के वर्तमान के एक प्रयोगवीर परमयोगी

(अ.मा. जैन साहित्य समारोह : म.जै.वि. भावनगर सत्र में गुजराती में प्रस्तुत शोधपत्र)

नमस्कार मंत्र और ध्यानयोग :

॥ नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्व साहूणं । एसो पंच नमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम् ॥

"पंच परमगुरुओं के शुद्धात्मध्यानमय यह नमस्कार महामंत्र सिद्ध होने पर सकलध्यान सिद्ध होते हैं, जो कर्मक्षय और मोक्ष प्रदान करते हैं । ये चार ध्यान हैं - पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ और रूपातीत । समस्त द्वादशांगरूप श्री जिनप्रवचन का सार है सुनिर्मल ऐसा ध्यानयोग ।"०००[१]

आर्त्त-रौद्र-धर्म-शुक्ल के चार भेदों में से अंतिम दो उपादेय ऐसे ध्यान और मित्रा-तारा-बला-दीप्रा-स्थिरा-कान्ता-प्रभा-परा आदि आठ योग दृष्टिओं से सुग्रथित यह परिपूर्ण ध्यानयोग सर्व से निराला और शुद्धात्मानुभव प्रदाता है ।

जैन योग मार्ग का लक्ष्य :

"मेरे घट ज्ञान-भानु भयो भोर ।
चेतन चकवा चेतना चकवी, भाग्यो विरह को सोर,
मेरे घट ॥"
(आनंदघन पद्यरत्नावली)

जैन योग मार्ग मन-वचन-काया के त्रिविध योगों से पार ऐसे शुद्धात्म प्रदेश में ले जाता है जहाँ परिलक्षित होता है आत्मानुभव का ज्ञानभानु, ज्ञानसूर्य । महायोगी आनंदघनजी की ऐसी चेतना का चेतन के साथ का, 'सांत' का 'अनंत' के साथ का संमिलन और उस संमिलन की विशुद्ध आत्मानुभूति, समग्र आत्मसिद्धि, है जैन योग मार्ग का लक्ष्य ।

समग्रता समन्वयरूप जैन योग साधना :

इस लक्ष्य का जैन योग साधना में अनेकविध रूपों से निरुपण है । वर्तमान के एक योगनिष्ठ जैनमुनि अन्य योगसाधनारत जैन मुनि को इस विषय में एक पत्र में लिखते हैं :-

---

१. योगशास्त्र : अष्टम् प्रकाश : कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्य : पृ. ३, ४ (1969 आवृत्ति)

"ज्ञान, भक्ति और योग तीनों के समन्वय रूप से प्ररूपण है । योग अर्थात् चेतन-चेतना का मिलन । वही भक्ति और ज्ञाननिष्ठा । फिर भी निमित्तकारणरूप त्रियोग जप, प्रभुमूर्ति और आत्मविचार आवश्यक है ।०००"[२]

"द्रव्यमन में कैसी भी कल्पना आये परंतु वह आत्मा से भिन्न और मैं भिन्न ऐसा आत्मभाव रखकर तद् तद् विकल्पों के प्रति साक्षी रहें । सिद्धचक्रादि का जो जापक्रम है उसे पकड़े हुए रखें... अपने आप आत्मस्थिरता होगी ।०००"[३]

जाप, जिनप्रतिमा और आत्मविचार आदि से निमित्तकारणरूप साधन भी जिनाज्ञा एवं सद्गुरू निश्रापूर्वक आराधन करने की जैन योग साधना की विशेषता और महत्ता है । जैन योग मार्ग, सुस्पष्ट ऐसे आत्मसिद्धि, आत्मभान, वीतरागता, सिद्धदशा, मोक्षप्राप्ति के लक्ष्य को सतत केन्द्रस्थान पर रखकर चलता है । वहाँ स्वच्छन्द अथवा निजमति कल्पना को अवकाश नहीं है । वहाँ आलंबन है - सद्गुरु आज्ञा एवं जिनदशा का, परम विशुद्ध आत्मस्वरूपमय जिनदशा का ध्यान :

"सर्व जीव हैं सिद्ध सम, व्यक्त समझसों होय ।
सद्गुरु-आज्ञा जिन-दशा, निमित्त कारण दोय ॥"[४]

उपर्युक्त चार ध्यानों में से जिनदशा के लक्ष्य से, स्वरूप प्राप्ति के लक्ष्य से, जिनप्रतिमा के रूपस्थ ध्यान और सिद्धचक्र-नमस्कार महामंत्र के पदस्थ ध्यान के द्वारा (जो कि श्वासानुसंधान-नादानुसंधानपूर्वक 'आहत' से 'अनाहत' नाद तक का है) जैन योगमार्ग का अनुसरण होता है । केवल संयम के हेतु से साधक की सर्व योग-प्रवर्तना (मन-वचन-काया की प्रवृत्तियाँ) होती हैं :-

"संयम-हेतु से योगप्रवर्तना, स्वरूपलक्ष्य से जिनाज्ञा आधीन रे ।
वह भी क्षण क्षण क्षीयमान स्थिति में, अंत में हो निजस्वरूप में लीन रे - अपूर्व अवसर०००"[५]

अंत में निजस्वरूप में, निजदशा में, स्वात्मा में वह योग-ध्याता लीन होता है । प्रारंभ में जिनदशा के लक्ष्य को समीप रखने का, जिनप्रतिमा के साकार-सालंबन-रूपस्थ ध्यान को धरने का यह अद्भुत फल है, परिणाम है । जिनदशा-जिनप्रतिमा ध्यान की ऐसी महती महिमा है । अर्हत् भगवंत के रूप का अवलंबन लेकर किये हुए ऐसे रूपस्थ ध्यान की महिमा का वर्णन करते हुए कलिकालसर्वज्ञ योगीन्द्र हेमचंद्राचार्य महाराज थकते नहीं हैं । जिनेश्वर भगवंत के समवसरण का प्रथम कैसा अद्भुत ध्यान उन्होंने वर्णित किया है उसका दर्शन करें :-

१. योगशास्त्र : अष्टम् प्रकाश : कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्य : पृ. ३, ४ (1969 आवृत्ति)
२,३ पत्रसुधा : 143 + 144 मुनिश्री पुण्यविजयजी को पत्र
४ आत्मसिद्धि शास्त्र/ सप्तभाषी आत्मसिद्धि 135 : श्रीमद् राजचंद्रजी
५ "परमपद प्राप्ति की भावना : अपूर्व अवसर" 5 : श्रीमद् राजचंद्रजी

समवसरण का अर्हद्-ध्यान :

"अर्हत् भगवान के रूप के अवलंबन से किया हुआ ध्यान 'रूपस्थ ध्येय' का ध्यान कहा जाता है । वे कि जिन्हें मोक्षश्री संप्राप्त हुई है, जिनके अखिल कर्म नष्ट हो चुके हैं, जिन्हें चार मुख हैं, जो समस्त भुवनों को अभयदान देनेवाले हैं, जिन्हें चंद्रमंडलवत् कांतियुक्त तीन छत्र हैं, जिन्होंने अपने स्फुरित तेज के विस्तार से सूर्य को धूमिल कर दिया है, जिनकी साम्राज्य-संपत्ति का घोष दिव्य दुंदुभिओं के द्वारा हो रहा है, जो गुञ्जन कर रहे भ्रमरों से मुखरित अशोकवृक्ष के नीचे सिंहासनस्थ हैं, जिनके दोनों बाजु चामर ढल रहे हैं, जिनके पादों के नख सुरासुर के मुकुटमणियों से प्रतिबिंबित हो रहे हैं, जिन की सभा की धरती दिव्य पुष्पों के समूह से आवृत्त हो गई है, जिनकी मधुर आवाज़ का पान मृगकुल ऊर्ध्व कंठ से कर रहे हैं, जिनके समीप हाथी, सिंह इत्यादि प्राणी अपना सहज स्वाभाविक वैर भुलाकर खड़े हैं, जिनके आसपास मनुष्य एवं तिर्यंचों का मेला लगा है, जिन में सर्व अतिशय अर्थात् विभूतियाँ, विद्यमान हैं और जो केवलज्ञान से प्रकाशित हैं ॥" (९/१७)०००"[६]

ऐसे जिन-स्वरूप माहात्म्य की श्रीमद् राजचंद्रजी भी "अचिंत्य तुज माहात्म्य का नहीं प्रफुल्लित भाव" कहकर स्वयं आलोचना युक्त स्व-वेदना व्यक्त करते हैं कि एसी जिन-महिमा के प्रति हमारा भाव प्रफुल्लित नहीं हुआ । तो दूसरी ओर फिर इस जिनरूप के बाह्यदर्शन से आगे जाकर उनकी भीतरी अपार आत्मसंपदा की ओर भी वे यह कह कर संकेत करते हैं कि —

"जो जिनदेह प्रमाण अरु, समोसरणादि सिद्धि ।
जिनस्वरूप माने यही, बहलाये निजबुद्धि ॥"

(श्री आत्मसिद्धिशास्त्र : सप्तभाषी आत्मसिद्धि : गाथा-२५)

अस्तु ।

योगमुद्रामय जिनप्रतिमा-ध्यान और ध्याता :

आगे बढ़ते हुए श्री हेमचंद्राचार्य जिनप्रतिमा-ध्याता के रूपस्थ ध्यान का वर्णन करते हैं :-

"उसी प्रकार जिनेन्द्र की प्रतिमा के रूप का ध्यान करनेवाला भी रूपस्थ-ध्याता कहा जायेगा, जैसे कि रागद्वेष, महामोह इत्यादि विकारों से अकलंकित, शांत, दांत, मनोहर, सर्व लक्षणों से युक्त अन्य तीर्थिकों को भान भी नहीं वैसी योगमुद्रा से शोभायुक्त तथा जिसकी आँखों से अद्भुत एवं विपुल आनंदप्रवाह बरस रहा है वैसा, इत्यादि ।" (९/८-१०)०००[७]

६ योग शास्त्र : श्री पुंजाभाई जैन ग्रंथमाला : गू.वि. : पृ. 90 (आवृत्ति 1938)
७ योग शास्त्र : (पूर्वोक्त) (पृ. 90 - 91 - 92)

"अभ्यासयोग के द्वारा अपने उस ध्येय के साथ तन्मयता-प्राप्त योगी अपनी आत्मा को सर्वज्ञरूप-संप्राप्त देखता है तथा यह सर्वज्ञ भगवान मैं स्वयं ही हूँ ऐसा जानता है। ऐसी तन्मयता को प्राप्त योगी 'सर्व को जाननेवाला' कहलाता है। क्योंकि वीतराग प्रभु का ध्यान करनेवाला वीतराग होकर मुक्त होता है।" (९/११४)०००[८]

ऐसे जिनवर वीतराग-ध्याता योगी को यहाँ मोक्ष का ही लक्ष्य सुदृढ़ करवाते हुए यो.श्री हेमचंद्राचार्य सावधान भी करते हैं :- "योगी असद्ध्यानों का सेवन कुतूहल से भी न करें। क्योंकि परिणामतः उस का स्वनाश ही होता है। मोक्ष का ही अवलंबन लेनेवाले को सारी सिद्धियाँ स्वयं सिद्ध होती हैं। जबकि अन्य पदार्थों की प्राप्ति के इच्छुक को सिद्धि-प्राप्ति भी संशयग्रस्त है। और पुरुषार्थ में से भ्रष्ट होना तो निश्चित ही है।" (९/१५६)०००[९]

वर्तमानकाल के अनेक तथाकथित योगमार्गो और असद्ध्यानों के प्रति यह लालबत्ती अत्यंत समीचीन है।

जिन-प्रतिमा-ध्यान का रहस्य और प्रतिफलन : आत्मध्यान, आत्मानुभव

जिनप्रतिमा ध्यान के रूपस्थ ध्यान का रहस्य और प्रतिफलन-परिणाम 'आत्मध्यान' में हैं। वर्तमानकाल के उपर्युक्त योगनिष्ठ जैनमुनि यह रहस्य और लक्ष्य अत्यंत सरल और सुंदर रूप से स्पष्ट करते हैं :-

"निर्दोष, आत्मध्यान के प्रतीकरूप में देवतत्त्व का प्ररूपण है। मूर्ति पर से मूर्तिमान जिनचैतन्य का ही लक्ष्य रखना चाहिए। उससे ही आत्मध्यान की श्रेणी का उदय होता है इसलिए देवमूढ़ता टालकर देवतत्त्व और शुद्ध वीतराग निज अनुभव प्रमाण स्वरूप का अवलंबन लेकर आत्मध्यान करने का लक्ष रखें.... फिर किसी भी भगवान की खास मूलभूत आकृति का हृदय में चित्र खींचकर उसमें ही एकलरूपपूर्वक ध्यान करने-से उनमें जितना आत्मवैभव प्रकट हुआ हो उतने अनुपात (प्रमाण) में ही इस आत्मा का अप्रकट आत्मवैभव प्रकट होता है ऐसी नियति है और उनकी मूलभूत परिशुद्ध वाणी की उपासना करने से अपना परिशुद्ध मूलस्वरूप समझ में अवतरित होता है। इस काल में इस क्षेत्र में कौन से तीर्थंकरों की एवं उनके पश्चात् समुत्पन्न समर्थ ज्ञानियों की मूलभूत आकृति, मुद्रा तथा परिशुद्ध (निर्भेल) वाणी उपलब्ध है? इस रहस्य को ध्यान में/लक्ष्य में/ लेकर गंभीरता से संशोधन करेंगे तो....."

"..... इस कथन का तात्पर्य ऐसा है ही नहीं कि विद्यमान द्वादशांगी एवं आचार्यों का साहित्य अनुपास्य है। वे तो परम प्रेम से उपास्य हैं ही। कारण कि उसके आधार से ही ज्ञानी की मुद्रा और वाणी का आकलन यह जीव कर सकता है। वह सारा सत्साहित्य ज्ञानी की मूलभूत वाणी का पूरक और साक्षी है।"[१०]

८, ९ योग शास्त्र : (पूर्वोक्त) (पृ. 90 - 91 - 92)
१० पत्रसुधा : वर्तमान के मुनि आनंदघनविजयजी के प्रति मुनि सहजानंदघनजी (पृ. 152)

जिनमुद्रा, जिनबिंब और जिनवाणी के, आत्मध्यान में पहुंचानेवाले, वर्तमान काल के भविजनों को तारनेवाले इन दो समर्थ आलंबनों की अनुमोदना करते हुए यह वर्तमान मुनिवर अपने स्वरचित जिनस्तवन में उल्लसित भाव से गाते हैं :-

"अवलम्बन हितकारो, प्रभुजी तेरो अवलंबन हितकारो...
पावत निजगुण तुम दर्शन से, ध्यान समाधि अपारो
प्रगटत पूज्यदशा पूजन से, आत्मस्वरूप निस्तारो,
प्रभुजी ! तेरो"[११]

जिनप्रतिमा की महिमा

जिनप्रतिमा ध्यान की ऐसी निजगुण प्रकट करानेवाली, आत्मध्यान श्रेणी का उदय करानेवाली महिमा का स्वल्प चिंतन करके रूपस्थ ध्यान के पश्चात् 'रूपातीत' ध्यान-स्वरूप का संकेत भर करते हुए उपर्युक्त रहस्य का ही तात्पर्य स्पष्ट होता है :-

रूपातीत ध्यान और ध्येय : "चिदानंद रूपं, नमो वीतरागं"

"अमूर्त, चिदानंदस्वरूप, निरंजन और सिद्ध ऐसे परमात्मारूपी ध्येय रूपातीत ध्येय है। ऐसे अरूपी परमात्मा का सतत ध्यान करनेवाला योगी ग्राह्य-ग्राहक भाव से रहित ऐसा तन्मयत्व संप्राप्त करता है। उनका अनन्यभाव से शरण लेनेवाला उसमें ही लीन होता है और ध्याता-ध्यान इन दोनों का अभाव होने पर ध्येय के साथ ही एकरूप बन जाता है। ऐसा जो समरस भाव उसका नाम ही आत्मा और परमात्मा का एकीकरण है, क्योंकि, उस समय आत्मा लेशमात्र भी पृथकत्व के बिना परमात्मा में लीन होती है। (१०/१४)

"इस प्रकार शरीरादि आलंबन, रूपस्थ ध्यान-ध्येय के द्वारा प्रारंभ करके, निरालंबी ध्यान-ध्याता, ध्येय के साथ एकरूप बनकर निरालंब तत्त्व प्राप्त करता है और इस तरह चार प्रकार के (पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ, रूपातीत) ध्यानामृत में मग्न बना हुआ मुनिमन जगत के तत्त्व का साक्षात्कार कर, शुद्ध आत्मस्वरूप प्राप्त करता है।" (१०/५-६)०००[१२]

तीर्थंकरों के परवर्ती जैन योगी

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्य का यह सरलतम निष्कर्ष जैन योगमार्ग के आत्मानुभव-आत्मस्वरूप प्राप्ति के लक्ष्य को विशदता से स्पष्ट करता है।

जैन ध्यानमार्ग का अभिगम, उनके पूर्ववर्ती-परवर्ति काल में आचार्य भद्रबाहु, कुंदकुंदाचार्य, पूज्यपाद आदि तथा श्री हरिभद्रसूरि (योगशतक, योगदृष्टि-समुच्चयादि), श्री शुभचंद्राचार्य (ज्ञानार्णव), महायोगी आनंदघनजी (चोबीसी और पद्यरत्नावली), उपाध्याय यशोविजयजी, योगनिष्ठ श्री बुद्धिसागरजी-केसरसूरीश्वरजी-शांतिसूरीश्वरजी एवं अनेक उल्लिखित-अनुल्लिखित जैनयोगी मुनिवरों आचार्यो ने अनेकरूप से व्यक्त किया है। इस श्रृंखला में वर्तमान में गुप्तरूप से आत्मध्यानस्थ रहे हुए श्रीमद् राजचंद्रजी (श्री आत्मसिद्धिशास्त्र, यमनियम-अपूर्व अवसरादि विविध पद, वचनामृत)

११ 'श्री सहजानंद सुधा' : पृ. 34
१२ 'योगशास्त्र' (पूर्वोक्त) : पृ. 92

और उनके पथानुसारी योगीन्द्र मुनिवर श्री सहजानंदघनजी-भद्रमुनि (समझसार, नियमसार रहस्य, अनुभूति की आवाज़, आत्मसाक्षात्कार का अनुभवक्रम, आनंदघनचोवीसी-सार्थ, सहजानंद विलास, पत्रसुधा, पत्रावली, सहजानंद सुधा, उपास्यपदे उपादेयता इत्यादि) का साहित्य प्रायः अभी संशोधन से पर रहा है । उनका यह साहित्य जैन योगमार्ग को समझने और वर्तमान काल में आराधन करने में प्रेरक, उपकारक एवं उपादेय बनने में सक्षम है । यदि किसी भी प्रकार के अभिनिवेश या पूर्वग्रह के बिना उनके अंतराशय को भी महायोगी आनंदघनजी जैसे 'अतिशय गंभीर अपार' आशयवत् उन्मुक्त मनसे समझा जाय तो ! पूर्वोक्त अनेक वर्तमान मुनिजनों को दिए गए जैन योग-ध्यान के मार्गदर्शनों के अनुसंधान में एक दो और प्रयोगपूर्ण ध्यानानुभवों को उन्होंने विविध भूमिका के जैन साधनामार्ग के साधकों के प्रति दर्शित किए हैं, वे दृष्टव्य हैं :

शुभाशुभ की जंगल-झाड़ी के अंधेरे के पार ध्यानाग्नि

"हे अंतरात्मा ! तू स्थिरदृष्टि से भीतर में दृष्टि कर । जो अंधेरा दिखता है वह कार्मण शरीर है । उस पर तेरी दृष्टि को केन्द्रित कर । उससे ध्यानाग्नि प्रकट होगी और वह दृष्टि एवं दृष्टा के बीच रहे हुए पर्दे को जलाकर के खाक़ कर देगी । वैसा होने पर तू तेरी ही आँख से तुझे प्रत्यक्ष देखेगा-जानेगा । देख-जानकर उसमें ही तेरी दर्शन-ज्ञान चेतना स्थिर हो जाएगी । तब तू आनंद की गंगा में तद्रूप हो जाएगा ।

"मानसिक जंगल-झाड़ी को भेदकर के तू निर्भंग शुद्ध भाव से मुक्त मैदान में आ, वहाँ से ही तेरा राजपथ सरेआम खुल्ला दिखाई देगा, जिसके अंत में तेरा शिवनगर स्थित है । तू शुभाशुभ की जंगल-झाड़ी में उलझकर क्यों देरी कर रहा है ?" ॐ

"जिनस्वरूप होकर जिन को आराधे,
वे सही जिनवर होवे ॥"०००[१३]

सम्यग् साधना की जैन योगमार्ग की समग्र दृष्टि :

"अपने ही चैतन्य का तथा प्रकार से परिणमन-यही साकार उपासना श्रेणी का साध्यबिंदु है और वही सत्यसुधा कहा जाता है । हृदय-मंदिर से सहस्त्रदलकमल में उसकी प्रतिष्ठा करके उसमें ही लक्ष्य-वेधी धनुष्य की भांति चित्तवृत्ति-प्रवाह का अनुसंधान टिकाये रखना वही पराभक्ति अथवा प्रेमलक्षणाभक्ति कही जाती है । उपर्युक्त अनुसंधान को ही शरण कहते हैं । शर = तीर । शरणबल से स्मरणबल टिकता है । कार्यकारण के न्याय से शरण और स्मरण की अखंडता सिद्ध होने पर, आत्मप्रदेश में सर्वांग चैतन्य-चांदनी फैलकर सर्वांग आत्मदर्शन और देहदर्शन भिन्न-भिन्न रूप में दृष्टिगत होते हैं और आत्मा में परमात्मा की तस्वीर विलीन हो जाती है । आत्मा-परमात्मा की यह अभेदता ही पराभक्ति की अंतिम हद है । वही वास्तविक उपादान-सापेक्ष सम्यग्दर्शन का स्वरूप है ।

१३ पत्रसुधा : 256 साध्वीश्री विचक्षणाश्रीजी को श्री सहजानंदघनजी पृ. 245

"वह सत्यसुधा दरसावहिंगे, चतुरांगल व्है दृग से, मिल है ।
रसदेव निरंजन को पीवही, गही जोग जुगोजुग सो जीवहीं ॥"

(श्रीमद्जी रचित)

इस काव्य का तात्पर्यार्थ वही है । आँख और सहस्त्रदल कमल के बीच चार अंगुल का अंतर है । उस कमल की कर्णिका में चैतन्य की साकारमुद्रा यही सत्यसुधा है, वही अपना उपादान है । जिसकी वह आकृति खिंची गई है वह बाह्य तत्त्व निमित्त कारण मात्र है । उनकी आत्मा में जितने अंशों में आत्मवैभव विकसित हुआ हो उतने अंशों में साधकीय उपादान कारणत्व विकसित होता है और कार्यान्वित होता है । अतएव जिसका निमित्त कारण सर्वथा आत्मवैभव संपन्न हो उसका ही अवलंबन लेना चाहिये । उसमें ही परमात्मबुद्धि होनी चाहिये, यह रहस्यार्थ है । ऐसे भक्तात्मा का चिंतन और आचरण विशुद्ध हो सकता है, अतएव भक्ति, ज्ञान और योगसाधना का त्रिवेणी-संगम साधा जाता है, जिससे वैसे साधक को भक्ति-ज्ञान शून्य केवल योग-साधना करना आवश्यक नहीं है । दृष्टि, विचार और आचरणशुद्धि का नाम ही भक्ति, ज्ञान और योग है और उसी परिणमन से "सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः" है । "पराभक्ति के बिना ज्ञान और आचरण विशुद्ध रखना दुर्लभ है, इसी बात का दृष्टांत आ.र. प्रस्तुत कर रहे हैं न ? अतएव आप धन्य हैं, क्योंकि निज चैतन्यदर्पण में परमकृपाळु की तस्वीर अंकित कर सके हैं, ॐ"०००[१४]

जैनमार्ग के परमोपकारक

जैनविद्या और साधनामार्ग में प्रथम प्रत्यक्ष उपकारक रहे ऐसे योगनिष्ठ आ.श्री केसरसूरीश्वर के शिष्य आ.श्री भुवनरत्नसूरि और महाप्राज्ञ पद्मभूषण प्रज्ञाचक्षु पंडितश्री सुखलालजी एवं परोक्ष रहे दो परम उपास्य महायोगी श्री आनंदघनजी और आजन्मज्ञानी श्रीमद् राजचन्द्रजी कि जिनकी अंगुलि पकड़कर इस अल्पात्मा लेखक ने अंतर्यात्रा आरम्भ की थी, उन दो परमपुरुषों के अपार आत्मवैभव का स्पष्ट और सविशेष परिचय एवं दर्शन यहाँ संप्राप्त हुआ । इस काल में ऐसा आंतरिक परिचय योगीन्द्र मुनिश्री सहजानंदघनजी (भद्रमुनि) ने करवाया, जिनकी जैन योगमार्ग की मौन-गुप्त-प्रसिद्धि विहीन साधना असामान्य रही है । युगप्रधानपद प्राप्त होते हुए भी स्वयं को गौण, लघु बनाकर, श्रीमद्जी जैसों के आत्मवैभव के ध्यानानुसरण द्वारा 'स्वयं में स्थित' बनने प्रेरित करनेवाले इन परमपुरुष का उपकार इस अल्पज्ञ पर अपार रहा । प्रत्यक्ष परिचय और सत्संग-संपर्क तो रहा केवल पांच माह का और वह भी बेंगलोर से हम्पी की कंदराओं के बीच १९७० में । परंतु उनका वह स्वल्प संग काल-खंड-काल की पगदंडी पर जनमो-जनम का आतमरंग लगाकर गया — 'क्षणमपि सज्जनसंगतिरेका भवति भवार्णव तरणे नौका' की भाँति ।

१४ 'दक्षिणापथ की साधनायात्रा' (पृ. 32-33) एवं भक्तिकर्तव्य (पृ. VIII, IX)

"काळनी केडीए घडीक संग, रे भाई ! आपणो घडीक संग,

आतमने तो य जनमोजनम लागी जशे एनो रंग.... काळनी"०००[१५]

प्रथम आतमरंग लगाया था आनंदघनजी के द्वारा उपर्युक्त मुनिश्री भुवनविजयजी (आ.श्री. भुवनरत्नसूरि) ने और उसे सुदृढ़ सुविकसित किया योगीन्द्र भद्रमुनिजी सहजानंदघनजी ने । अनेक उपकारकों-परमोपकारकों-में इन दोनों का इस प्रसंग पर सर्वाधिक स्मरण होता है जैन योग मार्ग की चिंतना-निरुपणा करते हुए । सहजानंदघनजी के महाप्रयाण के पश्चात् उनके ही समकक्ष परंतु अत्यंत गुप्त और सम्यग्-योगस्थ आत्मज्ञा माताजी का सुदीर्घ सहवास उपकारक रहा । और माताजी के भी १४ वर्ष पूर्व महाप्रयाण के पश्चात् सुदूर से भी निकट ऐसा विदुषी विमलाताई का, जैन योगमार्ग को दृढ़ करानेवाला मौनपूर्ण सामीप्य लाभ आज पर्यंत प्राप्त हो रहा है । यह सब मेरा परम सौभाग्य, पावन पुण्य समझता हूँ ।

विमलाताई की 'पर्युषण प्रसादी' और श्रीमद् राजचंद्रजी की साधना की अनुमोदक पुस्तिका 'अप्रमादयोग' से सुज्ञजन सुविदित ही हैं ।

सर्व से विशेष उपकार जैन मार्ग की सम्यग् साधना में तो इस आत्मा पर योगीन्द्र श्री सहजानंदघनजी का, उपर्युक्त अल्पावधि मात्र का होते हुए भी बड़ा ही मूल्यवान और चिरकाल का बन रहा है । उनकी प्रत्यक्ष संगति और महामूल्यवान पत्र-व्यवहार इस अल्पज्ञ की जनम जनम की पूंजीवत् रहे हुए हैं । इस लेखक की भाँति जोधपुर के भूतपूर्व डिस्ट्रीक्ट एवं सेशन्स जज श्री मगरुपचंदजी भंडारी 'सहजानंद सुधा' में (कुछ रिकार्डिंग 'परमगुरु प्रवचन' में) उनके ऐसे अनमोल प्रदान के विषय में लिखते हैं :-

"उनकी वाणी का एक एक शब्द करोड़ो रुपयों का था और चिंतन करने योग्य था । ऐसे महापुरुषों की एक घड़ी की संगति वर्षों के अध्ययन से अधिक लाभदायक होती है ।"

स्व. मुनिश्री सुशीलकुमारजी ने सिद्धाचलम्-अमरिका की एक सभा में श्री सहजानंदघनजी के कल्पसूत्र-प्रवचनों की केसेट-मंजुषा प्रकाशित करते हुए उन्हें स्वानुभव से 'भारत के सर्वोच्च योगी' बतलाया था ।

श्री सहजानंदघनजी के सविशेष परिचय में आनेवाले विद्वद्वर्य स्व. श्री अगरचंदजी नाहटा और स्व. श्री भंवरलालजी नाहटा तो उनका विशिष्ट अंतरंग परिचय देते हुए उनकी वाणी को मूल्यांकन-से अतीत बतलाते हुए लिखते हैं —

"आज शॅक्सपियर आदि के हस्ताक्षरों का मूल्य लाखों के ऊपर है । परंतु इस अध्यात्म मार्तण्ड सहजानंदघन प्रभु की वाणी और उनके लेखन का मूल्यांकन करना मेरे लिए असंभव है । उनका महत्त्व निर्विवाद है । कुछ पत्र तो अमूल्य रत्न हैं । उनसे नित्य नवीन दृष्टि प्राप्त होती है । आप परमज्ञानी सत्पुरुष थे । उन्होंने अनेक जन्मों में उत्कृष्ट आत्मसाधना की थी । आप हज़ारों श्रोताओं की मनोगत

१५ गीत : निरंजन भगत (मूर्द्धन्य गुजराती कवि)

शंकाओं का समाधान व्याख्यान में बिना पूछे ही कर देते थे यह अनेकबार अनुभव किया है । वे केवल आत्मा सम्बन्धित प्रश्नों का ही समाधान करते..... ।''[१६]

वर्तमान के ये प्रयोगवीर परमयोगी

वर्तमानकाल के इस प्रयोगवीर परमज्ञानी परमयोगी का इस अल्पज्ञ को अल्प-सा और अन्यों को एवं उपर्युक्त नाहटा विद्वद्वर्यों को सविशेष संग संप्राप्त हुआ । परंतु जिन्हें उनका बिलकुल संग मिला नहीं है वैसे जैन योगमार्ग के साधक उनके विषय में क्या कहते हैं ? योगसाधक एवं चिंतक-लेखक जैन मुनिश्री चन्द्रप्रभ उनकी प्रयोगवीरता से प्रभावित होकर लिखते हैं :-

''मैं समझता हूँ दुनिया में कुछ श्रेष्ठ पुरुष ऐसे होते हैं जिन पर कुछ लिखने या बोलने की इच्छा होती है, पर कुछ अमृत पुरुष ऐसे होते हैं जिन्हें मात्र समझने और जीने का ही भाव होता है । योगीराज सहजानंदघन साधनात्मक जीवन के प्रेरणा के प्रकाश-स्तंभ हैं । इतिहास पुरुष अगरचंदजी नाहटा जैसे लोग तो सहजानंदजी के पदों पर घंटों अपना विवेचन करते थे ।

''मैं अपने जीवन में जिन अध्यात्म-पुरुषों से प्रेरित-प्रभावित हुआ, योगीराज सहजानंदघन उनमें से एक हैं । मेरे जीवन में साधनाकाल की शुरुआत उन्हीं गुफाओं से हुई है, जिनमें कभी योगीराज सहजानंदघन स्वयं तपे थे । मुझे प्रसन्नता है कि मेरी साधना उन्हीं की साधनास्थली से जुड़ी है । सच तो यह है कि मुझे आत्मप्रकाश की प्रथम उपलब्धि उन्हीं की तपोभूमि में, उन्हीं की कन्दरा में हुई । इसलिए सहजतः मैं उनके प्रति साभार नतमस्तक हूँ ।

''यद्यपि सहजानंदघनजी के सशरीर रहते हुए मुझे उनके सान्निध्य में रहने का अवसर नहीं मिला, पर मैंने उनकी गुफा में उनकी आध्यात्मिक उपस्थिति का एहसास पाया है ।

''योगीराज सहजानंदजी को मैं कलियुग में साधना का प्रतीक मानता हूँ । मेरी समझ से, साधना के लिए उन्होंने जितने प्रयत्न किये, वह अपने आप में अनुकरणीय हैं । साधना के लिए किस क्षेत्र का चयन किया जाए, इसके लिए उन्होंने देश के कई स्थानों का भ्रमण किया । वे अनेक स्थानों पर तपे, पर अन्ततः हम्पी का अरण्य और कन्दराएँ उन्हें रास आईं । मोकलसर की जिस सुनसान गुफा में वे तपे थे, उसे देखकर मुझे लगा कि इस भयंकर एकांत में रहकर साधना करना तभी सम्भव है, जब कोई व्यक्ति भय और लालसाओं पर विजय प्राप्त कर चुका हो । सिंह-भालू की बात न भी उठाएँ, पर इतना तो तय है कि वहाँ सर्प, बिच्छु, नेवले तो स्वच्छन्द विचरते ही थे । योगीराज सहजानंद के अध्यात्मप्रिय दृष्टिकोण और जीवन-शैली से मैं प्रेरित तो था ही, हम्पी में रहने से मुझे एहसास हुआ कि वे वास्तवमें निर्भय और अध्यात्मनिष्ठ थे ।

''सहजानंदजी की निष्परिग्रहता और तपोभावना आदरणीय है । वे भगवान महावीर के 'एक वस्त्र, एक पात्र' के सिद्धान्त को जीनेवाले योगी थे । भोजन वे एक समय ही लेते (बिना नमक

१६ श्री सहजानंदघन पत्रावली की प्रस्तावना : श्री भँवरलालजी : पृ. 6

और शक्कर का)... वैसे भी योगी लोग अपनी एक अलग ही मस्ती में जीते हैं । उनकी जीवनशैली अपनी तरह की (अनूठी और मौलिक) होती है । वे परम्पराओं का अनुसरण नहीं करते, वरन् परम्पराएं उनसे बनती हैं । साधना कैसे की जाए, उसके क्या मापदंड होते हैं, किसी को यह बात सीखनी हो तो इन योगीराज से सीखी जा सकती हैं ।

"अध्यात्मजगत् के एक और महापुरुष श्रीमद् राजचंद्र का सहजानंदजी पर गहरा प्रभाव था । वे उनका गुरुतुल्य सम्मान रखते थे । मेरे हृदय में भी उनके प्रति आदर-सम्मान है । मैंने उन्हें 'प्रकाश-पुरुष' के रूप में जाना है । उनके पद और पत्र आज भी हज़ारों मुमुक्षुओं के अन्तर्मन में अध्यात्म की लौ जगाने में प्रकाश-किरण का काम करते हैं ।

"साहित्य वाचस्पति श्री भँवरलालजी नाहटा ने सहजानंदजी की अनमोल साहित्यिक-सेवा की है, उन्होंने उन पर हज़ारों पेज लिखे हैं । प्रतापजी टोलियाने सहजानंदजी के प्रवचनों को अध्यात्मप्रेमियों तक पहुँचाने में अहम् भूमिका निभाई । मैं मानता हूँ कि मैंने उन पर कुछ कहने की कोशिश अवश्य की है, पर योगियों की योग-साधना हमारे हर कथन से ऊपर हुआ करती है ।"[१७]

जैन योग के वर्तमान के इस प्रयोगवीर परमयोगी ने अपने जीवन के अंतिम दस वर्षों में विस्मृत ऐसे जैन योग-ध्यानमार्ग की कर्णाटक के हम्पी की गिरि गुफाओं में जो प्रसिद्धिविहीन, नीरव, गुप्त एसी धुनि रमाई, उसका प्रकाश उपर्युक्त अपरिचित साधक की भाँति अन्य अनेक मर्मी पारखुओं तक भी पहुँचा । इस अवधूत योगी को सदेह से नहीं, विदेह से ही मिलकर-पहचानकर गुजरात के अवधूत संत कविश्री (सांई) मकरंद दवे ने ठीक ही लिखा है कि,

"भारत में आज जब अध्यात्म का, सच्चे अध्यात्म का अकाल दिखाई देता है तब हंपी के खंडहरों में मुझे नूतन प्रकाश दिखाई दे रहा है ।"[१८]

ऐसे अपरिचित साधना-पारखी जनों द्वारा दूर से भी अपनी अंतर्दृष्टि के द्वारा सहजानंदघनजी जैसे वर्तमान के प्रयोगवीर परमयोगी का और उनकी साधना का जो दर्शन हुआ है वह चिंतनीय और उपादेय है । वर्तमानकाल में जब जिनोक्त जैन योगमार्ग बहुधा विस्मृत हुआ है ओर अन्य परंपराओं के (सत्-असत्) योग-ध्यान पंथ फैले जा रहे हैं, तब जिनमार्ग की आराधना व पुनरुद्धार करने ऐसे योगद्रष्टाओं के अध्ययन-अनुशीलन पश्चात् अनुसरण करना हितप्रद हो सकता है । कलिकाल के महान उपकारक जैन योगाचार्य सर्वश्री हरिभद्रसूरि, समन्तभद्र, शुभचन्द्राचार्य, हेमचंद्राचार्य, आनंदघनजी, यशोविजयजी, चिदानंदजी, देवचन्द्रजी, बुद्धिसागरसूरि, केशरसूरि, शान्तिसूरि आदि अनेकों के जैन योग के क्षेत्र में प्रदान की भाँति वर्तमान के श्रीमद् राजचंद्रजी-सहजानंदघनजी जैसे अध्यात्मयोगियों के प्रदान का भी संशोधन मूल्यांकन होना चाहिये । जैन परंपरा के हितमें ही वह होगा ।

इतने खास उल्लेख के साथ इस शोधनिबंध आलेख के समापन पर आयेंगे ।

---

१७ सहजानंद सुधा की-2003 की तृतीयावृत्ति की भूमिका ।

१८ दक्षिणापथकी साधना यात्रा : (1993) : पृ. 11 : यह लेखक ।

जैन योगसाधना निष्पन्न
इस परमयोगी के कुछ साधकोपयोगी विशेष निष्कर्ष

साधकों, मुनिजनों के मार्गदर्शन हेतु श्री सहजानंदघनजी प्रत्यक्ष एवं पत्रों के द्वारा अथाह परिश्रम उठाने में आंनंदानुभव करते । विनयशील एवं लघुताधारी यह महायोगी गुणवानों के प्रति पूज्यभाव रखते । बहनों और चारित्रात्मा साध्वीजीओं को वे 'मातेश्वरी' शब्द से संबोधित कर अपने आप को बालक के रूप में दर्शित करते । अनेक मुनिजनों को उन्होंने प्रदान किये हुए जैनयोग के और रत्नत्रयी की साधना के मार्गदर्शन उनकी स्वयं की जैनयोग की अनुभूतिपूर्ण प्रयोग साधना से निष्पन्न हुए बने रहते । उनके ऐसे अनेक साधना-उपयोगी मार्गदर्शनों-निष्कर्षों में से थोड़े विशेष यहाँ प्रस्तुत करना सर्व जैनयोग साधकों और सर्व सामान्य आराधकों के लिये भी उपँयोगी सिद्ध होंगे । उनके ये पत्र-निष्कर्ष प्रधानत: योग्यतासभर ऐसे मुनिश्री आनंदघनविजयजी (वर्तमान के) और गौणत: उपा. लब्धिमुनिजी, गणिवर्य बुद्धिमुनिजी, संतबालजी, सुलोचन-विजयजी, जयानंदमुनिजी, महानंदविजयजी, माणेकविजयजी, सूर्यसागरजी, देवेन्द्रसागरजी, पुण्यसागरजी, भद्रसागरजी, निरंजनविजयजी, गणिवर्य प्रेममुनिजी, स्वामी ऋषभदासजी सिद्धपुत्र, आदि स्वनामधन्य, सुयोग्य, जिज्ञासातृषातुर पूज्य ऐसे चारित्रात्मा मुनिवर्यों के प्रति लिखे हुए होने के कारण उनका सविशेष महत्त्व है । भारत कोकिला साध्वीश्री विचक्षणाश्रीजी आदि उनके साध्वीजीओं के अतिरिक्त स्व. विदुषी साध्वीश्री निर्मलाश्रीजी एवं स्व. प्रसन्नात्मा साध्वीश्री मृगावतीश्रीने भी इस लेखक के द्वारा उनके साथ आत्मसाधनार्थ महत्त्वपूर्ण जैनयोग साधना विषयक पत्रव्यवहार किया था जिनमें से कुछ उपलब्ध प्रकाशित भी हो रहे हैं ।

विविध विषयों के इन उपयोगी, उपादेय, उपकारक पत्र-निष्कर्षों का अनुशीलन करें :-

● आत्म-ध्यान का प्रबल निमित्त जिन-प्रतिमा : "जैन प्रतिमा के प्रति श्रद्धान्वित हुए बिना संदेहशील रहने से तीनकाल में भी सम्यग्दर्शन की उपलब्धि नहीं होती और पुण्यानुबंधी पुण्य के बिना सच्चा मोक्षमार्ग उपलब्ध होना कालदोष के प्रभाव से कठिन बन गया है।"

● ज्ञानावतार श्रीमद् राजचंद्रजी की सद्गुरुपद पर शरणता :

"अनन्य आत्मशरणप्रदा, सद्गुरु राजविदेह,
पराभक्तिवश चरण में, धरुं आत्मबलि एह ।"

"इस काल में प.पू. कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी एक अद्वितीय पुरुष हो गए । उनके साहित्य को कहीं पर से प्राप्त करके पढ़ें और उनका प्रार्थना आदि का जो क्रम है वह भी अपनाएँ ।०००[१९]

(विशेष दृष्टव्य श्री सहजानंदघनजी लिखित "उपास्यपदे उपदेयता ।")

१९ (श्री सहजानंद पत्रावली : 442-443)

● **आत्मज्ञान वहाँ मुनिदशा :**

"आत्मज्ञानी श्रमण कहावे, बीजा तो द्रव्यलिंगी रे" (आनंदघनजी)

"आत्मज्ञान त्यां मुनिपणुं, ते साचा गुरु होय" (श्रीमद् राजचंद्रजी)

आत्मज्ञान-ज्योतिवाले ही साधु, सचमुच में साधु कहे जायेंगे, क्योंकि 'अप्पणाणेण मुणि होई' ऐसा आचारांग सूत्र में कहा है।[२०] (पत्रांक-१४३)

● **धर्मध्यान में से शुक्लध्यान में प्रवेश :**

"भूत-भावी की कल्पनाओं को त्याग कर केवल वर्तमान क्षण धर्मध्यान में ही व्यतीत हो तो शुक्लध्यान के प्रथमपाद में प्रवेश होकर आत्मसाक्षात्कार अवश्य होगा। अतः शेष सारी कल्पनाएँ हटा दें और आगेकूच करें।"[२१] (पत्रांक-१६६)

● **ध्यानबल-स्वाध्याय बल :**

"ध्यानबल के द्वारा समाधि स्थिति उत्पन्न होती है और वही 'संवर समाधिगत उपाधि' सम्यक्चारित्र है, जिसका फल मोक्ष है। स्वाध्याय बल के द्वारा ध्यान-बल बढ़ता है। अतएव अहोरात्र में ४ प्रहर स्वाध्याय और २ प्रहर ध्यान करने की आज्ञा उत्तराध्ययन में बतलाई है। जब जिस ध्यान में स्थिरता न रह सके तब उसे स्वाध्याय आवश्यक है। यदि ध्यान टिका रहता हो तो उसे स्वाध्याय उस काल में आवश्यक नहीं है। व्याख्यान काल में 'स्वलक्ष्य' से स्वाध्याय करता हूँ' एसा भाव स्थिर बनाकर कर्तव्य अदा करने से अभिमान नहीं आता है। श्रोता भले ही सुनें, हम तो अपने को ही उद्देश कर स्वाध्याय करते रहें।"[२२] (पत्रांक १८१)

● **जप और ध्यान का भेद :**

"आपको पढ़ने (वाचन) के बजाय जप पर अधिक रुचि है वह हितरुप है। क्योंकि तत्त्वनिर्णय में दृढ़ता के लिये स्वाध्याय और तत्त्वानुभूति के लिये ध्यान ये साधन हैं। जप यह ध्यान के भेदरूप में है। अतः उल्लसित रोमांकुर सह उसमें निमग्न बनो।" (जप श्वासोच्छ्वासपूर्वक)[२३] (पत्रांक १५४)

सर्वार्थ हेतु उपादेय सिद्धचक्र मंत्र :

उसका सार 'सहजात्म स्वरूप परमगुरु' मंत्रः "यह सोऽहं" अहंग्रह उपासना मंत्र है। उसमें परमात्मा का अवलंबन नहीं है। जिन्हें अनेक लब्धि-सिद्धियाँ प्रकट होने पर भी अहंभाव स्पर्श न कर सके वैसे उत्तम पात्रों के लिए ही यह मंत्र उपादेय है। शेष के लिए हेय है। जबकि नवपद मंत्र, सिद्धचक्र मंत्र ये भक्तिप्रधान मंत्र होकर वैसे दोष से साधक को बचा लेते हैं। अतएव सर्व साधकों के लिए

२० श्री सहजानंद पत्रावली : 143
२१ श्री सहजानंद पत्रावली : 166
२२ श्री सहजानंद पत्रावली : 181
२३ श्री सहजानंद पत्रावली : 154

उपादेय हैं। सिद्धचक्र अर्थात् चार प्रकार की आराधनायुक्त पांचों गुरुपद पर प्रतिष्ठित, सहज, जन्म मरणादि रहित, अकृत्रिम आत्मस्वरूप से सहज आत्मस्वरूप है। अतएव सिद्धचक्र मंत्र का सार **'सहजात्म स्वरूप परमगुरु'** यह मंत्र है। चारों आराधनायुक्त पांच पद परमगुरु कहे जाते हैं। वे परमगुरु सहजात्म स्वरूप हैं। प्रत्युत् जन्म-मरणयुक्त कृत्रिम देहस्वरूप नहीं ही हैं। इसलिए नवपद या पांच पद के सार रूप यह 'सहजात्म स्वरूप परमगुरु' भक्ति मंत्र है, जिसकी आराधना परमकृपाळुदेव ने करके आत्मसमाधि दशा प्राप्त की थी। अहंग्रह अथवा भक्तिप्रधान उभय निरालंबन सालंबन ध्यान के प्रकारों में से अपनी योग्यतानुसार एक मंत्र का निष्ठापूर्वक आराधन करने से आत्मशुद्धि और सिद्धि अवश्यंभावी है। अतः बार बार मंत्र बदलते रहने से और अनेक मंत्रों की आराधना से शक्ति का संगठित एवं एकाग्र होना कठिन पड़ता है। इस तथ्य का स्वीकार कर आपको जो उचित प्रतीत हो उस मंत्र में एकनिष्ठ बनो यह अधिक हितकर होगा। यदि शुष्कता एवं अभिमान से बच सको तो 'सोऽहं' का ध्यान कर सकते हो। उससे घंटनाद जुड़ेगा। नादलय से सुधारस की धारा प्रकट होगी। उस धारा से मन-पवन सहज में ही स्थिर होगा। उस स्थिरता से चैतन्यज्योति झिलमिल झगमगायेगी। उस ज्योति से चक्रभेदन षट्चक्रादि जो कमलाकार हैं वे उद्घाटित होते जायेंगे (खुलते जायेंगे) और उससे दिव्य सुगंधी फैलेगी। प्रति चक्र में ध्यान, धारणा और समाधि स्थिति से रहने पर पुरुष संस्थान ऐसे लोक के अर्थात् विश्व के उन उन विभागों के दर्शन होते जायेंगे, इस प्रकार समग्र सर्वांग ध्यान से विश्वदर्शन आत्मा में होगा। अंत में विश्वदर्शन के प्रत्याहार से आत्मसाक्षात्कार होगा। उस पर से 'जे एगं जाणई से सव्वं जाणई' यह आचारांग कथन सिद्ध होगा। सुज्ञेषु किं बहुना ?"[२४] (पत्रांक-१४३)

परमयोगेनान्ते परमयोगी का महाप्रयाण

उपसंहार-अंतिमा से पूर्व, स्थल मर्यादावश, जैनयोगमार्ग के इस योगीन्द्र परमयोगी के ऐसे थोड़े-से निष्कर्षों-अवतरण उद्धरणों परिचय-उल्लेखों के अंत में, उनके १९७० ईस्वी में हुए अभूतपूर्व ऐसे समाधिमरण का निर्देश कर के विराम लेंगे। उनका ५७ वर्ष की देहायु का यह समाधिमरण असामान्य था, 'योगेनान्ते तनुत्यजाम्' के न्याय से इस काल की विलक्षण योगिक घटनारूप था :

श्रीमद् राजचंद्र आश्रम-रत्नकूट हंपी (कर्णाटक) की वह छोटी-सी नीरव गुफा... उसमें काष्ठपाट पर बिना किसी (वस्त्र) शय्या पर, अट्ठम के चौविहार उपवासपूर्वक, सतत आत्मभान सह देह को कायोत्सर्ग में रखकर सोये हुए ये योगीन्द्र..... ! कार्तिक शुक्ला दूज के अमृतवेला-निकटस्थ प्रभात की, महीनों पूर्व गुप्त रूप से पूर्वसूचित (निर्धारित) पल पर, उन्होंने परम प्रसन्नता एवं आत्मा की सतत सजगतापूर्वक देह को - देह के सर्व योगों को — संकुचित किया-स्वयं में शमित किया और फिर... फिर किस प्रकार देहत्याग कर महाप्रयाण किया इसकी कल्पना कोई कर सकेगा ?

२४ श्री सहजानंद पत्रावली : 143 + "आत्मदर्शन-विश्वदर्शन" परमगुरु प्रवचनमाला सी.डी.

..... निकटस्थ में से थोड़े से साधकों की ही मौनपूर्ण स्तब्धता बीच, स्वयं के अंतरंग आत्मसमाधिमय अजपाजाप – अनहद अनाहृत की स्वरूप रमणता-सहजात्मस्वरूप रमणता – में देह के भीतर विस्तृत ऐसे (अपने) सर्व आत्मप्रदेशों को समेट कर, उन्हें ब्रह्मरंध्र के सहस्त्रदलकमल में स्थापित कर, मानों लक्ष्यवेधी बाण (तीर) अथवा आधुनिक रोकेट-उड्डयनवत् ब्रह्मरंध्र को छेदकर (पार कर) उस दसवें द्वार से उन्होंने देहत्याग किया..... ।

... क्या क्या लिखें, अभिव्यक्ति-अक्षम अनुभूतियों को शब्दांकित करने की चेष्टा करें – सब व्यर्थ, सब स्वसंवेद्य, सब अकथ्य – 'योगात्माओं के उड्डयन और गहनताएँ अगाध आकाशवत् ।''

इस परमयोगी के स्थूलदेह की विदा के पश्चात् अब शेष रहा है उनका वह पावन समाधिमरण गुफास्थान – जिसे उनकी सी ही आत्माधिकारसंपन्न-सक्षम जगत्माता आत्मज्ञा माताजी ने सम्हालकर सुरक्षित रखा है .....

शेष रहा है उनके अक्षरदेहवत् महामूल्यवान उनका लिखित साहित्य और उससे भी विशेष मूल्यवान उनका स्वरदेह-उनकी प्राणवान-प्रसाद-माधुर्य-ओजपूर्ण, गूढ़ विषयों को सरल बनाती, मुर्दों में भी जान फूँककर उन्हें जगाती योगवाणी-तत्त्ववाणी – जिसकी अग्रज आश्रम- अध्यक्ष द्वारा अनेक रिकार्डस्थ कैसेटों – सी.डी. को संपादित प्रकाशित करने का दुर्लभ कष्टसाध्य सौभाग्य इस लेखक आत्मा को, सद्‌गुरु के किसी अकल अनुग्रह और संकेत से, संप्राप्त हुआ है । इस परमयोगी की सदा की साक्षात् स्मृति-साक्षी प्रदान करनेवाला यह श्रुत साहित्य आज प्रतीक्षा करता हुआ खड़ा है – वर्तमान और भावी के अनेक तृषातुर, प्रयोगवीर जैन योगसाधक, आत्मसाधकों की । परमयोगी परमगुरुदेव ने इस अल्पात्मा को सौंपी हुई विश्वभर को वीतरागवाणी से गुंजायमान कर भर देने की आर्ष-दर्शन-आज्ञा अब शीघ्र साकार होनेवाली है ।

उपसंहार-अंतिमा :

प्रत्याख्यान-आत्म-विद्याप्रवादादि श्री जिनप्रणीत १४ पूर्वः उनके अंश रूप जिनागमों का अथाह सागर ! जैनविद्याओं-विश्वविद्याओं-योगविद्याओं-आत्मविद्याओं का महार्णव !!... उस विराट ज्ञानोदधि के एक बिंदु का अंशमात्र भी नहीं, केवल एक छोटे-से ओसबिंदु रूप यहाँ इस आलेख के स्वरूप में इस अल्पात्मा द्वारा जो कुछ शब्दांकित हो सका वह भी महापुरुषों के अपार अनुग्रह का प्रतिफल और योगबल... !! उसमें जो कुछ ज्ञेय-उपादेय हो वह उनका, और हेय, क्षति, दोष, सीमामय हो वह इस लिखनेवाले का । प्रस्तुत लेखन में प्रमादवश ज्ञाताज्ञातरूप में, जिनाज्ञा-सद्‌गुरूआज्ञा के विरुद्ध कोई निरूपण हो गया हो तो मिच्छामि दुक्कडं । वैसे तो यह है इस अल्पज्ञ की अनधिकार बालचेष्टा, परंतु सद्‌गुरु आज्ञासे, विस्मृत ऐसे जैन योग मार्ग की इस महान परमयोगी के किंचित् रेखाचित्र के द्वारा, किंचित् संशोधना, अनुमोदना, प्रभावना हो ऐसा शुभाशय तो अवश्य ।

प्रशमरसपूर्ण, प्रसन्नवदना जिनप्रतिमा के प्रथम दर्शन से ही योगावस्था का सुस्पष्ट संकेत- प्रदायक जैन योगमार्ग (पातंजलादि के अष्टांग योग, बौद्धों के षडांगयोग एवं शून्ययोग इत्यादि) अन्य योग ध्यान पथों-परंपराओं से नितांत निराला, विशिष्ट, समग्रतापूर्ण और चिरस्थायी ऐसी आत्मसिद्धि,

परिशुद्ध आत्मानुभूति का मार्ग । उसके प्रणेता परिपूर्ण, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ आर्हत् । उनका सुस्पष्ट ऐसा स्याद्वादी-अनेकांतवादी अनंत अनंत नय-निक्षेपों से पूर्ण दर्शन, आत्मदर्शन । उसके द्वारा स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल-स्वभाव में हो सकनेवाला विचरण । उसके जरिये बहिरात्मदशा से अंतरात्मदशा, शुद्धात्मदशा-सिद्धात्मदशा में पहुंचानेवाला ऊर्ध्वगमन । ऐसा ऊर्ध्वलोकानुगमन कि जहाँ विलसित है "एक परमाणु मात्र की मिले नहीं स्पर्शना" युक्त शुद्धात्मा का पूर्ण निरंजन, अकलंक, अव्याबाध आनंद स्वरूप – सच्चिदानंद स्वरूप – सहजानंद स्वरूप । जहाँ प्रवर्तमान है – महाभाग्य सुखदायक, पूर्ण, अबंध ऐसा अयोगी गुणस्थानक, विविध योगों से पार का 'अ-योग' का गुणधाम, निजधर, निजनिकेतन, परमपद !!

उस परमपद की प्राप्ति का हमने-आपने-सभीने ध्यान लगाया है, भावन किया है, परंतु उस हेतु अपेक्षित शक्ति, क्षमता, योग्यता-पात्रता कहाँ ?

बिना सामर्थ्य के हमारे उस 'हाल मनोरथरूप' में से यदि संनिष्ठ सद्गुरुश्रद्धा एवं सद्गुरुआज्ञा प्रेरित हमारा पुरुषार्थ होगा तो हमारी उस श्रद्धादि के प्रतिफल रूप में प्रभु परमगुरु ही हमें उठाकर अवश्य वहाँ ऊँचे पहुँचा देंगे । हम हमारा यह आज्ञापूर्ण पुरुषार्थ गतिमान रखें । पुरुषार्थसभर इस जिन-ध्यान-निजध्यान के अंत में, हमारी अंतस्-श्रद्धा और दृढ़ आत्मविश्वासपूर्ण संकल्प कहते हैं कि हम उस परमपद पर पहुँचानेवाला केवलज्ञान पायेंगे ही :

"पामशुं, पामशुं, पामशुं रे अमे केवलज्ञान हवे पामशुं"

"आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे ।"

परम पुरुषार्थ से, परम अनुग्रह से, प्रभु आज्ञा से हम आप सभी तो वह परमपद प्राप्त करेंगे ही, परंतु हमारे साथ का उस जिनमार्ग-मूलमार्ग का आराधक यह सांप्रत सहयात्री साधक समाज भी वह क्यों न प्राप्त करें ? क्यों वह पीछे रहे ? भीतर से महावेदना की टीस उठती है उसकी आज की प्रमादपूर्ण, शिथिल, छिन्नभिन्नता की भेदों से भरी हुई दशा-अवदशा को देखकर ! जैन योग-मार्ग की इस अनुचिंतना के अंत में प्रश्न उठता है – प्राण प्रश्न उठता है :-

"अनंत उपकारक तीर्थंकर भगवंतों के कतिपय पूर्वो-आगमों द्वारा प्रबोधित जिनमार्ग का अनुगामी जैन समाज आज कहाँ है ? उन आगमों के धारक गणधरों द्वारा प्ररुपित-प्रतिबोधित जीवनदाता, रोगनिवारक योगविद्याओं के होते हुए भी हमारी बाह्यांतर अवस्था ? महाप्राणध्यान-ध्याता 'भद्रबाहु का, गृहस्थों के हेतु भी, योगग्रंथ योगशास्त्र प्रदाता महाउपकारक हेमचंद्राचार्य का अनुयायी, 'योगी' बनने हेतु निर्मित हमारा "अहिंसक" जैन समाज इतना रोगी क्यों ? चारों ओर इतने रोग और "हिंसक" अस्पतालों की भरमार ? हमारी निर्दोष शाकाहारी, सवास्थ्यप्रद, शांत जीवनचर्या होते हुए भी ?

क्या उसने हमारे व्रतों-अनुष्ठानों-चर्याओं का, योग के सत्साधनों का भली भाँति विवेक-जागृतिपूर्वक पालन किया नहीं हैं ? क्या वह अभावों अथवा अति-योगों में डूबकर प्रमाद में पड़ गया है ? क्या वह स्वयं ही रात्रिभोजनादि, अभक्ष्याहारादि में लुढ़ककर पथभ्रष्ट हो गया है ?

उक्त परमयोगी इस ओर भी उंगली उठाते हैं, पद पद पर अपनी ओजस्विनी वाणी में प्रमादी जिनाराधक समाज को जगाते हैं । डंके की चोट पर वे कहते हैं कि :-

"वीर के अनुगामी, वीर की संतानें वीर होती हैं, सत् पुरुषार्थी होती हैं, कायर नहीं !"

परमगुरु की परमवाणी का वे पुनः पुनः प्रतिघोष सुनाते हैं कि –

"हे जीव ! प्रमाद छोड़कर जागृत हो जा, जागृत हो जा, अन्यथा रत्नचिंतामणितुल्य यह मनुष्यजन्म निष्फल चला जाएगा !"

हम इन्हें सुनें, सोचें, संशोधन करें, जैन योगमार्ग के अनुरूप सुयोग्य ऐसी निर्दोष, अहिंसक औषधोपचारयुक्त जैन जीवनशैली अपनायें। व्यवहार कार्य के क्षेत्र में हम प्रभुप्रतिमाध्यान के हितकर आलंबन को प्रथम ग्रहण कर, प्रभुध्यान में मग्न बनकर, वीर जिनेश्वर के पास 'वीरत्व' मांगकर, अंत में उस सालंबन ध्यान को भी त्याग कर स्वरूप में सर्वथा स्थिर होकर, परभाव-पर परिणति को छोड़कर अंतस् में सुप्त अपने महासमर्थ आतमराम के अनुभवनाथ को जगाकर, प्राप्त करें और गायें उस संस्थिति को कि जहाँ –

"अक्षय दर्शन ज्ञान वैरागे, आनंदघन प्रभु जागे रे"
(वीर जिनेश्वर चरणे लागुं, वीर पणुं ते मागुं रे ॥) आनंदघनजी

वीरत्व प्राप्ति की महायोगी आनंदघनजी की इस भावना को भाते हुए समापन करें हम चिंतन करते हुए परमयोगी श्री सहजानंदघनजी के इस अष्ट-योग-दृष्टि-समुच्चय-सारपद का और तत्पश्चात् अंत में श्रीमद् राजचंद्रजी की स्वरूपजागृतिकारक महागाथा का –

"तृण तेज सम-भा खेद-क्षय, अद्वेष यम मित्रा नहीं
छाणाग्नि-भा अनुद्वेग जिज्ञासा नियम तारा अहीं
काष्ठाग्नि-भा अविक्षेप सुश्रूषा सधे आसन बला
अनुत्थान, दीप प्रभा-श्रवण प्राणायामी दीप्रा भला... १

रत्ना-भ, भ्रान्तिक्षय, स्थिरा, निजबोध प्रत्याहारणा
तारा-भ कान्ता, अन्यमुद् क्षय, गुणमीमांसा धारणा
भवरोग-क्षय रवि-भा प्रभामां ध्यान सत्प्रति ज्यां
आसंग-क्षय राशि भा परा स्व प्रवृत्ति सहज समाधि त्यां।"... २

(सहजानंदघनजी)

"शुद्ध बुद्ध चैतन्यधन स्वयंज्योति सुखधाम।
बीजुं कहिये केटलुं, कर विचार तो पाम ॥"

(श्रीमद् राजचंद्रजी)

(शुद्ध बुद्ध, चैतन्यधन, स्वयंज्योति शिव-शर्म।
कर विचार तो पायेगा, अधिक कहूँ क्या कर्म ॥)

(श्री सहजानंदघनजी कृत अनुवाद : सप्तभाषी आत्मसिद्धि-११७)

॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ श्री सद्गुरुचरणार्पणमस्तु ॥

प्रकरण-८ Chapter-8

दक्षिणापथ की साधना-यात्रा

प्रा. प्रतापकुमार टोलिया
अनुवादिका : स्व. कु. पारुल प्र. टोलिया

दक्षिण भारत के प्राचीन एतिहासिक तीर्थ रत्नकूट-हम्पी-विजयनगर पर निर्मित हो रहे नूतन तीर्थधाम 'श्रीमद् राजचंद्र आश्रम', उसके संस्थापक महामानव योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानंदघनजी एवं कुछ साधकों की प्रथम दर्शन-मुलाकात की एक परिचय-झांकी : एक झलक १९६९ की

कर्नाटक प्रदेश : बेल्लारी जिला : गुंटकल-हुबली रेल्वे लाइन पर स्थित होस्पेट रेल्वे स्टेशन से सात मील दूर बसा हुआ प्राचीन तीर्थधाम हम्पी.....

यहाँ पर केले, गन्ने और नारियल से छाई हुई हरियाली धरती के बीच-बीच खड़ी हैं असंख्य शिलाएं और छोटी बड़ी पथरीली पहाड़ियाँ । साथ ही साथ दूर तक मीलों और मीलों के विस्तार मे फैले पड़े हैं – जिनालय, शिवालय, वैष्णव मंदिर और विजयनगर साम्राज्य के महालयों के खंडहर एवं ध्वँसावशेष । हम्पी तीर्थ के नीचे के भाग में खड़े विरूपाक्ष शिवालय और उसके निकट की ऊँचाई पर स्थित "हेमकूट", "चक्रकूट" के अनेक ध्वस्त जिनालयों के ऊपरी पूर्व भाग में फैली हुई हैं रत्नगर्भा वसुन्धरा की सुरम्य पर्वतिका "रत्नकूट" । रत्नकूट के उत्तरी भाग में नीचे कुछ चक्राकार बह रही है – स्थित प्रज्ञ-की-सी तीर्थ-सलिला तुँगभद्रा सदा-सर्वदा, अविरत, बारह माह ।

बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत के समय से अनेक महापुरुषों एवं साधक जनों ने पौराणिक एवं प्रकृति-प्रलय के परिवर्तनों की स्मृति दिलाने वाले इस स्थान का पावन संस्पर्श किया है । दीर्घकाल व्यतीत होते हुए भी उनकी साधना के आंदोलन एवं अणु-परमाणु इस धरती और वायु-मण्डल के कण-कण और स्थल स्थल में विद्यमान प्रतीत होते हैं । मुनिसुव्रत भगवान के शासन काल में अनेक विद्याधर सम्मिलित थे–उनमें विद्यासिद्ध राजाओं में थे–रामायण प्रसिद्ध बाली, सुग्रीव आदि । यह विद्याधर भूमि ही उनकी राजधानी थी । 'वानर द्वीप' अथवा 'किष्किन्धा नगरी' के नाम से वह पहचानी गई है । यहाँ के अनेक पाषाण अवशेष उसकी साक्षी देते हैं । तत्पश्चात् एक लम्बे से काल-खंड के बीतने के पश्चात् सृजित हुए-विजयनगर के सुविशाल, सुप्रसिद्ध साम्राज्य के महालय और देवालय । ईस्वी सन् १३३६ में एवं १७वीं शताब्दी तक अपना अस्तित्व टिकाये रखकर अन्त में विविध रूप में विनाश को प्राप्त ये महालय अपने अपार वैभव की स्मृति छोड़ते गये, ऊंचे अडिग खड़े उनके खंडहरों के द्वारा ।

बुलावे गुफाओं गिरि-कन्दराओं के

इन सभी के बीच महत्वपूर्ण है–अनेक जिनालयों के खंडहरों वाले 'हेमकूट', 'भोट' एवं 'चक्रकूट' के, "सद्भक्त्या स्तोत्र" उल्लिखित प्राचीन, पहाड़ी जैन तीर्थ । उनका इतिहास, भगवान मुनिसुव्रत स्वामी के समय से लेकर इस्वी सन् की सातवीं सदी तक एवं क्वचित् क्वचित् उसके बाद तक भी जाता हुआ दिखाई देता है । उक्त 'हेमकूट' के पूर्व मे एवं उत्तुंग खड़े "मातंग" पहाड़ के पश्चिम में हैं-गिरिकन्दराएँ, शिलाएँ, जलकुँड, एवं खेतों से भरा हुआ, किसी परी-कथा की साकार सृष्टि का-सा 'रत्नकूट' पर्वतिका के शैल प्रदेश का विस्तार ।

अनेक साधकों की विद्या, विराग एवं वीतराग की विविध साधनाओं की साक्षी देने वाली और महत्पुरुषों के पावन संचरण की पुनीत कथा कहने वाली रत्नकूट की ये गुफाएं, गिरि कन्दराएं एवं शिलाएं मानों भारी बुलावा देकर "शाश्वत की खोज" में निकले हुए साधना-यात्रियों को बुलाती हुई प्रतीत होती हैं, अपने भीतर संजोए रखे हुए अनुभवी जनों के सदियों पुराने फिर भी चिर नये ऐसे जीवन संदेश को वर्तमान मानव तक पहुँचाने के लिये उत्सुक खड़ीं दिखाई देती हैं... । उसके अणु-रेणु से उठने वाले परमाणु इस संदेश को ध्वनित करते हैं । पूर्वकाल में अनेक साधकों की साधना भूमि बनने के बाद, इस सन्देश के द्वारा नूतन साधकों की प्रतीक्षा करती हुईं पर्याप्त समय तक निर्जन रही हुई एवं अंतिम समय में तो दुर्जनावास भी बन चुकीं इन गुफाओं-गिरि-कन्दराओं के बुलावों को आख़िर एक परम अवधूत ने सुने..... ।

इक्कीस वर्ष की युवावस्था में सर्वसंग परित्याग कर जैन मुनि-दीक्षा ग्रहण किये हुये, बारह वर्ष तक गुरुकुल में रह कर ज्ञान-दर्शन-चरित्र की साधना का निर्वहन किये हुए एवं तत्पश्चात् एकाँतवासी-गुफावासी बने हुए ये अवधूत अनेक प्रदेशों के वनोपवनों में विचरण करते हुए, गुफाओं में बसते हुए, अनेक धर्म के त्यागी-तपस्वियों का सत्संग करते हुए विविध स्थानों में आत्मसाधना कर रहे थे । अपनी साधना के इस उपक्रम में अनेक अनुभवों के बाद उन्होंने अपने उपास्य पद पर निष्कारण करुणाशील ऐसे वीतराग पथ-प्रदर्शक श्रीमद् राजचंद्रजी को स्थापित किया । मूलतः कच्छ के, पूर्वाश्रम में 'मूलजीभाई' के नाम से एवं श्वेताम्बर जैन साधु-रूप के दीक्षा-पर्याय में 'भद्र-मुनि' के नाम से पहचाने गये एवं एकांतवास तथा दिगम्बर जैन क्षुल्लकत्व के स्वीकार के पश्चात् 'सहजानंदघन' के नाम से प्रसिद्ध यह अवधूत अपने पूर्व-संस्कार से, दूर दूर से आ रहे इन गुफाओं के बुलावों को अपनी स्मृति की अनुभूति के साथ जोड़कर अपने पूर्व परिचित स्थान को खोजते अन्त में यहां अलख जगाने आ पहुँचे... ।

ये धरती, ये शिलाएँ, ये गिरि कन्दराएँ मानों उनको बुलावा देती हुई उनकी प्रतीक्षा में ही खड़ी थीं.... । रत्नकूट की गुफाओं मे प्रथम पैर रखते ही उनको वह बुलावा स्पष्ट सुनाई दिया । पूर्व स्मृतियों ने उनकी साक्षी दी । अंतस् की गहराई से आवाज़ सुनाई दी–"जिसे तू खोज रहा था, चाह रहा था, वह यही तेरी पूर्व-परिचित सिद्धभूमि ।"

अवधूत का अलख जागा... और साकार हुआ गिरिकंदराओं में आश्रम !

और उन्होंने यहाँ अलख जगाया। एकांत, वीरान एवं भयावह इन गुफाओं में आरंभ हुआ उनका एकांतवास। निर्भय एवं अटल रूप से उन्होंने अपनी अधूरी साधना पुनः आरंभ की। उस साधना का लाभ दक्षिण भारत के अनेक साधक उठा सकें, इस उद्देश्य से उन गिरि-कन्दराओं में साकार हुआ यह 'श्रीमद् राजचंद्र आश्रम'। श्रीमद् इस साधना के केन्द्र-बिन्दु थे। आज से* आठ वर्ष पूर्व, वि.सं. २०१७ में 'आत्म तत्त्व की साधना के अमीप्सुओं के लिए', बिना किसी जाति-वेश, भाषा, धर्म, देश इ. के बंधन लिए हुए।

'रत्कूट' की प्राचीन साधना भूमि की विभिन्न गुफाओं, गिरि-कंदराओं एवं शिलाओं के मध्य इसका विस्तार होता चला... सर्व-धर्मों के साधक इस साधना से आकर्षित हो दूर दूर से आने लगे.... 'श्रीमद् राजचंद्रजी की आत्मदर्शन की आतुरता एवं परमपद-प्राप्ति हेतु नियत विशुद्ध साधनामय जीवन एवं कवन' से दक्षिण के अपरिचित साधक प्रभावित होने लगे। उनके जीवन-दर्शन एवं निर्देश के अनुसार साधना करवा रहे अवधूत श्री सहजानंदघन-भद्रमुनिजी की अन्य धर्माचार्यों एवं राजपुरुषों ने स्तुति की। यह उनकी समन्वयात्मक स्याद्वाद शैली की साधना की एक अतुलनीय सिद्धि है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण था—रामानुज संप्रदाय के आचार्य श्री तोलप्पाचार्य एवं मैसूर राज्य के गृहप्रधान श्री पाटिल द्वारा 'रत्नकूट' की जमीन का प्रदान। ३० एकड़ के विस्तार की उस पर्वतीय भूमि पर आज लगभग दस गुफाएं, सर्वसाधारण एवं व्यक्तिगत निवास-स्थान, गुरुमंदिर, गुफामंदिर, भोजनालय एवं छोटी-सी गौशाला पाये जाते हैं। कई निवासखंड, एक दर्शन विद्यापीठ, सभामंडप, श्रीमद् राजचंद्रजी का ध्यानालय, एवं एक विशाल जिनालय निर्माणाधीन हैं। आश्रम में एकाकी एवं सामूहिक-दोनों प्रकार से सम्यग् दर्शन-चारित्र की, दूसरे शब्दों मे दृष्टि, विचार, आचारशुद्धि एवं भक्ति, ज्ञान, योग की साधना चल रही है। आश्रम के द्वार बिना किसी भेदभाव के सब साधकों के लिये खुले हैं। हाँ, साधकों के लिये कुछ नियम अवश्य हैं, जिनमें श्रीमद् राजचन्द्रजी के जीवन दर्शन, आचार एवं विचार का प्रतिबिम्ब है। प्रथम नियम ध्यान आकर्षित करता है— "मत-पंथ के आग्रहों का परित्याग एवं पन्द्रह भेद से सिद्ध के सिद्धांतानुसार धर्म-समन्वय।"

यह नियम श्रीमद् के सुविचार की स्मृति दिलाता है : "तुम चाहे किसी धर्म को मानो, मैं निष्पक्ष हूँ..... जिस राह से संसार के मल का नाश हो, उस भक्ति-मार्ग धर्म एवं सदाचार का तुम पालन करना।"

साधकीय नियमावली के अन्य निषेधों में इस सदाचार का समावेश हो जाता है, यथा, सात व्यसन, रात्रिभोजन, कंदमूल आदि अभक्ष्य पदार्थों का वीतरागता युक्त त्याग।

---

* इस लेख के लेखन-समय सन् 1969, संवत् 2026 से।

यहाँ व्यक्तिगत या सामुदायिक रूप से साधना करने का स्वातंत्र्य है। इसमें स्वाध्याय, सामायिक-प्रतिक्रमण इत्यादि धर्मानुष्ठान, ध्यान, भक्ति, मंत्रधून, प्रार्थना, भजन इत्यादि का समावेश होता है। साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक कार्यक्रमों के अलावा प्रतिदिन सत्संग स्वाध्याय, प्रवचन एवं सुबह शाम का भक्तिक्रम इतना सामुदायिक रूप से चलता है; यह भी अनिवार्य नहीं है, परंतु कोई भी इसका आनन्द, इसका लाभ छोड़ना नहीं चाहता।

ऐसी समन्वयात्मक दृष्टि को लेकर आश्रम में स्वातंत्र्यपूर्वक स्वाध्याय, सत्संग, भक्ति-ध्यान की आत्मलक्षी साधना चल रही है। यह साधना जब हरेक के श्रेय के लिये सामुदायिक रूप से चलती है तब समाजलक्षी हो जाती है एवं सत्, शुद्ध परमाणु समाज के दूषित वायुमण्डल में बहने लगते हैं।

इस साधनाभूमि एवं यहाँ की साधना की यह एक छोटी-सी झलक है।

छिपा हुआ इतिहास :

प्राचीन "किष्किंधा" नगरी एवं "विजय नगर" के प्रासादों के भव्य इतिहास की तरह साधकों को सुरम्य एवं भीरुओं को भयावह प्रतीत होती इन गिरि-कंदराओं एवं गुफाओं का भी अद्‌भुत इतिहास है, जो कि काल के गर्भ में छिपा हुआ हैं। कई निर्ग्रन्थों ने यहाँ ध्यानस्थ होकर ग्रंथिभेद किया है, कई जोगियों ने जोग साधा है, अनेक ज्ञानियों ने यहाँ विश्व चिंतन एवं आत्म-चिंतन द्वारा स्व-पर के भेदों को सुलझाया है, अनेक भक्तों ने यहाँ पराभक्ति के अभेद का अनुभव किया है एवं विविध भूमिकाओं के साधकों ने यहाँ स्वरूप-संधान किया है। इनका इतिहास किताबों के पन्नों पर नहीं, अपितु यहाँ के वातावरण में छिपा हुआ है एवं गुफाओं-गिरि-कंदराओं में से उठते आंदोलनों के सूक्ष्म घोष-प्रतिघोषों में सुनाई दे रहा है। किसी नीरव गुफा में प्रवेश करते ही इसकी ध्वनि सुनाई देती है.... जो स्थूल में से सूक्ष्म एवं शून्य निर्विकल्पता की ओर ले जाती है....।

अनेक महापुरुषों की पूर्व-साधनाभूमि का यह इतिहास प्रेरणा एवं शांति-समाधि प्रदायक है।

यहाँ आकर बसनेवाले इस अवधूत संशोधक को पूर्वकालीन साधकों की ध्वनि-प्रतिध्वनि एवं आंदोलनों को पाने से पूर्व कई तकलीफ़ों का सामना करना पड़ा। इन गिरिकन्दराओं में उस समय हिंसक पशु, भटकती अशांत प्रेतात्माएँ, शराबी एवं चोर-डाकू, मैली विद्या के उपासक एवं हिंसक तांत्रिकों का वास था। इस भूमि के शुद्धीकरण के क्रम के अन्तर्गत घटी कुछ घटनाओं का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा।

जब हिंसा ने हार मानी.... !

आश्रम की स्थापना के पूर्व जब भद्रमुनि इन गुफाओं में आये तब उन्हें पता चला कि यहाँ कई तांत्रिक अत्यंत क्रूरता से पशु-बलि दे रहे हैं। दूसरी ओर इन हिंसक लोगों के मन में इस अनजान अहिंसक अवधूत के प्रति भय उत्पन्न हुआ। (उनके) अपने कार्य में इनसे विक्षेप होगा, ऐसा मान उनको खत्म कर देने का (उन्होंने) निश्चय किया।

जब ये तांत्रिक पशुबलि दे रहे थे, तब भद्रमुनि उन्हें प्रेम से समझाने उनकी ओर एक दिन चले। चट्टानों के ऊपर से आ रहे मुनि को देखकर तांत्रिक तत्क्षण ही उन्हें मार देने के विचार से उनकी ओर दौड़े। हाथ में हथियार थे। मुनिजी ने उनको आते देखा, परन्तु उन्हें अहिंसा व प्रेम की शक्ति पर विश्वास था, अत: वे निर्भय रूप से उनकी तरफ चलते रहे... कुछ क्षणों की ही देर थी... शस्त्रबद्ध तांत्रिक उनकी ओर लपके... उस अहिंसक अवधूत का हाथ आदेश में ऊँचा उठा, अपलक आंखों से उन्होंने तांत्रिकों को देखा.... और उनमें से अहिंसा और प्रेम के जो आंदोलन निकले, उनके आगे तांत्रिक रुक गये, उनके शस्त्र गिर गये एवं वे हमेशा के लिए वहां से भाग खड़े हुए। अहिंसा के आगे हिंसा हार गई !! निर्दोष पशुओं को अभयदान मिला हमेशा के लिए। हिंसा सदा के लिए विदा हो गयी। निर्दोष पशुओं के शोषण से मलिन वह धरती पुन: शुद्ध हो गई। 'देवीगुफा' नामक यह पशुबलि स्थान आज सूना पड़ा है। गुफा की दीवार पर उत्कीर्ण खड़ी है चूपचाप उस तांत्रिक अंधश्रद्धा-देवी की मूर्ति।

हिंसा के स्थानों में अहिंसा की प्रतिष्ठा... !

हिंसा को मिटाने के साथ ये अवधूत अहिंसा और प्रेम के शस्त्र से उन हिंसक तांत्रिकों को बदलना चाहते थे, परंतु वे रुके नहीं।

उनके भागने की बात सुनकर इस घटना में हिंसा के ऊपर अहिंसा की विजय देखने के बजाय लोग इसे 'चमत्कार' मानने लगे। अन्य तांत्रिक, मैली विद्या के उपासक, चोर-डाकू व शराबी भी इस स्थान से चले गये। आख़िर लातों के भूत बातों से कैसे मानते ? वे तो 'चमत्कार' को ही 'नमस्कार' करनेवाले जो थे !

कई साधकों ने इन निर्जन गुफाओं में अशांत, भटकती प्रेतात्माओं का आभास पाया था, अत: भद्रमुनिजी ने इन गुफाओं को शुद्ध बनाया व प्रेतात्माओं को शांत किया।

अब बचे थे हिंसक प्राणी। श्रीमद् राजचंद्र द्वारा अनुभूत एवं 'अपूर्व अवसर' में वर्णित ऐसे उन 'परम मित्रों' का परिचय भद्रमुनिजी को अन्य वनों-गुफाओं में हो चुका था। श्रीमद् के शब्द उनके मन में गूंज रहे थे :

"एकाकी विचरतो वळी श्मशानमां,
वळी पर्वतमां वाघ सिंह संयोग जो,
अडोल आसन ने मनमां नहीं क्षोभता,
परम मित्रनो जाणे पाम्या योग जो।
अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?"

शेर, बाघ, चीते– ये 'परम मित्र' दिन में भी दिखाई देते। जिस गुफा में ये एकाकी अवधूत साधना करना चाह रहे थे, उसमें भी एक चीता रहता था। परंतु उन्होंने निर्भयता से उसे अपना मित्र

मान वहीं निवास किया एवं 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ।'– पतंजलि के इस योग सूत्र को जैसे न्याय देते हुए वह हिंसक पशु अपना वैर त्याग उस अहिंसक अवधूत के पास रहा भी । बाद में वह अन्यत्र चला गया । तब से लेकर आश्रम के बनने के बाद उनके जीवनांत तक, उसी गुफा– वर्तमान गुफामंदिर की अंतर्गुफा– में श्री भद्रमुनिजी की साधना चलती रही थी । उसी में १६ फुट का सांप भी रहता था । कई व्यक्तियों ने उसे देखा भी है । पिछले कई वर्षों से वह अदृश्य है ।

इस प्रकार भद्रमुनिजी ने इस प्राचीन साधनाभूमि पर अहिंसा की पुनः प्रतिष्ठा कर हिंसक मानवों, पशुओं एवं प्रेतात्माओं से मुक्त, शुद्ध एवं निर्भय बनाकर साधकों के लिए साधना योग्य बनाया । वहीं की अन्य गुफाओं एवं उपत्यकाओं में कुछ साधक अब निर्भय रूप से साधना कर रहे हैं । उनमें से कुछ का परिचय प्राप्त कर लें ।

मैंने देखा उन साधकों को –

यहाँ विभिन्न प्रांतों के कुछ साधक स्थायी रूप से रहते हैं । हज़ारों प्रतिवर्ष यथावकाश यहाँ आते हैं । लाखों की संख्या में पर्यटक भी प्रतिवर्ष इस आश्रम को देखने आते हैं । स्थायी साधकों में से तीन का परिचय प्रस्तुत है :

खेंगारबापा : ८० साल का गठीला शरीर, गोल, चमकदार, भव्य चेहरा, बड़ी-बड़ी आंखें, आधी बांह की कमीज़ व आधा पतलून पहने हुए– ये हैं खेंगारबापा । कभी डोलते, कभी स्थिर कदमों से चलते हुए वे 'यंत्रमानव' के-से लगते हैं । पद्मासन लगाकर जब वे ध्यान करते तब पहाड़ के किसी एकाकी, अड़िग, पाषाण खण्ड-से लगते ।

वे कच्छ के मूल निवासी थे, परंतु मद्रास में बस गये थे । ज़वाहरात का उनका कारोबार खूब चल रहा था । अमूल्य रत्नों की परख करते-करते आंतरिक रतन-आत्माराम को परखने की उत्कट इच्छा जागी, गुफाओं का बुलावा सुनाई दिया । संसार की मोह-माया से मुक्त होने का समय भी हो चुका था । अतः वे सद्गुरु की खोज में निकल पड़े । २५,००० रुपयों का खर्च एवं भारत-भ्रमण करने के पश्चात् किसी शुभ-घड़ी में यहाँ हंपी आ पहुंचे एवं बस गये । सात साल बीत गये, वे अब भी यहीं हैं । यहीं समाधि लगाने की एवं देह छोड़ने की उनकी इच्छा है ।•

उन्होंने अपनी साधना में काफी प्रगति की है, ऐसा ज्ञात होता है । उनका विशाल हृदय परोपकार की भावना से भरा हुआ है । वे बोलते बहुत कम हैं, अधिकतर मौन ही रहते हैं । बाकी लोगों की बातें चल रहीं हों, तब भी वे बैठे-बैठे अपने अंतर-ध्यान में डूब जाते हैं और अपने आत्माराम की बातें सुनने लगते हैं । अधिक समय वे अपनी उपत्यका में बिताते हैं । "निज भावमां वहेती वृत्ति" की उच्च साधना की प्रतीति में उन्हें दिव्य वाद्यों का अनाहत नाद एवं घंटारव सुनाई देता है । ध्यान एवं भक्ति के सामुदायिक कार्यक्रम के समय पद्मासन में, स्तम्भ-से दृढ़ बैठे एवं निज आनंद

• इस लिखावट के कुछ वर्ष बाद खेंगारबापा समाधिपूर्वक देह त्याग कर चुके हैं ।

की मस्ती में डोल रहे खेंगारबापा को देखना आल्हाद-प्रदायक है । उनके दर्शन से मैं बड़ा प्रमुदित हो गया ।

हां, रात्रि के अंधकार में अगर वे मिल जायें, तो उनसे अपरिचित लोग उनसे डरकर अवश्य भाग जायेंगे ।

आत्माराम : एक अज़ीब साधक– ये हैं यहां के दूसरे साधक, शरीर हृष्ट-पुष्ट, रंग श्वेत श्याम । नहीं, यह कोई 'मानव' नहीं, 'श्वान' है । नमकहलाल, वफादार, फिर भी जिसे मानव प्रायः दुत्कार देता है, ऐसा एक 'कुत्ता' है वह । आप पूछेंगे, भला कुत्ता भी साधक हो सकता है ? जवाब है हां, हो सकता है । श्वेत-श्याम, उदास आखोंवाले और जगत से बेपरवाह लगते इस कुत्ते की चेष्टाओं को देख कर माननी ही पड़ती है उसके पूर्व-संस्कार की बात, पूर्वजन्म में न मानने वाले लोग शायद स्वीकार न करें । परन्तु जागृत आत्माओं के लिए देह का भेद महत्वहीन होता है– आत्मा की सत्ता में माननेवाले बाह्य आकारों को कब देखते हैं ? 'श्वाने च, श्वपाके च' जैसे सूत्र देने वाले 'गीता' जैसे धर्मग्रंथ इसी बात की ओर संकेत करते हैं– 'आत्मदर्शी सर्वभूतों को आत्मवत् देखते हैं ।'' परंतु 'आत्मा' के अस्तित्व में शंका करनेवाले लोग, श्रीमद् राजचंद्रजी के शब्दों में–

''आत्मानी शंका करे, आत्मा पोते आप,
शंकानो करनार ते, अचरज एह अमाप ।''

पूर्व संस्कार में विश्वास न रखें, तो आश्चर्य नहीं, 'आत्माराम' का पूर्व इतिहास एवं वर्तमान स्वभाव ऐसे लोगों को भी दुविधा मे डाल देनेवाला है ।

'रत्नकूट' के सामने, नदी के पार एक गांव में उसका जन्म हुआ था । जन्म के समय किसी धर्माचार्य ने कहा था कि यह योगभ्रष्ट हुआ पूर्व योगी है, एवं पिछले जन्म में रत्नकूट की एक गुफा में साधना कर रहा था ।

इस बात की जांच करने किसी ने उसे कुछ वर्ष पूर्व इस आश्रम के गुफामंदिर के पास लाकर छोड़ दिया था । भद्रमुनि के साधना-स्थान में ही उसने पिछले जन्म में साधना की थी, इसका स्मरण हो आते ही रोने के बजाय वह खुशी से झूम उठा था । लाख कोशिशों के बावजूद वह वहाँ से हटा नहीं । आश्रम की माताजी करुणावश उसे दूध पिलाने लगी, छोटे शिशु की तरह जब उसे सुलाकर, चम्मच से दूध दिया जाता, तभी वह पीता ।

फिर तो माताजी ने उसे अपने पास रख लिया । बड़ा होने के बाद भी वह माताजी के हाथ का खाना खाता और वह भी दिगंबर क्षुल्लक भद्रमुनिजी की तरह एक ही वक्त । किसी 'भ्रष्ट' योगी के ही ये लक्षण थे । आहार लेने के पश्चात् वह गुफामंदिर में बैठा रहता ।

'आत्माराम', यह नाम उसे भद्रमुनिजी ने दिया है । उस नाम से पुकारने पर वह दौड़ा चला आता है, परंतु सबके बीच होते हुए भी वह असंग, एकाकी रहता है । उसकी अपलक, उदास आंखें, गुफा के बाहर, सामने पहाड़ों की ओर कहीं दूर लगी रहती हैं । उसे देखते ही विचार आता है कि

वह शायद आत्मध्यान में, मस्ती में लीन है। सामुदायिक ध्यान-भक्ति के समय वह भी ध्यानस्थ होकर बैठ जाता है एवं घंटों उसी मुद्रा में रहता है।

उसके इन लक्षणों से सब को यही प्रतीति हुई है कि वह निश्चय ही पूर्व का कोई भ्रष्ट योगी साधु था एवं यहीं अब अपना निश्चित जीवन-काल व्यतीत कर रहा है।

आत्माराम की एक अजीब आदत है, बल्कि एक ऐसी समस्या है, एक ऐसी संवेदन पूर्ण संस्कार-जनित चेष्टा है कि आश्रम में जब भी कोई अजैन व्यक्ति या साधक आता है तब वह उन्हें पहचान लेता है और उसके कपड़े पकड़ कर खड़ा रहता है। वह न उसे काटता है और न किसी तरह से हानि पहुंचाता है, परन्तु जब तक कोई आश्रमवासी नहीं आता, तब तक उसे हटने नहीं देता। "बड़े समूह में से भी वह जैन-अजैन में भेद कैसे देख पाता है ?" यह एक ऐसा रहस्य है, जो सबके लिए आश्चर्य का विषय बन गया है। कारण ढूँढ़ने पर पता चलता है कि पूर्व-जन्म में उसकी साधना में कई अजैनों ने कई प्रकार की बाधाएं डालीं थीं, अतः उसका वर्तन एसा हो गया है। कुछ भी हो, उसकी 'परखकर पकड़ लेने की चेष्टा' उसकी संस्कार-शक्ति की, एवं उसकी 'काटने की या हानि न करने की वृत्ति एवं जागृति' योगी दशा की प्रतीति कराती है।

बाह्य रूप चाहे कोई भी हो, एक जागृत आत्मा के संस्कार कभी नहीं बदलते। इससे यह भी सूचित होता है कि उसकी अब तक की साधना निरर्थक नहीं गई। साधना में देह का नहीं, बल्कि अंतर की स्थिति का महत्त्व होता है– यह उसके नाम (आत्माराम) एवं इस भूमि पर उसके साधक रूप में रहने से विदित होता है।*

देवों की भी पूज्य माताजी : इनकी साधना सबसे भिन्न है– एक ऊँचे धरातल पर स्थित है। भक्ति के समय इसका प्रत्यक्ष परिचय हर कोई प्राप्त करता है।

पूर्णिमा की रात है। दूर-दूर से आये यात्रिक एवं स्थायी साधक गुफा-मंदिर में इकट्ठे हुए हैं। एक तरफ माताएँ एवं दूसरी ओर पुरुषों से गुफा-मन्दिर भर गया है। एक तरफ है खेंगारबापा और दूसरी तरफ आत्माराम चौकीदार के-से अचल भक्त। भद्रमुनिजी अंतर्गुफा में हैं, परंतु जैसे-जैसे भक्ति का रंग चढ़ने लगता है, वे भी चैत्यालय एवं श्रीमद् राजचंद्रजी की प्रतिमा के पास आकर बैठते हैं और देहभान भुलानेवाली भक्ति में सम्मिलित होते हैं।

मंद वाद्यस्वरों के साथ भक्ति की मस्ती बढ़ने लगती है... बारह-एक बजे तक वह अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है। गुफामंदिर पूरे समूह के घोष से गूँज उठता है : "सहजात्म स्वरूप परम गुरु।" देह से भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान करानेवाली, आत्मा-परमात्मा की एकता का दर्शन कराने वाली

* आत्माराम की अंतर्दशा के विषय में बाद में स्वयं पू. गुरुदेवने अपने दि. 28.2.70 के पत्र में इस लेखक को लिखा था : "आत्माराम को खानपान के विषय में, कुछ अधिक वैराग्य प्रवर्तित होता होगा ऐसा प्रतीत होता है।"
बाद में कई वर्षों के पश्चात् आत्मारामने, पू. माताजी की पावन उपस्थिति में परमकृपाळुदेव के चित्रपट-सन्मुख, पेड़ के नीचे चल रही तीन दिन की समूहधून के दौरान "सहजात्मस्वरुप परमगुरु" में लीन होकर, एक दृष्टांत रूप देहत्याग कर समाधिमरण प्राप्त किया।

इस गूँज का प्रतिघोष आस-पास की कंदराओं में सुनाई देता है। चांदनी एवं नीरव शांति के आवरण तले छिपी इस गिरिसृष्टि का दिव्य-सृष्टि में रूपांतरण हो जाता है; और वह स्वर्ग से भी सुन्दर, समुन्नत लगने लगती है। स्वर्ग की भोगभूमि में भी इस योगभूमि-सा परम, विशुद्ध आनंद दुर्लभ है, तभी तो देवतागण की नज़र भी यहीं होती है।

उन्हें आकर्षित करनेवाले ये साधक-भक्त देहभान तक भूलकर भक्ति में लीन हैं। सबसे निराली हैं पवित्र ओजस से शोभायमान, पराभक्ति की मस्ती में झूमतीं, अधेड़ वय की ये सीधी-सादी, भोली-भाली माताजी। उनकी अखंड मस्ती देखने, उनका स्निग्ध अंतर-गान सुनने देवगण भी नीचे उतर आते हैं... खूबी तो यह है कि उन्हें इसका पता या इसकी परवाह भी नहीं। देवतागण भले ही अदृश्य हों, परंतु उनकी उपस्थिति का आभास सभी को होता है, माताजी की भक्ति से आनंदित होते, अपने को धन्य मानते, ये देवतागण उन पर ढ़ेर सारा सुगंधित 'वासक्षेप' डालते हैं। उस पीले, अपार्थिव द्रव्य को वहां उपस्थित हर कोई देख सकता है, सूंघ सकता है... नहीं, यह कोई अतिशयोक्तिपूर्ण परिकथा की 'कल्पना' नहीं है, अनुभव की जानेवली 'हकीकत' है। आप इसे चमत्कार मानें तो यह शुद्ध भक्ति का चमत्कार है। किसी ने कहा है : जगत में चमत्कारों की कमी नहीं है, कमी है उन्हें देखनेवालीं 'आंखों' की। अगर आपके पास 'दृष्टि' नहीं है तो दोष किसका ? एक सूफ़ी फकीर भी कह गये हैं :

"नूर उसका, ज़ुहुर उसका,

गर तुम न देखो तो कुसूर किसका ?"

यह द्रष्टि विशुद्ध भक्ति से प्राप्त होती है, उसके द्वारा उस चैतन्य सत्ता की चमत्कृति का अनुभव हो पाता है। इसी के द्वारा आत्मा-परमात्मा के अंतर को पलभर में मिटाया जा सकता है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजलि' का एक पद याद आता है, जिसका भाव है, "एक गीत... केवल एक गीत अंतर से ऐसा गाऊँ कि राजाओं का राजा भी उसे सुनने नीचे उतर आये।" तब ऐसी पराभक्ति का आनंद उठाने देवतागण भी आ जायें तो क्या आश्चर्य ? माताजी की ऐसी भक्ति का, 'वासक्षेप' द्वारा वंदन, अनुमोदन, अभिनंदन करते हुए देवता विदा होते हैं।

माताजी की इस उच्च साधना-भूमि का परिचय प्राप्त कर हम भी धन्य हुए।

माताजी, भद्रमुनि के संसारपक्ष की चाची हैं। साधना हेतु वर्षों पूर्व ये यहाँ पधारीं। स्वामीश्री की सेवा-शुश्रुषा आहारदान का लाभ वे ही लेती हैं। विशेष रूप से आश्रम की बहनों एवं भक्तों के लिए छत्र-छाया बनी रहती हैं।

इनके अलावा भी अन्य आबाल-वृद्ध, निकट से या दूर से आये हुए जैन-जैनेतर-सब प्रकार के आश्रमवासी यहाँ रहते हैं; एक दूसरे से भिन्न; अंदर से और बाहर से निराले।

मैंने उन सब को देखा— सृष्टि की विविधता एवं विधि की विचित्रता, कर्म की विशेषता एवं धर्म-मर्म की सार्थकता के प्रतीक-से वे साधक, जिनका एक ही गंतव्य था— आत्म-प्राप्ति। उन्हें देखकर मेरे मानस-पटल पर श्रीमद् का यह वाक्य उभर आता है :

"जातिवेशनो भेद नहीं; कह्यो मार्ग जो होय।"

अवधूत की अंतर्गुफा में –

उक्त मार्ग हर प्रकार की आत्यंतिकता से मुक्त, स्वात्मदर्शन से समन्वित, संतुलित एवं संवादपूर्ण साधनापथ है। 'निश्चय' एवं 'व्यवहार', आचार एवं विचार, साधना एवं चिंतन, भक्ति एवं ध्यान, ज्ञान एवं क्रिया की संधि करानेवाला है। श्रीमद् की 'आत्मसिद्धि शास्त्र' के ये शब्द इसे स्पष्ट करते हैं –

"निश्चयवाणी सांभळी साधन तजवां नो'य,

निश्चय राखी लक्षमां, साधन करवां सोय..."

इस निश्चय, इस आत्मावस्था को लक्ष्य में रखते हुए, विविध साधना प्रकारों में जोड़ते हुए, सहजानंदघनजी इस साधना-पथ को प्रशस्त कर रहे हैं।

उनकी खुद की साधना भी ऐसी ही संतुलित है। वीतराग-प्रणीत सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चरित्र की त्रिविध रत्नमयी उनकी यह साधना अब भी जारी है। उन्होंने ज्ञान और क्रिया की संधि की है; इसी में भक्ति का समावेश भी हो जाता है। उनकी ध्यान की भूमिका उच्च धरातल पर स्थित है। उनकी यह साधना निरंतर, सहज एवं समग्र रूप से चल रही है 'केवल निज स्वभावनुं अखंड वर्ते ज्ञान...' आत्मावस्था का यह सहज स्वरूप उनका ध्रुव-बिंदु है। सर्वत्र उन्होंने श्रीमद् का अनुसरण किया है। इस साहजिक तपस्या एवं साधना हेतु वे कई नीति नियमों का पालन भी करते हैं। ये दिगंबर क्षुल्लक चौबीस घंटों में मात्र एकबार भोजन-पानी लेते हैं। उनके भोजन में शक्कर, तेल, मिर्च-मसाले, नमक का समावेश नहीं होता। कभी-कभी साधकों के मार्गदर्शन हेतु या सत्संग-स्वाध्याय, ध्यान-भक्ति की सामूहिक साधना हेतु वे बाहर आते हैं। अन्यथा वे अपनी गुफा में ही रहते हैं। शाम के सात बजे गुफा के द्वार बन्द हो जाते हैं– वे रत्नकूट की इस स्थूल अंतर्गुफा के साथ-साथ रत्नमय आत्म-स्वरूप की सूक्ष्म अंतर्गुफा में खो जाते हैं।

मैंने उनकी बहिर्साधना देखी थी, बाह्य रूप का दर्शन किया था, परंतु इतने से संतोष न था... मैं उनकी स्थूल अंतर्गुफा के साथ सूक्ष्म अंतर्साधना का परिचय पाना चाहता था। शरद-पूनम की उस चांदनी रात को गुफा मंदिर के सामुदायिक भक्ति कार्यक्रम में मेरे सितार के तार झनझना रहे थे। इस दिव्य वातावरण का आनन्द उठाता हुआ मैं सितार के तारों के साथ-साथ अंतर के तार भी छेड़ रहा था.. मस्त विदेही आनंदघनजी एवं श्रीमद् राजचंद्रजी के पद एक के बाद एक अंतर से निकले – "अवधू ! क्या मांगू गुनहीना ?" और "अब हम अमर भये न मरेंगे।" तभी भद्रमुनिजी बाहर आये एवं मेरे सामने बैठ गए। मैं प्रमुदित हुआ। मेंने सोचा– "उनकी तरह अंतर्लोक की आत्म गुफा में से मेरी परिचित, उपकारक एवं उपास्य पाँच दिवंगत आत्माएं भी यहां उपस्थित हों तो मैं धन्य हो जाऊँ। तब भक्ति का रंग और निखरेगा... अगर माताजी के-से भाव अंतर से प्रस्फुटित हों तो वे अवश्य आयेंगें..... इस विचार से उल्लास से बढ़ने लगा..... सितार के तार बजते रहे, अंतर में से स्वर निकलते रहे, अंतरात्मा ने उन पाँच दिव्य आत्माओं को निमंत्रण दिया, आंखें बंद हुईं एवं बागेश्री के स्वरों में श्रीमद्जी कृत यह गीत ढल गया :

"अपूर्व अवसर ऐसा आयेगा कभी ?
कब होंगे, हम बाह्यांतर निर्ग्रन्थ रे,
सर्व संबंध का बंधन तीक्ष्ण छेद कर,
कब विचरेंगे महत्पुरुष के पंथ रे ?"

गीत में खेंगारबापा सम्मिलित हुए... उनके साथ सारा समूह भी गाने लगा... करताल एवं मंजीरा बजता रहा भद्रमुनिजी के हाथ में खंजड़ी आ गई... शायद आत्माराम एवं माताजी भी डोल रहे थे...

अद्‌भुत मस्ती थी वह... देहभान छूटने लगा, शरीर के साथ-साथ सितार के संग की प्रतीति भी हटने लगी... एवं एक धन्य घड़ी में मैंने अनुभव किया– "मैं देह से भिन्न केवल आत्मस्वरूप हूँ। उसी में मेरा निवास है... वही निज़ निकेतन है... मेरे इस निवास को सदा बनाये रखनेवाला अपूर्व अवसर कब आयेगा ?" यह भावदशा काफी समय तक जागी रही। मैंने उन पाँच दिव्य आत्माओं का आभास भी पाया... वे प्रसन्न हो मुझे आशीर्वाद दे रहे थे..... प्रफुल्लित, प्रमुदित, परितृप्त मैं करीब पौन घंटे तक २१ गाथाओं का संपूर्ण 'अपूर्व अवसर' का पद गाता रहा।

गीत पूरा हुआ, सितार नीचे रखा, परंतु मेरी भावदशा वैसी ही बनी रही। मैं धन्य हुआ। सबसे अधिक प्रसन्न था मैं। सहजानंदघनजी ने सबकी प्रसन्नता व्यक्त की एवं उठ खड़े हुए..... उनका आशीर्वाद पाकर मैंने लोभवश उनसे मुलाकात का समय ले लिया, ताकि मैं उनकी अंतर्दशा का संस्पर्श कर सकूं। उस समय रात के तीन बजे थे, पर मैं थका न था और अपूर्व अवसर की उस जाग्रतावस्था में रहना चाहता था, अत: उस समूह से दूर एक एकांत, असंग शिला पर ध्यानस्थ हुआ– उस पुण्यभूमि की चांदनी एवं नीरवता में शून्यशेष आत्मदशा का जो आनंद पाया, वह अवर्णनीय, अपूर्व था। ध्यान के अंत मे उसे अपनी 'स्मरणिका' में शब्दबद्ध करने का प्रयास (वृथा प्रयास ! क्या उसे शब्दों में बांधा जा सकता है ?) किया, शरीर को थोड़ा आराम दिया एवं सुबह सहजानंदघनजी से मिलने अंतर्गुफा की ओर चला।

मुनिजी गुफामंदिर में बैठे थे। गुणग्राहिता की दृष्टि से उनसे कुछ पाने एवं उनका साधनाक्रम समझने, मैंने घंटों उनसे चर्चा की। इस चर्चा से मेंने उनके गहन ज्ञान, उनकी आत्मानुभूति, पराभक्ति, उन्मुक्तता, प्रेम, बालक की-सी सरलता एवं उच्च्व ज्ञान दशा का परिचय प्राप्त किया। उनसे प्रेरणा भी मिली, समाधान भी। काफी समय व्यतीत होने पर भी उन्होंने अत्यंत उदारता एवं अनुग्रहपूर्वक प्रश्नों को सुलझाया। इससे उनकी अंतर्दशा-तत्त्वदृष्टि एवं बहिर्साधना का दर्शन हुआ। प्रेमवश उन्होंने अपनी अंतर्गुफा की झलक भी दिखलायी; यह मेरा सौभाग्य था, क्योंकि यहां किसी को प्रवेश नहीं मिलता (यह सहज भी है) हम स्वयं अपनी ही अंतर्गुफा में जाने की क्षमता नहीं रखते। मुनिजी ने गुफा की चंदन, धातु, रत्न की विविध कलात्मक जिन-प्रतिमाएँ भी दिखलाईं। चंदन की प्रतिमा की पूजा दैवी वासक्षेप से हुई थी..... उस पर वह अद्‌भुत, केसरी-पीला, सुगंधित वासक्षेप था... विशेष रूप से उस एकांत गुफा में से शांति, नीरवता विकल्प-शून्य स्वरूपावस्था के जो परमाणु, जो आंदोलन निकल रहे थे, वे मुझे ध्यानस्थ कर रहे थे– जागृत रूप में, 'स्व'रूप की ओर।

उस गुफा में से सुन्दर, स्थूल प्रतिमाएँ प्रकट हो रही थीं, तो उनकी अन्तरात्मा की सूक्ष्म अन्तर्गुफा में से उनका सूक्ष्म, आन्तरिक स्वरूप । वैखरी–मध्यमा–पश्यंति के स्तरों को पार करती हुई उनकी 'परा' वाणी उनके अन्तर्लोक की ओर संकेत कर रही थी, आत्मा के अभेद परमात्म-स्वरूप को प्रकट कर रही थी ।

उनकी गुफा एवं उनके अंतर के उस निगूढ़तम स्वरूप तक पहुँचकर, उसका सार पाकर मैं आनन्दित था, कृतार्थ था ।

इस संस्पर्श के पश्चात् अपनी स्वरूपावस्था को विशेष रूप से जाग्रत करता हुआ मैं अपनी देह का किराया चुकाने, आहार रुचि न होने पर भी, भोजनालय की ओर चला ।

जब "मौन" महालय "मुखर" हुए .....

भोजन इत्यादि के बाद मैं निकट के एतिहासिक अवशेष देखने निकल पड़ा । विजयनगर - साम्राज्य के ६० मील के विस्तार में ये अवशेष फैले हैं – महालय, प्रासाद, स्नानगृह, देवालय एवं ऊँचे शिल्पसभर गोपुर; श्रेणीबद्ध बाज़ार, दुकानें, मकान; राज-कोठार एवं हस्तिशाला – इन पाषाण अवशेषों में से उठ रही ध्वनि सुनी । एक मंदिर के प्रत्येक स्तंभ में से विविध तालवाद्यों के स्वर सुनाई दे रहे थे ।

दूर दूर तक घूमकर ढलती दोपहरी के समय 'रत्नकूट' को लौटा और एक शिला पर खड़ा होकर उन अवशेषों को देखता रहा .....

वे मूक पत्थर एवं मौन महालय 'मुखर' हो बोल रहे थे, अपनी व्यथाभरी कथा कह रहे थे, मेरे कान और मेरी आँखें उनकी ओर लगी रहीं..... ..... उन पाषाणों की वाणी सुनकर मैं अत्यंत अंतर्मुख हुआ ..... कई क्षण इसी नीरव, निर्विकल्प शून्यता में बीत गये..... ..... अंत में जब बहिर्मुख हुआ तब सोचने लगा – "कितनी सभ्यताओं का यहाँ निर्माण एवं विनाश हुआ; कितकितने साम्राज्य यहाँ खड़े हुए और ध्वस्त हो गये !! कितने राजा – महाराजा आये और चले गये !!

"ये टूटे खंडहर एवं शिलाएँ इसके साक्षी हैं । वे यहाँ हुए उत्थान-पतन का संकेत देते हैं और निर्देश करते हैं जीवन की क्षण-भंगुरता की ओर; Ozymandias of Egypt की पाषाण मूर्ति की तरह उस अरूप, अमर, शाश्वत आत्मतत्त्व का भी संदेश दे जाते हैं, जिसका कभी नाश नहीं होता, और जिसे कई महापुरुषों ने इसी पुण्यभूमि पर प्राप्त किया था ..... !"

ध्यानारूढ़ योगियों की चरण रेणु से घूसरित "शिलाओं के चरण पखारता, कलकल निनाद करता, हस्ति-सी मंथर, गंभीर गति से बह रहा है-तुँगभद्रा का मंजुल नीर ! उनके अविरत बहाव में से घोष उठ रहा है– "कोऽहम् ? कोऽहम् ?" "मैं कोन हूँ ? मैं कौन हूँ ?"

और निकट की शिलाओं में से प्रतिघोष उठता है – "सोऽहम्..... सोऽहम्..... शुद्धोऽहम् ..... बुद्धोऽहम् ..... निरंजनोऽहम् ..... सच्चिदानंदी शुद्ध स्वरुपी अविनाशी मैं आत्मा हूँ..... आनंदरुपोऽहम् ..... सहजात्मरुपोऽहम् ।"

'शाश्वत' की ओर संकेत कर रहे इन घोषों—प्रतिघोषों को उन 'विकृत' खंडहरों (और अब भी ऐसे निष्प्राण भवन खड़े कर रहे नशोन्मत्त सत्ताधीशों) ने सुना या नहीं, इसका पता नहीं, परंतु मेरे अंतर में यह घोष उतर चुका था, गूँज रहा था, मैं आनंदित हो रहा था, शून्यशेष हो रहा था, मेरे शाश्वत आत्मस्वरुप की विकल्परहित संस्थिति में ढल रहा था !

और अब तो महालयों के वे अवशेष भी मुखर होकर अपनी हार के साथ शाश्वत के संदेश को भी स्वीकार कर रहे थे..... अविचलित थे वे सत्ताधीश, जो इस अनादि रहस्य को समझने में असमर्थ थे । ये घोष-प्रतिघोष शायद उन तक न पहुँच सके, परंतु रत्नकूट की गुफाओं मे गूँज रहे राजचंद्रजी के ज्ञान-गंभीर घोष तो वे सुन सकते हैं, अगर उनके कान इसे सुनना चाहें ! जड़ पदार्थों की क्षण भंगुरता के बारे में श्रीमद् कहते हैं :

"छो खंडना अधिराज जे चंडे करीने नीपज्या,
ब्रह्मांडमां बलवान थईने भूप भारे ऊपज्या;
ए चतुर चक्री चालिया होता-नहोता होइने,
जन जाणीए मन मानिए नव काळ मूके कोइने... !
"जे राजनीति निपुणतामां न्यायवंता नीवड्या,
अवळा कर्ये जेना बधा सबळा सदा पासां पड्यां,
ए भाग्यशाळी भागिया ते खटपटो सौ खोईने,
जन जाणीए मन मानीए नव काळ मूके कोईने... !"

('मोक्षमाला')

गुफा में गूंज रही आनंदघनजी की आवाज़ भी यही कह रही है –

"या पुद्‌गल का क्या विश्वासा,
झूठा है सपने का वासा ......
झूठा तन धन झूठा जोबन, झूठा लोक तमासा,
आनंदघन कहे सब ही झूठे, साचा शिवपुर वासा ।"

(आनंदघन पद्य रत्नावली)

और भूधर एवं कबीर के दोहे भी –

"राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार,
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार !"

(– भूधरदास : बारह भावना)

"कबीर थोड़ा जीवणा, मांडे बहुत मंडाण ।
सब ही ऊभा मेलि गया, राव रंक सुलतान"

(– कबीर : कबीर ग्रंथावली)

सम्यग् साधना की समग्र दृष्टि :

शिवपुर-निजदेशकी ओर संकेत करते ये घोष-प्रतिघोष मेरे अंतरपट से टकरा कर स्थिर हो चुके थे – आश्रमभूमि पर मेरे प्रथम २४ घंटों के अंतर्गत ही ! इस अल्प समय में मैने कई अनुभव किये !! अनुभवी ज्ञानियों का संग पाकर मेरी विश्रृंखल साधना पुनः सुव्यवस्थित हुई । मैं दुबारा मुनिजी के पासे जाने के लोभ का संवरण न कर पाया ।

पुनः उनके साथ महापुरुषों की जीवन-चर्चा एवं उनकी सम्यग् साधना दृष्टि से संबंधित प्रश्न-चर्चा हुई । महायोगी आनंदघनजी विषयक मेरी जिज्ञासा के साथ इसका आरंभ हुआ । भगवान महावीर, तथागत बुद्ध, कलिकाल सर्वज्ञ हेमचंद्राचार्य, आचार्य हरिभद्रसूरि, देवचंद्रजी, यशोविजयजी, कृपाळुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी, कुंदकुंदाचार्यजी और विहरमान तीर्थंकर भगवान सीमंधर स्वामी जैसे लोकोत्तर व्यक्तियों की चेतनाभूमि में मुनिजी के संग मैंने विहार किया..... उन दिव्य-प्रदेशों की यात्रा ने मुझे अत्यंत समृद्ध एवं स्वस्थ-सभर बना दिया ।

तत्पश्चात् वर्तमान जैनाचार्यों एवं अन्य महापुरुषों के साधना प्रदेश में विचरण किया । गांधीजी, श्री अरविंद, रवीन्द्रनाथ, मल्लिकजी, विनोबाजी, चिन्नम्मा इत्यादि की साधनादृष्टि की तुलना चली । इससे मैंने यही सार निकाला : "आत्मदीप बन ! ..... अपने आपको पहचान ..... तू तेरा सम्हाल !" और इसके फलस्वरूप मेरी विद्या की, ज्ञान-दर्शन-चारित्र साधना की, आत्मानुभूति की अभीप्साएँ पुनः जाग्रत हुईं । वीतराग प्रणीत साधनापथ एवं श्रीमद् राजचंद्रजी का जीवनदर्शन, आज तक के मेरे अनुभव एवं आज की प्रश्नचर्चा के बाद मुझे अपना उपादेय प्रतीत होने लगा । कुछ समय पश्चात्, अपनी साधना दृष्टि का विशेष रूप से स्पष्टीकरण करने हेतु मैंने उनसे (सहजानंदघनजी से पत्र द्वारा) प्रश्न किया था । उनके उत्तर से श्रीमद् की, उनकी-खुद की और आश्रम की समग्र, सारग्राही, संतुलित साधनादृष्टि प्रकट होती है । उन्होंने लिखा था : "आपके हृदयरुपी मंदिर में अगर श्रीमद् की प्रशमरस निमग्न, अमृतमयी मुद्रा प्रकट हुई हो, तो उसे वहीं स्थिर बनाइए । अपने चैतन्य का उसी स्वरूप में परिणमन ही साकार उपासना का साध्य बिंदु है, वही सत्यसुधा है । हृदयमंदिर से सहस्त्रदल कमल में उसकी प्रतिष्ठा कर, वहीं लक्ष्यवेधी बाण की तरह चित्तवृत्ति प्रवाह का अनुसंधान बनाये रखना, यही पराभक्ति या प्रेमलक्षणा भक्ति है । इसी अनुसंधान को शरण कहते हैं । शर अर्थात् तीर । शरणबल से स्मरण भी बना रहता है । कार्यकारण न्याय से शरण एवं स्मरण की अखंडता सिद्ध होती हैं; संपूर्ण आत्म-प्रदेश पर चैतन्य-चांदनी छा जाती है; सर्वांग आत्मदर्शन एवं देहदर्शन की भिन्नता स्पष्ट होती है; एवं आत्मा में परमात्मा की छवि विलीन हो जाती है । आत्मा-परमात्मा की यह अभेद की दशा ही पराभक्ति का अंतिम बिंदु है । वही वास्तविक उपादान सापेक्ष सम्यग् दर्शन का स्वरूप है :

"वह सत्यसुधा दरसावहिंगे,
चतुरांगल व्है दृग से मिलहै,
रस देव निरंजन को पिबही,
गही जोग जुगोजुग सो जीव ही ।"

इस काव्य का तात्पर्याथ यही है –

''आँख एवं सहस्त्रदल कमल के बीच चार अंगुल का अंतर है । उस कमल की कर्णिका में चैतन्य की साकार मुद्रा वही सत्यसुधा है, यही स्वयं का उपादान है । जिसकी यह आकृति बनी है, वह बाह्यतत्त्व निमित मात्र है । जिनकी आत्मा में आत्म-वैभव के जितने अंश का विकास हुआ हो, उतने अंश में साधकीय उपादान के कारण का विकास होता है एवं वह कार्यान्वित होता है । अतएव निमित्त-कारण, सर्वथा विशुद्ध, आत्म-वैभव-संपन्न हो उनका अवलंबन लेना श्रेयस्कर है । यह रहस्यार्थ है ।

''ऐसे भक्तात्मा का चिंतन एवं आचरण विशुद्ध हो सकता है, अतएव भक्ति, ज्ञान एवं योग साधना का त्रिवेणी संगम संभव होता है । ऐसे साधक को भक्ति-ज्ञान शून्य मात्र योग-साधना करनी आवश्यक नहीं । दृष्टि, विचार एवं आचार शुद्धि का नाम ही भक्ति, ज्ञान एवं योग है और यही अभेद परिणमन से 'सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग' है। बिना पराभक्ति के, ज्ञान एवं आचरण को विशुद्ध रखना दुर्लभ है; इसका उदाहरण हैं आ. र. । अतएव आप धन्य हैं, कारण, निज चैतन्य के दर्पण में परमकृपाळु की छवि अंकित कर पाये हैं । ॐ ।''

समग्रसाधना – सम्यग् साधना की उनकी यह समग्र दृष्टि मुझे चिंतनीय, उपादेय एवं प्रेरक प्रतीत हुई । इस पत्रने उसका विशेष स्पष्टीकरण किया, परंतु प्रत्यक्ष परिचय में ही वह बलवती और दृढ़ बन गयी थी ..... इसके प्रति मैं इतना आकर्षित हुआ कि वहां से हटने का मन न हुआ..... अंत में उठना ही पड़ा ..... ।

और विदा की बेला में गूँज उठे गुफाओं के बुलावे..... इस समय चारों ओर फैलीं गिरि कंदराएं, गुफाएं एवं शिलाएं जैसे मेरी राह रोक रहीं थीं एवं प्रचंड प्रतिध्वनि से मेरे अंतर्लोक को झकझोर रहीं थीं; कानों में दिव्य संगीत भर रहीं थीं ..... उनके इस बंधन से छूटना आसान न था ..... उस चिर-परिचित-से निमंत्रण को टालना संभव न था ..... पर अंत में निरुपाय हो वहाँ से चला – यथासमय पुनः आने के संकल्प के साथ, कर्तव्यों की पूर्ति कर ऋणमुक्त होने । श्रीमद् के, स्वयं की अवस्था के सूचक ये शब्द, जैसे मेरी ही साक्षी दे रहे थे :

''अवश्य कर्मनो भोग छे; भोगववो अवशेष रे,
तेथी देह एक ज धारीने, जाशुँ स्वरुप स्वदेश रे,
धन्य रे दिवस आ अहो !''

परंतु एक ही देह धारण-कर स्वरुप-स्वदेश, निज निकेतन पहुँचने का सौभाग्य उनके-से भव्यात्माओं का ही था, क्योंकि वे जीवन-मरण के चक्र से मुक्त हो चुके थे; जब कि मुझ-सी अल्पात्मा को कई भवों का पंथ काटना शेष था ! परंतु गुफाओं के साद, गुफाओं के बुलावे मुझे हिंमत दे रहे थे : ''सर्व जीव हैं सिद्ध सम, जो समझें, बन जायँ ।'' (श्रीमद्) साथ ही स्वयं सिद्धि की क्षमता की ओर निर्देश कर रहे थे; निश्चितता एवं निष्ठापूर्वक शीघ्र ही वापस आने

का निमंत्रण दे रहे थे । मैं जानता था, कि इस निमंत्रण को मैं ठुकरा नहीं पाऊँगा अतः यह संकल्प करते हुए कि एक दिन इन्हीं गुफाओं में साधना हेतु निवास करूँगा, मैं निकल पड़ा । मेरे साथ भव्य भद्रहृदय भद्रमुनिजी, भक्तिसभर माताजी, ओलिये खेंगारबापा एवं मस्त मौनी आत्माराम के आशीर्वाद थे; इस आशीर्वाद का प्रतीक था वह दिव्य 'वासक्षेप' जिसे मुनिजी ने अत्यंत प्रेम से मुझे दिया था, मेरे मस्तक पर भर दिया था ।

अपनी दिवस-यात्रा पूरी कर सूरज दूर क्षितिज में ढ़ल रहा था; धरती से विदा हो रहा था और मैं अपनी साधना यात्रा पूरी कर इस तीर्थ से विदा हो रहा था; आकाश विविध रंगों से भर गया था..... मंद-मंद समीर बह रहा था..... गुफा मंदिर में से मेरे ही गाये गीत की प्रतिध्वनि उठ रही थी :

"अेह परम पद प्राप्तिनुं कर्युं ध्यान में,
गजा वगर ने हाल मनोरथ रूप जो;
तो पण निश्चय राजचंद्र मनने रह्यो,
प्रभु-आज्ञाए थाशुं ते ज स्वरुप जो–
अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?"

'अपूर्व अवसर' की प्रतीक्षा की अभीप्सा से परिपूर्ण यह प्रतिध्वनि मेरे कानों में गूँजती हुई, अंतर में अनुगूँज जगा रही थी, तो बाहर से इन सबको परिवृत्त – Superimpose कर रहा प्रचंड आदेश सामने की एक उपत्यका में से आ रहा था;

"विरम विरम संगान्, मुञ्च मुञ्च प्रपंचम्,
विसृज विसृज मोहम्, विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम्,
कलय कलय वृत्तम्, पश्य पश्य स्वरूपम्,
भज विगत विकारं स्वात्मनात्मानमेव..... !"

और सामने फैली गिरिकंदराएं इन पंक्तियों को जैसे दोहरा रहीं थीं –

"विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम्..... विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम्
पश्य पश्य स्वरूपम् ..... पश्य पश्य स्वरूपम्"

"स्वतत्त्व को – स्वयं के तत्त्व को पहचानो"
"स्वरूप को-अपने परम आत्म-रूप को देखो !"

और तभी वीतराग-वाणी, निर्ग्रंथ प्रवचन को प्रमाणित करती श्रीमद् की वाणी गूँज उठी :

"जिसने आत्मा को जाना, उसने सब को जाना ।"

"जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ .... ।"

पुनः गिरि-कंदराओं में से घोष उठा :

"विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम्-स्वयं के तत्त्व को पहचान !... पश्य पश्य स्वरूपम् - अपने आत्मरूप को देख !".....

इस प्रतिध्वनि के साथ मेरी आत्मा मुक्त आकाश में विहार करने लगी, और मैं अनिच्छापूर्वक रत्नकूट की उस धरती पर नीचे उतरने लगा — उस आश्रम के केंद्र और मेरे जीवन के आराध्य परमगुरु श्रीमद्जी की भव्यात्मा को नमन करते हुए :

"देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत,
ते ज्ञानीना चरणमां, हो वंदन अगणित ।"

मेरी यह साधना-यात्रा बाहर से समाप्त हो चुकी है... परंतु आंतरिक रूप में जारी है । आज मैं स्थूलरूप से उस योगभूमि से दूर हूँ, और अब भी दूर जा रहा हूँ, परंतु रत्नकूट की गुफाओं के वे गंभीर ज्ञानघोष मुझे कर्म के प्रत्येक संसार में, योग के प्रत्येक प्रवर्तन में, विवेक एवं विशुद्धि, अनासक्ति एवं जागृति बनाये रखने की प्रेरणा दे रहे हैं, नित्य-नैमित्तिक कर्त्तव्य एवं जीवन व्यवहार के बीच 'स्वरूप' से मेरा अनुसंधान करा रहे हैं :

"विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम् ..... ।"

"पश्य पश्य स्वरूपम् ..... ।"

"जिसने आत्मा को जान लिया, उसने सब कुछ जान लिया..... ।"

दक्षिणापथ की साधनायात्रा : प्राक्कथन
दो शब्द

चौदह वर्ष पूर्व, यहाँ वर्णित भूमि-श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, हंपी-के प्रथम दर्शन के उपरांत यह लेख लिखा था। उसके पश्चात् इस भूमि के प्रति इतना आकर्षण रहा हि इन पंक्तियों के लेखक ने, आश्रम की अभिनव भूमि पर, स्वयं साधना एवं विद्यापीठ के निर्माण हेतु, अहमदाबाद के गुजरात विद्यापीठ का प्राध्यापक-पद तक छोड़कर, बेंगलोर एवं हम्पी आकर निवास किया। इस स्थनांतरण एवं विद्यापीठ-निर्माण कार्य की प्रेरणा एवं आज्ञा देनेवाले थे - परम उपकारक विद्यागुरु पद्मभूषण प्रज्ञाचक्षु डो. पंडित सुखलालजी, जिन्होंने लेखक को अपनी निश्रा एवं सेवा-शुश्रूषा भी छुड़वाकर दूर दक्षिण में भेजा। उसके बाद की कहानी भी लंबी-चौड़ी है, जो 'साधना-यात्रा का संधान पथ' के नाम से इसी क्रम में लिपिबद्ध हो रही है। आज योगीन्द्र श्री सहजानंदघनजी सदेह से नहीं रहे, प्रज्ञाचक्षु पंडितवर्य श्री सुखलालजी भी नहीं रहे, परंतु इन महापुरुषों की प्रेरणा एवं भावना, कई प्रतिकूलताओं के बीच से भी, चौदह वर्षों की तपस्या के पश्चात् अब साकार रूप लेने जा रही है।

इस विषय में अधिक अभिव्यक्ति एवं जानकारी पाठकों के प्रतिभाव एवं रुचि जानने के पश्चात्। यहाँ प्रस्तुत है केवल एक ही दिन के इस प्रथम दर्शन का आलेख। मूल गुजराती से हिन्दी में अनुवाद एवं सम्पादन मेरी सुपुत्री कु. पारुल ने, परिश्रमपूर्ण, सुन्दर एवं समयबद्ध मुद्रण भाईश्री हरिश्चंद्र विद्यार्थीने और आंशिक अर्थसहायता कुछ सहधर्मी गुरु-बंधुओं ने की है, जिसके लिये सभी का मैं आभारी हूँ। मेरे साहित्य विद्यागुरु श्रद्धेय डो. रामनिरञ्जन पाण्डेयजी का भी उनके मूल्यवान आमुख के लिये अनुगृहीत हूँ।

इस साधनायात्रा की, जो कि अब भी चौदह वर्षो के उपरांत भी सतत चल रही है, सदा-सर्वदा की साक्षी, प्रेरक एवं आशीर्वाद-प्रदात्री रही हैं - परम उपकारक आत्मज्ञा जगत्माता पूज्य माताजी, जिनका तो अनुग्रह मानना भी शब्दों के द्वारा सम्भव नहीं। उनकी निर्मलात्मा को वन्दना भर कर अभी तो विदा चाहता हूँ।

— प्रतापकुमार टोलिया

यो.यु. सहजानंदघनजी जन्मदिन भा. शु. १०,
वि. सं. २०४१, २३-९-१९८५, 23-9-1985
१२, कैम्ब्रिज रोड़, बैंगलोर-५६०००८.

दक्षिणापथ की साधनायात्रा :
आमुख

साधना की स्थिति परम धन्य है, जो इसके पथ पर चल पड़ता है वह स्वयं अपने को तथा दूसरों को भी धन्य बना सकता है । इस पथ पर चलने वाले को क्रमशः प्रकाश प्राप्त होने लगता है और धीरे-धीरे परम प्रकाश की सिद्धि प्राप्त हो जाती है । हज़ारों सूर्यों के प्रकाश से भी अधिक तेजोवान आत्मा का प्रकाश होता है । जिसको वह प्रकाश प्राप्त हो जाता है उसके भीतर से अज्ञान का अन्धकार समाप्त हो जाता है । वह सर्वज्ञ हो जाता है । 'सत्यं ज्ञानं अनन्तम् ब्रह्म' ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और अनंत तत्त्व है । जिसे वह ब्रह्मसिद्धि प्राप्त हो जाती है उसकी चेतना अनन्तभेदिनी हो जाती है । उस अनन्त चेतना में सब कुछ समा जाता है, यह अनन्त चेतना सब कुछ देखने लगती है । कोई वस्तु इससे छिप नहीं सकती । ब्रह्मज्ञानी सर्वज्ञ हो जाता है । सब कुछ जानता है । जो ब्रह्मज्ञानी नहीं होता उसकी चेतना अनन्त न होकर सीमित ही रहती है । सीमा में सर्व कैसे समा सकता है ? सीमित चेतनावाला मनुष्य सर्वज्ञ कैसे हो सकता है ?

साधना के पदों का निर्माण गुरु की सहायता से होता है, इस पथ पर वही गुरु आगे ले जा सकता है जो स्वयं यह यात्रा पूरी कर चुका रहता है । जो स्वयं पथ नहीं जानता वह शिष्य को कहाँ ले जा सकता है । इसी सत्य का उद्‌घाटन करते हुए कबीर ने कहा है - जाका गूरु है अन्धला चेला खरा निरन्ध । अन्धा अंधे ठेलिया दून्यूँ कूप पड़न्त । - जिसका गुरु अंधा है वह शिष्य भी उससे अधिक अंधा होगा । जब एक अंधा दूसरे अंधे को ठेल-ठेल कर आगे बढ़ाता हैं, तो दोनों एक साथ कुएँ में गिरते हैं ।

सच्चे गुरु का लक्षण बताते हुए कबीर कहते हैं - बलिहारी गुरु आपणी द्यौ हाड़ी के बार । लोचन अनंत उघाड़िया अनंत दिखावण हार । - गुरु आप धन्य हैं । आप तो स्वर्गीय अनन्त सत्य का दर्शन हर क्षण करते रहते हैं । आपने मेरे भीतर अनन्त नयन खोल दिये जिससे मैं अनन्त को देख सकूँ । - अनन्त लोचन ही अनन्त का दर्शन करा सकते हैं । जो नेत्र जगत् के स्वार्थों की साधना के लिये केवल कुछ ही लोगों तक सीमित रह जाते हैं, वे अनन्त को कैसे देख पायेंगे । जब नयनों की सीमा अनन्त बन जाती है तभी अनन्त सत्य परमात्मा का दर्शन होता है । परमात्मा की प्राप्ति नहीं उसका दर्शन ही होता है । प्राप्त तो वह हर क्षण में रहता है; पर उस प्राप्त को अज्ञान देखने नहीं देता । ठीक उसी तरह जिस तरह कोई वस्तु हमारे हाथ में ही रहती है, पर हम उसे ढूँढ़ते रहते हैं । कबीर ने कहा है-तेरा साईं तुज्झ में ज्यों पुहुपन में बास । कस्तूरी के मिरग ज्यूँ इत उत सूँघत घास । तेरा स्वामी तो तेरे ही भीतर है जैसे फूल की सुगन्ध फूल में समाई रहती है । कस्तूरी की सुगन्ध मृग के भीतर ही रहती है, पर वह उसे पाने के लिये इधर-उधर घास सूँघता रहता है । प्रत्येक परमाणु में शक्ति बनकर बैठा हुआ परमात्मा प्रति पल सब को प्राप्त है; पर उसको देखने की शक्ति प्राप्त करनी पड़ती है ।

अनन्त परमात्मा तक पहुँचाने वाली यात्रा भी अनन्त ही रहती है । उस यात्रा के पथ पर यदि सद्गुरु मिल गया तो यात्री धन्य बन जाता है । दक्षिणापथ ही क्यों ? वह तो सब दिशाओं में है। इसीलिये दक्षिण में भी । दक्षिण में भी धन्य लोग हैं, पूर्व, पश्चिम और उत्तर में भी-एक-से-एक धन्य । हाँ, उनको खोजने की आवश्यकता होती है । साधक का भाग्य अच्छा रहता है तो उसे सिद्ध गुरु प्राप्त हो जाता है । इसी को कबीर ने-कछू पूरबला लेख-कहा है । पूर्व जन्म की साधना आगे बढ़ी हुई रहती है तो इस जन्म में सिद्धि शीघ्र मिल जाती है । ये संस्कार मनुष्य में ही नहीं, पशु-पक्षी में भी रहते हैं । टोलियाजी ने अपनी इस कृति में आत्माराम श्वान की सुन्दर चर्चा की है। जटायु, जाम्बवान, हनुमान और काक भुशुण्डि भी तो ऐसे ही साधक थे । उदयपुर का गजराज भी इन्हीं संस्कारों का धनी था । मत्स्य, कच्छप, वराह और शेषनाग के शरीर में भी तो अनंत संस्कारवान् नारायण बैठ गये थे । वे नारायण कहां नहीं है । प्रह्लाद के लिये तो खम्भे से प्रकट हो गये । धर्मराज युधिष्ठिर के साथ भी श्वान स्वर्ग तक गया था । श्वान के समान स्वामिभक्ति का आदर्श और कहां मिलेगा ? इसीलिये कबीर ने कहा – "कबीर कूत्ता राम का, मोतिया मेरा नाउँ, गले राम की जेवरी, जित खींचे तित जाउँ ।" कबीर राम का कुत्ता है । मोती मेरा नाम है । मेरे गले में राम की उनके प्रेम की रस्सी बँधी हुई है वे मुझे जिधर खींच कर ले जाते हैं उधर ही मैं चला जाता हूँ । शरणागत मुक्त पुरुष की भक्ति का आदर्श जैसा श्वान के हृदय में स्थापित मिलता है, वैसा अनन्य सम्भव नहीं ।

सत्य, अहिंसा और प्रेम की शक्ति अपार होती है । सब महात्मा इन्हींकी सिद्धि प्राप्त करने के लिये साधना करते रहते हैं । जिनको यह सिद्धि प्राप्त हो जाती है, वे जिन हो जाते हैं, इन्द्रियातीत भगवान हो जाते हैं, समग्र विश्व को वे पवित्र और पावन बना देते हैं । जैन महात्माओं ने भी इन क्षेत्रों में अद्भुत सिद्धि प्राप्त की । इसी सिद्धि की प्राप्ति के बाद अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा था-नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर-हे देवों के देव ! तुम्हारी ही कृपा से मेरा अज्ञान दूर हो गया । मुझे अपने अनन्त स्वरूप का स्मरण प्राप्त हो गया है । टोलियाजी ने अपनी साधना के इस पथ पर ऐसे जैन महात्माओं की चर्चा की है, जिनमें विश्व मैत्री स्थापित हो चुकी थी, जो समग्र विश्व को प्रेममय और पवित्र बना सकते थे । ऐसे महात्माओं के स्मरण मात्र से मन पवित्र हो जाता है । इसी पावन स्मृति को शाश्वत धारा में स्थापित करने के लिये उन प्रातः स्मरणीय आत्माओं के जीवन को अक्षर-ब्रह्म को अर्पित कर ग्रन्थ का रूप दे दिया जाता है । टोलियाजी का यह सफल प्रयास अनुशीलन करने वालों का मन निर्मल बनाने की शक्ति धारण करता है । इस ग्रन्थ को अनन्त प्रणाम ।

डॉ. रामनिरंजन पाण्डेय

(हिन्दी विभागाध्यक्ष, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, आंध्र)

यह साधनायात्रा.....
उसके परम-निमित्त सद्गुरूदेव श्री सहजानंदघनजी के आशीर्वचनों में

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी
दिनांक : 19-11-1969

मुमुक्षुबंधु श्री प्रतापभाई,

बेंगलोर से आपका लेख श्री चंदुभाई द्वारा डाक से प्राप्त हुआ । यहाँ नये जिज्ञासुओं का आवागमन और उनके साथ धर्मचर्चा में समय व्यतीत होता है अतः लेख ऊपर ऊपर से देख लिया है और उसमें कुछ संशोधन किया है । बाकी इस देहधारी को उपमा देने के विषय में आपने कुछ ज्यादा अतिशयोक्ति की है । कतिपय प्रसंगवर्णनों में जो घटनाएँ अन्य व्यक्तियों के मुख से सुन कर आपने प्रस्तुत की हैं, वे यदि यहाँ पर इस देहधारी को पूछ कर उसके मुख से सुनी होतीं तो वे सब प्रसंग भिन्न रूप से ही लिखे गये होते । आपके वैयक्तिक अनुभव पढ़ कर प्रसन्नता हुई । इस सम्पूर्ण लेख के सम्बन्ध में आप स्वतंत्र हैं और यह देहधारी किसी की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने की वृत्ति से प्रायः असंग रहने का आदी है । अतः इस लेख पर स्वामित्व क्यों और कैसे रख सकता है ?

आपकी काव्यमय शैली देख कर कृपाळु देव के वचनामृत का भाषान्तर करने के लिए उसका लाभ उठाने का लोभ किसी प्रकार से इस आत्मा में जाग्रत हुआ है सही, लेकिन उसकी पूर्ति के सम्बन्ध में अवसर आने पर सोचेंगे ।

बाकी उक्त लेख की विशेष समीक्षा की नहीं है । आपको स्वहित के साथ साथ परहित में यह जिस प्रकार सहायक सिद्ध हो उस प्रकार से आप उपयोग करें यही आशीर्वाद है ।

ववाणिया तीर्थ में पू.श्री जवलबा तथा उनकी निश्रा में एकत्रित मुमुक्षु सभी भाई बहनों को मेरा हार्दिक जय सद्गुरुवन्दन । यह लेख प्राप्त होने पर पहुँच पत्र अवश्य भेजें ।

यहाँ से श्री माताजी ने आपको अनेकशः आशीर्वाद प्रेषित किये हैं । सर्व मुमुक्षु भाई बहनों ने हार्दिक जय सद्गुरु वंदन कहे हैं उसका स्वीकार करें । खेंगारबापा ने आपको विशेष रूप से याद किया है ।

धर्मस्नेह में वृद्धि हो ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

सहजानंदघन के अनेकानेक आशीर्वाद

(हम्पी यात्रा के प्रथम दर्शन के पश्चात् बेंगलोर होकर अहमदाबाद लौटने पर लिखा गया पत्र)

श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, रत्नकूट, हम्पी :
जहाँ आहलेक जगाई—
एक परम अवधूत आत्मयोगी ने !

उन्मुक्त आकाश, प्रशांत प्रसन्न प्रकृति, हरियाले खेत, पथरीली पहाड़ियाँ, चारों ओर टूटे-बिखरे खंडहर और नीचे बहती हुई प्रशमरस-वाहिनी-सी तीर्थसलिला तुंगभद्रा-इन सभी के बीच, 'रत्न-कूट' की रत्न-गर्भा पर्वतिका पर, गिरि-कंदराओं में छाया-फैला यह एकांत आत्मसाधन का आश्रम, जंगल में मंगलवत् ।

कुछ वर्ष पूर्व की बात है ।

मध्यान्तराल में दूषित बनी हुई इस पुराण प्राचीन पावन धरती के परमाणु बुला रहे थे उसके उद्धारक ऐसे एक आत्मवान योगीन्द्र को और चाह रहे थे अपना पुनरुत्थान... !

तीर्थंकर भगवंत मुनिसुव्रत स्वामी और भगवान राम के विचरण की, रामायण-कालीन वाली सुग्रीव की यह किष्किन्धा नगरी ओर कृष्णदेवराय के विजयनगर साम्राज्य की जिनालयों-शिवालयों वाली यह समृद्ध रत्न-नगरी कालक्रम से किसी समय विदेशी आततायियों से खंडहरों की नगरी बनकर पतनोन्मुख हो गई ।

उसीके मध्य बसी हुई रत्नकूट पर्वतिका की प्राचीन आत्मज्ञानियों की यह साधनाभूमि और मध्ययुगीन वीरों की यह रणभूमि इस पतनकाल में हिंसक पशुओं, व्यंतरों, चोर-लुटेरों और पशुबलि करने वाले दुराचारी हिंसक तांत्रिकों के कुकर्मों का अड्डा बन गई ..... !

पर एक दिन ..... अब से कुछ ही वर्ष पूर्व ..... सुदूर हिमालय की ओर से, इस धरती की भीतरी पुकार सुनकर, इससे अपना पूर्वकालीन ऋण-सम्बन्ध पहचानकर आया एक परम अवधूत आत्मयोगी.... ! अनेक कष्टों, कसौटियों, अग्नि-परीक्षाओं और उपसर्ग-परिषहों के बावजूद और बीच से उसने यहाँ आत्मार्थ की आहलेक जगाई, बैठा वह अपनी अलख-मस्ती में और भगाया उसने भूत व्यंतरों को, चोर-लुटेरों को, हिंसक दुराचारियों को.... और यह पावन धरती पुनः एक बार महक उठी.....

और .... और फिर ..... ?

फिर लहरा उठा यहाँ आत्मार्थ का धाम, आराधकों का आराम, साधकों का परम साधना-स्थान यह आश्रम-श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम : गांधी के परमतारक गुरु एवं स्वतंत्र भारत के परोक्ष स्रष्टा परम युगपुरुष ''श्रीमद् राजचंद्रजी'' के नाम से ! इसका बड़ा रोचक इतिहास है और विस्तृत उसके विलक्षण योगी संस्थापक का वृत्तांत है, जो असमय ही चल पड़ा अपनी चिरयात्रा को, चिरकाल के लिए, अनेकों को रोते-बिलखते, परम विरह में तड़पते छोड़कर और अनेकों के आत्म-दीप जलाकर ! ''जोगी था सो तो रम गया'', 'मत जा, मत जा' की दुहाई देने पर भी चल बसा अपने 'महा-विदेह'

के परम गंतव्य को, परंतु उसकी यह पावनकारी साधनाभूमि रह गई-अनेकों को जगाने, अपने आपको अपने से जोड़ने ..... !

उस परम योगी की लोकोत्तर आत्म-साधना का साक्षी यह आश्रम पड़ा-पड़ा अपनी करवटें बदल रहा है और उसकी पराभक्तिवान, परम वात्सल्यमयी, परम करुणामयी आत्मज्ञा अधिष्ठात्री पूज्य माताजी की पावन निश्रा में बुला रहा है, चिरकाल का बुलावा दे रहा है–बिना किसी भेद के, सभी सच्चे खोजी आत्मार्थी साधकों-बालकों को : अपना भक्ति-कर्तव्य-आत्म-कर्तव्य साधने, 'स्वयं' को खोजने, 'स्व' के साथ 'सर्व' का आत्म-साक्षात्कार पाने ..... !!*

सम्मतियाँ-I

श्रीमद् राजचन्द्रजीने महात्मा गांधी को पंचाणुव्रत दिलवाए थे और उसी के बाद गांधीजी की माता ने गांधीजी को विदेश जाने की अनुमति दी थी । इसके उपरांत भी गांधीजी जब अफ्रिका में थे तो उनका संपर्क श्रीमद् राजचन्द्रजी से बना हुआ था । इसमें कोई भी शंका की बात नहीं है श्रीमद् राजचन्द्रजी की साधना अनुपम थी और उनका व्यक्तित्व भी असाधारण था और तभी गांधीजी जैसे साधक सत्याग्रही पर वे प्रभाव डाल सके थे । और प्रभाव भी वैसा जिसके द्वारा गांधीजी विश्व में सत्य और अहिंसा के महान साधक के रूप में याद किये जायेंगे ।

प्रो. प्रतापकुमार टोलिया से हमारी मुलाकात लगभग २० वर्ष पूर्व राजगृह में हुई थी और वे मेर साथ भी दो दिन रहे थे । संगीत के माध्यम से उन्होंने जो साधना पथ चुना है और साधारण लोगों के बीच बैठकर प्रभावशाली ढंग से पंथप्रदर्शन देते हैं, उसे मैं राजगृही में स्वयं देख चुका हूँ । स्वयं भी नित्य सुबह-शाम ध्यान करते और उस समय उनकी मुखाकृति सचमुच ही एक योगी जैसी मैंने देखी थी ! यह एक आश्चर्य की बात नहीं कि इन पर भी श्रीमद् राजचन्द्रजी के आश्रम एवं उनके उपदेशों का पर्याप्त रूप में प्रभाव पड़ा है और वे श्रीमद् राजचन्द्रजी के उपदेशों को टेप तथा ग्रामोफोन रिकार्डो के द्वारा बड़े अच्छे ढंग से प्रचारित एवं प्रसारित कर रहे हैं । उनके द्वारा लिखी गई लघु पुस्तिका "दक्षिणापथ की साधनायात्रा" १४ वर्ष पूर्व श्रीमद् राजचन्द्रजी के आश्रम, हम्पी के प्रथमदर्शन के उपरांत उन्होंने गुजराती भाषा में लिखी थी । अब उसका हिन्दी अनुवाद उनकी सुयोग्य सुपुत्री कु. पारुल ने बहुत परिश्रमपूर्वक और सुन्दर ढंग से किया है ।

इस लघु पुस्तिका से श्रीमद् राजचन्द्रजी के उपदेश तथा उनके प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं और साधक को श्रीमद् राजचन्द्रजी का निम्न मूलमंत्र हृदय पट पर अंकित हो जाता है –

"जिसने आत्मा को जाना, उसने सब को जाना ।"

"जे एगं जाणई, से सव्वं जाणई - !"

मैं प्रो. प्रतापकुमार टोलिया को और उनकी सुयोग्य सुपुत्री कुमारी पारुल को इस प्रति के लिये बधाई देता हूँ ।

सुबोधकुमार जैन, आरा

("The Jaina Antiquary : श्री जैन सिद्धांत भास्कर" Vol. 38, No. 2, Dec. 1986)

सम्मतियाँ-II : साहित्य समालोचना

प्रस्तुत पुस्तक में दक्षिण के एतिहासिक कर्णाटक प्रदेश के तीर्थ रत्नकूट हम्पी-विजय नगर पर निर्मित श्रीमद् राजचंद्र आश्रम-एक साधना स्थल का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है । हेमकूट के अनेक खंडहर जिनालयों के मीलों तक फैले प्रदेश में यह तीर्थ धाम साधना हेतु सर्व जन सुलभ है । मानव के लिए ही नहीं, तिर्यञ्चों पशुओं के लिए भी । एक श्वान आत्माराम की चर्चा एक चमत्कारिक रूप में भी ली जा सकती है । श्रीमद् राजचन्द्र की प्रतिमा के सामने बैठकर भक्ति में विभोर साधक अपनी साधना में लीन होते हैं । प्रा. प्रतापकुमारजी ने बड़े ही साहित्यिक ढंग से इस छोटी पुस्तक में इस पुनीत स्थान-साधना स्थल का वर्णन किया है जो पठनीय है और साधना हेतु इच्छुक लोगों के लिए प्रेरणादायक है । अतः लेखक धन्यवादार्ह है । पुस्तक की छपाई सफाई सुन्दर है ।

"वीर-वाणी", भँवरलाल न्यायतीर्थ (३, सितम्बर, १९८६)

सम्मतियाँ-III

बेंगलोर में 1971 में स्थापित 'वर्धमान भारती' संस्था ध्यान, संगीत, ज्ञान और अध्यात्म के द्वारा जैनदर्शन के प्रचार-प्रसार हेतु कार्यरत है । प्रो. प्रतापकुमार टोलिया और उनका परिवार उसमें प्रधान योगदान दे रहा है ।

रामायण में वाली-सुग्रीव की 'किष्किन्धा' नगरी की प्राचीनता जहाँ स्थिर हुई मानी जाती है, उस कर्णाटक के एतिहासिक तीर्थ रत्नकूट हंपी में श्रीमद् राजचंद्र आश्रम नए ही साधनाधाम के रूप में आकार ले रहा है । विरान और खंडहरों जैसी हिंसक पशुओं से घिरी हुई इस भूमि पर 'भद्रमुनि' ने आकर उसे अहिंसा और तप से पवित्र बनाई । लेखक ने प्रकृति के पवित्र वायुमंडल में स्थित उस आश्रम की मुलाकात लेकर जिस निराले और दिव्य आनंद की अनुभूति की उसका रसप्रद वर्णन प्रस्तुत पुस्तिका में है । आश्रम के माताजी की अलौकिकता, खेंगारबापा का 'स्व' के हेतुलक्षी समर्पण, कूत्ता आत्माराम इत्यादि के विषय में पढ़ते हुए लगता है कि महावीर और तीर्थंकरों के समय की तपःप्रभा आज भी देखने को मिलती है वह अद्भुत बात मानी जाएगी । लेखक ने भावविभोर बनकर वहाँ कुछ पद गाए और अनन्य महा आनन्द पाया । जैन एवं जैनेतरों को भी मुलाकात लेने का आकर्षण उत्पन्न करे ऐसा इस स्थल विषयक मनोरम चित्र देखने को मिलता है ।

"जनसत्ता" (27-2-1994)

सम्मतियाँ-IV : आत्मद्रष्टा माताजी

दक्षिणापथ की साधनायात्रा में श्री धनदेवीजी एवं दक्षिण में आये हुए तीर्थों का तलस्पर्शी वर्णन लेखक ने किया है । उसे पढ़ते हुए कभी तो हम भी साथ ही यात्रा कर रहे हों ऐसा भास होता है । आत्मद्रष्टा माताजी विषयक स्व. कु. पारुल टोलिया का लेख मनन करने योग्य है । आमुख डॉ. रामनिरंजन पांडेय ने लिखा है ।

"जय जिनेन्द्र" : मुंबई समाचार (27-2-1994)

दक्षिणापथ की साधनायात्रा

अर्पण

इस साधनायात्रा के प्रेरक निमित्त
उपकारक अग्रज एवं आश्रमाध्यक्ष
स्व. पू. चंदुभाई टोलिया की
पवित्र आत्मा को......

जिनके संग
हंपी के आश्रम-तीर्थ पर वस्तुपाल तेजपालवत् अपूर्व
जिनालय-जैन विश्वविद्यालय दोनों का निर्माण करने की
भव्य भावनाएँ स्वप्नद्रष्टा बनकर
सद्गुरुदेव सहजानंदघनजी के
चरणों में बैठकर भावित कीं, प्रयत्न-आयोजन बनाये...
परंतु उन सब के साकार होने से पूर्व ही वे दोनों
अचानक, असमय, अप्रत्याशित रूप से स्वधाम सिधारे...
पंछी के नीड़ नष्ट हुए
प्रत्येक पर पर तीर पिरोये गए
और स्वप्न अधूरे रहे,
जीवन प्रवाह अति वेग से बहते रहे !

कब होंगी वे विराट भावनाएँ
इस अल्पात्मा के द्वारा,
अल्पजीवन में अब पूरी ?

प्रतापकुमार ज. टोलिया

श्रीमद् राचजंद्र आश्रम, हम्पी, कर्नाटक की अधिष्ठात्री परमपूज्या गुप्तज्ञानी

आत्मद्रष्टा माताजी

एक परिचय - झांकी

स्व. कु. पारुल टोलिया

एम.ए गोल्ड मेडलिस्ट, सात एवॉर्ड प्राप्त जर्नलिस्ट

..... रात्रि का घना अंधकार चारों ओर फैला हुआ है..... सर्वत्र शांति छाई हुई है... नीरव, सुखमय शांति । इस अंधकार में प्रकाश देनेवाले तारे और घूमिल चंद्रमा आकाश में मुस्कुरा रहे हैं । चारों ओर नज़र दौड़ाने पर दूर खड़े पर्वतों के आकार भर दिखाई देते हैं और कभी कभी छोटी बड़ी चट्टानें भी ।

अपने आप में बन्द यह एक अलग ही दुनिया है । ऐसी दुनिया कि जहाँ कदम रखने पर मन में एक प्रकार की अपूर्व शांति दौड़ जाती है, ऐसी दुनिया कि जहाँ पहुँचने पर हम इस दुनिया को भूल जाते हैं, जहाँ इस जग के विलास, विडंबना, घमण्ड, क्रोध, मोह, माया, लोभ पहुँच नहीं पाते ।

..... *अगर आप को यहाँ आना है तो इन सब को घर में बन्द करके आइए,* क्योंकि आप यहाँ आते हैं भटकती-तड़पती हुई इस आत्मा को तृप्ति दिलाने, उसे दुर्लभ मानवजीवन का मूल्य समझाने, अपने आप को टटोलने और 'अंदर' झाँकने- न कि अपने विषय – कषायों को बढ़ाने !

अनेक महापुरुषों की पद-रेणु से धूसरित यह स्थान है योग-भूमि हम्पी – 'सद्भक्त्या स्तोत्र' में उल्लिखित "कर्णाटे रत्नकूटे भोटे च" वाला रत्नकूट-हेमकूट का कर्णाटक स्थित प्राचीन जैन तीर्थ एवं रामायण कालीन किष्किन्धा नगरी हम्पी – विजयनगर के समृद्ध साम्राज्य का भूला हुआ वह भू-भाग कि जहाँ यह नूतन जैन तीर्थरूपी आश्रम – श्रीमद् राजचंद्र आश्रम – प्राकृतिक गुफाओं में बसा है – शहरी ज़िन्दगी की अडचनों और विकृतियों से कोसों दूर ।... यहाँ पर रेल, ट्रेन, मोटरगाड़ी या बस की आवाज़ तक पहुँच नहीं पाती ।

पहाड़ी पर स्थित इस *तीर्थ – धाम के नीचे हरे लहलहाते खेत, दूसरी तरफ पर्वत एवं पर्वत* के तले किलकिल बहती तीर्थसलिला तुंगभद्रा नदी और ऊपर आश्रम में बंधा हुआ सुन्दर गुफामन्दिर – इन्हें देखने भर से आपकी बुराईयाँ न जाने कहाँ गायब हो जाती हैं, जैसे वे पहले कभी थीं ही नहीं !!!

..... यहाँ पर हर किसी का स्वागत होता है । हमारे समाज को छेदनेवाले ऊँच-नीच के भेद को यहाँ कोई स्थान नहीं । बीसवें जैन तीर्थंकर परमात्मा मुनिसुव्रत भगवान के एवं मर्यादा पुरुषोतम प्रभु श्री राम के विचरणवाली मानी गई रामायणकालीन किष्किन्धानगरी और मध्यकालीन विजयनगर

साम्राज्य की इस भूमि में तो जैसे आज भी, गांधीगुरु श्रीमद् राजचंद्रजी के कृपापात्र योगींद्र युगप्रधान श्री सहजानन्दघनजी जैसे महामानव की योग, ज्ञान एवं भक्ति की त्रिवेणी से पावन धरा पर, भगवान मानों साक्षात् बसते हैं ।..... और उनकी भेद-राग द्वेष से भिन्न नज़रों में तो सभी आत्माएँ समान हैं, – चाहे फिर वे अमीर की हों या गरीब की, मनुष्य-देहधारी की हों या पशु-पक्षी-कीट-पतंग की ! यहाँ सच्चे भावों का स्वागत होता है ।

इस आश्रम की चलानेवाली हैं – बाहर से दिखने में सीधी, सादी, सामान्य वेषधारी, पर भीतर से ज्ञान, भक्ति एवं योग की अमाप्य ऊँचाइयों पर पहुँची हुईं आत्मज्ञा "माताजी" । हरकोई उन्हें इसी नाम से पुकारता है । ये सिर्फ़ नाम से ही नहीं, बल्कि काम से भी "माताजी" हैं, – सभी की माताजी, वात्सल्य एवं करुणा के सागर-सी माताजी !!!

धनदेवीजी नामधारी जगत्माता की काया गुजरात की, कच्छ की, ही है, परंतु आत्मा, देह होते हुए भी, महाविदेह क्षेत्र की ! उन्हें "जगत्माता" के, आश्रम की "अधिष्ठात्री" के रूप में संस्थापित किया है जंगल में मंगलरूप इस नूतन तीर्थधाम के संस्थापक महायोगी श्री सहजानंदघनजी ने, बरसों पहले ई. १९७० में 'योग के द्वारा' अपना देहत्याग करने से पहले । आज सारा आश्रम रोशन है इन्हीं जगत्माता के मुस्कुराते, जगमगाते, तेजस्वी, ज्ञानपूत चेहरे से । माताजी जगत के रागादि मोहबंधनों से दूर फिर भी जैसे निष्कारण करुणा और सर्व – वात्सल्य का साक्षात् रूप है । वह सिर्फ़ हमारी ही नहीं, अनेक अबोल, वेदनाग्रस्त, मूक, पशु-प्राणियों की भी "माँ" है । हर अतिथि की, हर आगंतुक साधु- साध्वी की ही सेवा-वैयावच्च नहीं, हर यात्री की, हर श्रावक की, हर बालक की, हर पशु-पंछी की भी जो वात्सल्यमयी सेवा माताजी करती हैं, वह तो देखते ही बनता है ।

इतनी योग, ज्ञान एवं भक्ति की ऊँचाई पर रही हुई आत्मज्ञानी माताजी इतनी सहज सरलता से सभी की सेवा में लगती हैं उसे देखकर तो हर कोई दंग रह जाता है । माताजी बालिकाओं एवं बहनों के लिये तो वात्सल्य का एक विशाल वट-वृक्ष-सा आसरा है । दूसरी ओर जीवन भर उनसे आत्मसाधना की दृढ़ता प्राप्त करने के बाद, मरणासन्न बूढ़ों या अन्य मनुष्यों के लिये ही नहीं, पशुओं के लिये भी "समाधिमरण" पाने का वे एक असामान्य आधार है । कई मनुष्यों ने ही नहीं, गाय, बछड़ों और कुत्तों ने भी उनकी पावन निश्रा में आत्म-समाधिपूर्वक देह छोड़ने का धन्य पुण्य पाकर जीवन को सार्थक किया है । ऐसी सर्वजगतारिणी वात्सल्यमयी माँ के लिये क्या और कितना लिखें ? वर्णन के परे है उनका बड़ा ही – अद्भुत विरल, विलक्षण जीवनवृत्त ।

ऐसी परम विभूति माँ के चरणों में एवं पावन तीर्थभूमि पर खुले आकाश के नीचे बैठकर कई उच्च विचार आते हैं और गायब हो जाते हैं..... । फिर अचानक वेदना की टीस भरा एक विचार आता है कि जल्द ही इस स्वर्ग-सी दुनिया को छोड़कर अपने व्यवहारों की खोखली दुनिया में चले जाना पड़ेगा..... । जी उदास होता है । जाना नहीं चाहती । काश ! (शायद अपनी इच्छाओं से ही

सृजित) ऐसी दुनिया ही न बनाई गई होती !! हम्पी में, वात्सल्यमयी माँ के चरणों में जो अपनापन, जो प्यार मिलता है, वह इसमें कहाँ ? वहाँ के लोग जैसे इन्हें जानते ही न हों... ! ..... फिर भी जिम्मेदारियाँ हमें खींचती हैं ..... जाने पर बाध्य करती हैं ..... विवश होकर जाने के लिये चल देती हूँ तो यह संकल्प करके कि – "फिर भी यहाँ वापस आऊँगी, जल्द ही ।" ..... घनरात्रि में ये विचार शामिल हो जाते हैं ..... और मन पर फिर से शांति छा जाती है ..... ।

(कापीराइट लेख)

नोट : इस लेख को लिखने के कुछ वर्ष बाद लेखिका कु. पारुल की दिव्यप्रेम की प्यासी आत्मा, इस "खोखली दुनिया" को छोड़कर (२८.८.८८ को बस एक्सीडैन्ट को निमित्त बनाकर) चली गई..... शायद अपने सूक्ष्म आत्मस्वरूप से इसी आत्मज्ञा माँ के चरणों में विचरने !! – प्र.

योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानन्दघनजी संस्थापित

श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, हम्पी, कर्नाटक की अधिष्ठात्री परमपूज्या

रहस्यवादिनी आत्मज्ञा जगत्माता

ले. प्रा. प्रतापकुमार टोलिया

बात है अब से कुछ ६५ वर्ष पूर्व की । गुजरात-कच्छ के एक गाँव 'सांभराई' में एक विलक्षण बालिका का पावन जन्म हुआ । पूर्व संस्कारों की संपन्नता के कारण बाल्यावस्था से ही वह निर्मल ज्ञानपूर्ण थी ।

एक दिन, चार साल की आयु में वह अपने पिता के साथ सांभराई से दूसरे गाँव पैदल जा रहीं थी । दोनों ओर टीलोंवाला सँकरा रास्ता आया । एक ही वाहन-गाड़ी जा सके उतनी ही चौड़ाई । पीछे से उस प्रदेश के छोटे-से रियासती राव-राजा-का 'वेलड़ा' (वाहन), अपने रिसाले के साथ आ रहा था । बालिका धनबाई उस सँकरे मार्ग के बीचोबीच चल रही थी । उसके पिता शिवजी सेठ तो पीछे से आ रहे वाहनों को मार्ग देने एक ओर खिसक गए, किन्तु बालिका, वाहनचालकों के कई बार आवाज़ देने पर भी, हटी नहीं बीच से ।

चालक ने ज़ोर की आवाज़ देकर उसे धमकाया –

"अरे बच्ची ! हट जा बीच से । तेरा दिमाग फिर गया है क्या ? अंदर राव बैठे हैं, तुझे पकड़ लेंगे ... ।" परन्तु बालिका ने इस पर भी बिना हटे, उसी निर्भयतापूर्वक चलते हुए प्रति-प्रश्न किया – "दिमाग किसका फिर गया है, मेरा या राव का ? पूछो उन से....."

और वेलड़े के भीतर बैठा हुआ राव इस सच्चाई को सुनकर चकित और भयभीत हुआ । उसने बालिका को अपने पास, एकांत में, वेलड़े के भीतर अकेली बुलाया । सभी को दूर हटा दिया ।

पिता शिवजी सेठ तो थरथर काँपने लगे कि बच्ची को यह सरफिरा राजा अब क्या करेगा – कहीं मारेगा, पीटेगा, पकड़ रखेगा ?

बालिका धनबाई तो प्रसन्न निर्भीकता से राव के पास जा बैठकर वही बात सीधी ही उन से दोहराकर पूछने लगी –

"रावसाहब ! क्या आपका ही दिमाग नहीं फिर गया है ? सर पर नहीं, हृदय पर हाथ रखकर सच कहिये..... !"

और सकपकाते हुए अंतर्दोषी राजा अपने आपको अधिक छिपा नहीं सके । बालिका की आँखों के तेज और आवाज़ की बुलन्दी के सामने वे ढीले पड़ रहे थे । राव कुछ उत्तर दे उतने में तो ज्ञानी बालिका का उनके भीतर के गुप्त पापाशय को झकझोरनेवाला पुण्यप्रकोप प्रकट हुआ – "प्रजा के पिता समान होते हुए भी 'रावण' जैसा काम करने जाते हुए, प्रजापुत्री परस्त्री का हरण करने जाते हुए आपको शर्म नहीं आती ? क्या इस पापकर्म को आप करने नहीं जा रहे ? क्या आपके ऐसे अधम आशय के लिये मैं आप को मार्ग दूँ ?"

और अवाक् राव, इतनी छोटी सी – बालिका में साक्षात् किसी देवी का दर्शन कर उसके चरणों में झुक गया । दोष स्वीकार किया, क्षमा माँगी, वहाँ से हीं लौट जाने को स्वीकार किया और जाते जाते बालिका से एकांत में दो प्रार्थनाएँ की :

"हे धनदेवी ! अपने पिता के साथ की इस यात्रा से लौटने पर मेरे महल पर आकर मुझे धर्म सुनाना और मेरे इस पापाशय को किसी के सामने प्रकट न कर गुप्त रखना ।" बालिका ने दोनों बातें सहर्ष स्वीकार कीं और उसे क्षमा कर वहीं से लौटाया ।

इधर काँपते हुए पिता के होश तब ठिकाने पर आये जब पुत्री धनबाई हँसती हुई उनके पास लौटी और वे विशेष स्तम्भित रह गये जब राव का सारा काफिला वहीं से लौटा । बालिका से सारी घटना और इस लौटने का कारण जानने में वे असमर्थ और निराश रहे । बालिका बिलकुल मौन रही ।

वे दोनों अपने गंतव्य को चल पड़े । बालिका धनदेवी की बाट जोह रहे राव का जब उसके गाँव से लौटने पर फिर बुलावा आया, तब राव के शिकार, जुआ, परस्त्रीगमन आदि सात व्यसनों का त्याग करवा कर धनदेवी ने उसे "भगत" जैसा परिवर्तित कर दिया । तभी पिता को बालिका की किसी अद्‌भूत विलक्षणता का पता चला, परन्तु वह स्वयं तो तब भी थी नितान्त मौन ।

तब से ही ऐसे अनेक अद्भुत प्रसंगों, अगम्य अनुभवों, गूढ़ संकेतों, जीवन रहस्यों एवं अगमचेती भरे निर्देशों के कारण आसपास के लोग बालिका धनबाई से एक ओर से चकित – स्तम्भित थे तो दूसरी ओर से संदेह भरे । उन्हें 'भूतड़ी' और 'जादुगरनी' जैसे उपनाम भी अज्ञानवश दिये गये किन्तु उनके भीतर की निर्मल ज्ञान संपदा की पहचान पाने में वे सब सर्वथा असमर्थ रहे ।

ऐसे विलक्षण बाल-जीवन, कौमार्य एवं गृहस्थाश्रम के ढ़ेर से प्रसंग उनके अद्वितीय, अलौकिक धर्म-जीवन को व्यक्त करते हैं। ये सारे उनकी जीवनी में वर्णित हैं।*

तत्पश्चात्, पावापुरी में सं. २०१० में समाधि मरण प्राप्त विदुषी साधिका कु. सरला की देवलोकगत आत्मा के द्वारा प्रेरित, धनदेवी जी के ही संसारी भतीजे श्री भद्रमुनि (बाद में योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानन्दघनजी) की प्रेरणा एवं निश्रा में गठित उनका अद्वितीय अखंड आत्मसाधनामय जीवन, जैन-साधना "रत्नत्रयी" की चरमसीमा है।

पूर्वजन्म की संस्कार संपदा एवं वर्तमान जीवन की ऐसी अनेक साधनाओं से उच्च सिद्धियाँ-लब्धियाँ प्राप्त करने पर भी वे जीवनभर गुप्त, निरहंकारी, विनम्र एवं अत्यंत विनयशील रहीं।

"लघुता में प्रभुताई है, प्रभुता से प्रभू दूर" यह संतवचन उन्होंने सतत अपनी दृष्टिसन्मुख रखा था। तदनुसार उन्होंने स्वयं कहीं भी अपनी सिद्धियों का आसार आने नहीं दिया। उनके रहस्यमय जीवन के इर्द-गिर्द जो भी घटता गया वह अपने आप, सहज और अनायास ही।

श्रीमद् राजचंद्र जी, जो कि उनके परम आराध्य थे उनके सुवर्ण वचन "जहाँ सर्वोत्कृष्ट शुद्धि, वहाँ सर्वोत्कृष्ट सिद्धि" के अनुसार पूज्य माताजी के बाह्यांतर परिशुद्ध जीवन की सर्वोत्कृष्ट सिद्धि थी – "आत्मा को लगातार देह से भिन्न देख पाने का भेदज्ञान !" "केवल निज-स्वभाव का अखंड वर्ते ज्ञान" वाली उनकी अंतर्दशा थी।

इस भेदज्ञान-आत्मज्ञान को उन्होंने अपने व्यवहार जीवन के पद पद पर आत्मसात् कर अभिव्यक्त किया और अपने संपर्क में आनेवाले सभी को उस मार्ग की ओर मोड़ा – "मैं देहभिन्न आत्मा हूँ" की सतत 'पकड़' करवाते हुए।

अपने शरणागत हज़ारों मनुष्यों को ही नहीं, पशु-पंछी, कीट-पतंग, जीव-जंतुओं का भी अपनी करुणा से उद्धार कर अपने अधीनस्थ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, हम्पी (कर्नाटक) को अनवरत रूप से विकसित करती हुईं, विदेहस्थ सद्गुरुदेव सहजानन्दघनजी प्रदत्त "जगत्माता" के ज्ञान-वात्सल्य-करुणा भरे बिरुद को अक्षरशः साकार करती हुई वह अभी अभी-६५ वर्ष की देहायु में ही अपनी भावी भूमि महाविदेह क्षेत्र को आत्मसमाधिपूर्वक प्रस्थान कर गईं "आत्मभावना" का आहलेक जगाती हुई, अनेकों को अप्रत्याशित परम विरह में डुबाती हुईं, चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शनिवार दि. ४.४.१९९२ की रात को ९.१५ बजे।

ॐ शांति।

संपादन : श्रीमती सुमित्रा टोलिया

* दृष्टव्य है : श्री भँवरलाल नाहटा लिखित "आत्मदृष्टा मातुश्री धनदेवी जी।"

प्रकरण-९ Chapter-9

(श्री सहजानंदघन गुरूगाथा – Part-1)

सद्‌गुरू पत्रधारा

श्रीमद् राजचंद्र आश्रम हंपी, कर्नाटक के संस्थापक
योगी.यु.श्री सहजानंदघनजी के प्रेरक पत्र
(1969 - 1970)

आश्रमाध्यक्ष श्री चंदुभाई टोलिया, बेंगलोर
एवं
प्रा. प्रतापकुमार टोलिया, अहमदाबाद – बेंगलोर
(प्राध्यापक, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद)
के प्रति

अनुवाद
श्रीमती सुमित्रा प्र. टोलिया
एम. ए. (हिन्दी), संगीत विशारद

यो.यु.श्री सहजानंदघन जन्म शताब्दी वर्ष 2014

प्रकाशक
योगीन्द्र युगप्रधान सहजानंदघन प्रकाशन प्रतिष्ठान
जिनभारती
वर्धमान भारती इन्टरनेशनल फाउन्डेशन,
प्रभात कॉम्पलेक्स, के.जी. रोड़, बेंगलोर-560 009.
ई-मेल : pratapkumartoliya@gmail.com

॥ ॐ नमः ॥

॥ सहजात्म स्वरूप परमगुरू ॥

परावाणी की यह पत्रधारा..... ।

परमगुरू की परम अनुग्रहपूर्ण परावाणी की यह पत्रधारा बही तो है अल्प कालखंड के लिए हम दोनों बंधुओं पर (दिसम्बर 1967 में विमलाताई संग इडर पहाड़ पर गुरुदेव के स्मरणीय प्रथम दर्शन के पश्चात्)* नवम्बर 1969 से सितम्बर 1970 के बीच । परंतु यह 'कालोऽयम् निरवधि' की स्मृतिदायक चिरंतन काल के कुछ शाश्वत पत्र छोड़ जाती है । महाव्याधि के होते हुए भी महा उपकारक गुरुदेव के लिखे हुए बहुत से पत्र विश्वसाहित्य की अमर संपत्ति बन जाते हैं। सर्वकालीन साधकों के लिए तो ये अमूल्य प्रेरण स्त्रोत हैं । हमें सदा काल के लिए परिप्लावित कर गए ये पत्र सभी के लिए अमृत-वर्षारूप बनो ।

उनके ये पत्र और उनकी अंतिम दिनों की वाणी के कुछ साक्षात् टेइप भी जो हमारे कानों और हृदयों में सदा अनुगुंजित रहते हैं, वे भी *'शिवमस्तु सर्व जगतः'* सिद्ध हों ।

॥ श्री सद्‌गुरुचरणार्पणमस्तु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

प्र.

बेंगलोर, दिनांक : 7-4-2014

A : श्री चन्दुभाई पर पत्र

(1)

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी, रत्नकूट
12-11-1969

सद्‌गुणानुरागी श्री चन्दुभाई टोलिया सपरिवार

कल श्री प्रतापभाई का बेंगलोर से लिखा हुआ पत्र मिला । उसमें उनके द्वारा अभिव्यक्त उनके वैयक्तिक लाभ के विषय में जान कर परम प्रसन्नता हुई । आप सचमुख भाग्यवान हैं कि आपको ऐसे पराभक्तिप्रधान हृदयवाले विद्वान् अनुज मिले हैं ।

पत्र में उन्होंने स्वयं लिखे हुए लेख के विषय में दिग्दर्शन किया है ।

आप सपरिवार तथा आपके मित्र श्री छोटुभाई आदि के लिए यह नूतन वर्ष आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से उन्नतिशील बने ऐसे इस देहधारी तथा माताजी के अंतःकरण के आशीर्वाद स्वीकार करें ।

दीपावली की तीन दिन की धून निर्विघ्नरूप से सम्पन्न हुई । प्रति वर्ष की तुलना में इस साल उसमें कुछ विशेषता ही रही । कई भव्यात्माओं को देहमान छूट गया और भावावेश में उन्हें अपूर्व अनुभव हुए ।

---

* (संदर्भ "अद्‌भुत योगी श्री सहजानन्दघन" पृष्ठ : 102 : गुरुदेव और विमलाताई का मिलन) यहाँ पृ. 116

सत्संगभवन हेतु डेढ़ लाख रुपये निश्चित हैं । अब वह तैयार हो जाय तो ऐसे भक्ति के प्रसंगों पर जो जगह की कमी महसूस होती है वह दूर हो सके । आप कार्तिक पूर्णिमा के समय यहाँ पधारें तो अच्छा होगा । आपको ट्रस्टी मण्डल में सम्मिलित करने की भावना सफल हो सकेगी । श्री छोटु भाई एवं उनके परिवार को हार्दिक नूतन वर्षाभिनन्दन ज्ञापित करें । वे तो यहाँ पूर्णिमा के अवसर पर आयेंगे ऐसा लिखते हैं ।

पूर्णिमा के दिन विशेष कार्यक्रम रहेगा : ध्वज महोत्सव, शोभायात्रा, साधर्मी वात्सल्य, श्री परम कृपाळु के जीवन के प्रसंगों का वर्णन, आश्रम का वार्षिक अहेवाल, ट्रस्टियों का चुनाव, इत्यादि होंगे ।

धर्मस्नेह में वृद्धि हो.......

ॐ शान्तिः । .... सहजानन्दघन के अगणित आशीर्वाद

(2)

बेंगलोर,

दि. 19-11-1969

पूज्य गुरुदेव,

आपका दि. *12-11-1969 का कृपापत्र मिला । भाग्य मेरा बहुत ही अच्छा* है कि मुझे आप जैसे गुरु तथा आपने उल्लेख किया है वैसा सज्जनमंडल प्राप्त हुआ है, परन्तु मुझसे ही इस ज्ञान-आराधना के लिए पुरुषार्थ क्यों नहीं होता है ?

मैं दि. 20-11-1969 तक वहाँ पहुँच सकूं ऐसी सम्भावना नहीं है, तो क्षमा करें ।

इस पत्र के साथ सत्संग भवन का दूसरा प्लान है जो डो. विश्वनाथन के द्वारा तैयार किया गया है । डो. विश्वनाथन वही व्यक्ति हैं जो मेरे साथ आये थे । एक अन्य मित्र के पास भी प्लान बनवा रहा हूँ । तैयार होने पर आपको भेज दूंगा ।

भूमि समतल कर दी जाये तब आप जो तारीख सूचित करेंगे तब सत्संगभवन का काम आरम्भ करने के लिए अवश्य आऊँगा ।

अन्य सत्संगी सज्जनों को मेरे जय जिनेन्द्र । पूज्य माताजी को मेरे दण्डवत् प्रणाम, आश्रमवासियों को जय जिनेन्द्र । यहाँ श्री छोटुभाई और अन्य सभी आनन्द में हैं ।

लि. विनम्र

चन्दुभाई टोलिया के वन्दन

(3)

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम
दि. 9-12-1969

सद्‌गुणानुरागी भव्यात्मा श्री चन्दुभाई सपरिवार,

कृपालु की कृपा से आत्मा में आनन्द प्रवर्तमान है। शरीर में अर्श की कृपा प्रवर्तित है। माताजी को हार्ट में तकलीफ़ शुरु हुई थी, हाई प्रेशर भी था जिस कारण से डो. गोपीनाथ का उपचार चल रहा है।

आप सपरिवार तथा श्री छोटुभाई सपरिवार स्वस्थ एवं प्रसन्न होंगे। कल श्री प्रतापभाई का यहाँ से जो लेख भेजा था वह उन्हें मिल गया है उसके विषय में उनका पत्र है। व्यस्तता के कारण न तो वे ववाणिया जा सके, न समय पर पत्र लिख सके उसके विषय में क्षमायाचना की है।

वे पी.एच.डी. करना चाहते हैं उसके सम्बन्ध में सलाह माँग रहे हैं। इस विषय में अब लिखूंगा। आप तथा छोटुभाई उन्हें यहाँ खींच लेना चाहते हैं वह यद्यपि हितकर है, फिर भी उचित समय आने पर देख लेंगे। अभी तो उन्हें उस क्षेत्र में (विद्याभ्यास के क्षेत्र में) प्रगति करने दें। अन्तराय न करें। धर्म स्नेह में वृद्धि करें। ॐ शान्ति।

सहजानन्दघन के अगणित आशिष

(4)

बेंगलोर,
दि. 21-1-1970

पूज्य गुरुदेव,

प्रणाम स्वीकार करें। संयोगवशात् इस पूर्णिमा के दिन वहाँ नहीं आ सकूंगा, जिससे हर बार आपकी वाणी के श्रवण का जो महान लाभ मुझे प्राप्त होता था, वह इस बार नहीं होगा अत: दु:ख होता है, क्योंकि जब जब आपके पास आता हूँ तब तब यहाँ उद्‌भव होनेवाले अनेक प्रश्नों का समाधान सहज ही प्राप्त हो जाता है। भविष्य में नियमित रूप से अवश्य आऊँगा।

दूसरी चिन्ता काम की रहती है। जो जिम्मेदारी मेरी शक्ति की सीमा से बाहर होते हुए भी मैंने ली है उसका स्वीकार मैनें केवल इस विचार से किया है कि मैं तो केवल 'निमित्त' हूँ। काम तो परम कृपाळुदेव की कृपा से उत्तम होगा ही और इसके साथ साथ उस बहाने मुझे आपकी वाणी का अमूल्य लाभ भी प्राप्त होगा।

वहाँ सब को जय जिनेन्द्र। पू. माताजी को मेरे दण्डवत् प्रणाम। अन्य आश्रमवासियों को यथायोग्य।

चन्दुभाई टोलिया के
जयजिनेन्द्र सह दण्डवत् प्रणाम

(5)

ट्रीची (यात्रा में)

दिनांक 24-2-1970

सद्गुणानुरागी सेवाभावी मुमुक्षु श्री चन्दुभाई टोलिया सपरिवार तथा श्री छोटुभाई सपरिवार

हम मद्रास का कार्यक्रम सम्पन्न कर के गत शनिवार की सुबह वहाँ से प्रयाण कर के शाम के बाद यहाँ सकुशल पहुँच गये हैं । रास्ते में पुनुर पहाड़ी पर कुन्दकुन्दाचार्य के चरणों के दर्शन किये । तींडीवनम् से बारह मील की दूरी पर एक गाँव में जैन मंदिर तथा जैन मठ के दर्शन भी हुए । तींडीवनम् में आहार पानी लिए ।

मद्रास में छोटुभाई के साले तथा यहाँ उनके सुपुत्र आये थे । उन्होंने उनका सन्देश हमें दिया था । रविवार को लिंगीपट्टी का मकान देखा । आसपास में रहनेवाले लोग उस मकान के आसपास की तीनों दिशाओं में मलत्याग करने जाते हैं, जिस कारण से हवा दूषित प्रतीत हुई । मकान भी अत्यन्त जीर्ण दशा में था । आधे रास्ते में अकस्मात् के कारण मृत दो मनुष्यों के शव पर दृष्टि पड़ी । इसे देखकर माताजी तो घबरा गई । इन सब कारणों से वह स्थान कैन्सल कर दिया है । अब श्रीरंगम् की श्रेणी में यहाँ से तेरह मील की दूरी पर कावेरी तथा एक अन्य नदी के संगम पर स्थित एक टापू पर एक डाक बंगला है उसका एक खण्ड तथा बाथरूम मिल सकते हैं । वहाँ गुरुवार को जायेंगे । मैं एक छोटे-से तंबु में अथवा कुटिर में वृक्षों की घटा के नीचे रहूँगा । माताजी अपनी मातृमंडली के साथ कमरे में रहेंगी । अधिक लोग वहाँ रह सकें ऐसी सुविधा नहीं है । अतः वहाँ आने की इच्छा रखने वाले लोगों को सन्तुष्ट करने की गुंजाईश नहीं है । अगर वहाँ का पानी अनुकूल आ गया तो पूरा महीना वहाँ रहेंगें । व्याख्यान बंद रखने का तय किया गया है । केवल स्वास्थ्य सुधार तथा साहित्य संशोधन का लक्ष मुख्य रूप से रखना है ।

रविवार को खोड़ीदासभाई तथा उनके भतीजे कुम्भकोणम् से आमन्त्रण देने आये थे । अन्य स्थानों से भी आमन्त्रण आते हैं । स्वास्थ्य कुछ ठीक होने के बाद ही उस विषय में उचित विचार करेंगें । वहाँ भी डेढ़ मील की दूरी पर नदी के तट पर हरि ॐ आश्रम है । लेकिन वहाँ के मच्छर खोड़ीदासभाई के लिए उपसर्गकर्ता सिद्ध हुए हैं, जिस कारण से माताजी ने उसे नापसंद किया है ।

कल प्रतापभाई का पत्र हम्पी जा कर यहाँ आया है । श्री चन्दुभाई के मंगवाये हुए जिनालय के नकशे का काम भी व्यस्ततावश वे कर सके नहीं हैं, ऐसा लिखा है । विद्यापीठ छोड़कर बेंगलोर में स्थिर होने के विषय में भी उन्होंने लिखा है । श्री चन्दुभाई की बेंगलोर में उपस्थिति निश्चित नहीं होती जिस कारण से यह पत्र दोनों मित्रों के नाम संयुक्त रूप से लिखा है और लिखता रहूंगा । ॐ शांतिः ।

सहजानन्दघन के अगणित आशीर्वाद

(6)

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम
दिनांक 06-06-1970

सद्गुणानुरागी भव्यात्मा श्री चन्दुभाई एवं श्री प्रतापभाई,

आपका भेजा हुआ सुपरवाईज़र यहाँ आ गया है और उसके साथे भेजे हुए पत्र प्राप्त हुए। उसके पहलेवाले पत्र भी प्राप्त हुए थे ।

आपकी सूचनानुसार श्री गिरि की बनाई हुई बील की सभी फाइलें सुपरवाईज़र को सुखलाल ने सौंप दी हैं । श्री घेवरचन्दजी शायद कल यहाँ आयेंगे तो उनका पत्र उनके हाथों में दे दिया जायेगा ।

आप सकारण यहाँ आ नहीं सके हैं वह क्षम्य है । अवकाश मिलने पर आयें । इस विषय में आपसे कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है ।

इस देह में एक सप्ताह पूर्व शनि और रविवार को पाँच-सात बार वमन हुआ था । उसके पहले पाँच दिन एक बार भी वमन नहीं हुआ था और इसके पश्चात् आज रात्रि तक शांति है तथा अब शांति ही रहेगी ऐसा विश्वास है ।

नित्य सुबह-शाम आधा-आधा घण्टा टब-बाथ लेता हूँ । पेट पर एक बार बर्फ़ रखता हूँ । इसके अतिरिक्त कोई औषध लेना नहीं है । केवल मोरपींछ की भस्म लेता हूँ । भोजन में बिना घी की सूखी चपाती तथा उबले हुए करेले की सब्ज़ी लेता हूँ । स्वल्प मात्रा में दूध लेता हूँ । यह खुराक अनुकूल आ गया है । आज बिना लकड़ी के सहारे दो फलाँग घूम सका हूँ । प्रवचन आदि बन्द हैं । सब के आग्रह के कारण विश्राम कर रहा हूँ । शक्ति मन्द गति से वर्धमान हो रही है । दो सप्ताह में अच्छी स्फूर्ति आ जायेगी ऐसा लगता है, इसलिए चिन्ता न करें ।

माताजी का स्वास्थ्य नरमगरम रहता है फिर भी इस देह की सेवा में वे तत्पर रहतीं हैं । इसके अतिरिक्त दो सप्ताह से आये हुए इस देह के निकट के संबंधी भाई सात व्यक्ति यहाँ ठहरे हैं । उनमें से कुछ लोग अगले सोमवार के दिन जायेंगें और कुछ यहाँ रूकेंगे । यहाँ के शेष समाचार श्री हीरजीभाई से जान लें । श्री छोटुभाई सपरिवार आदि संतसंगी जनों को मेरे तथा माताजी के हार्दिक आशीर्वाद ज्ञापित करें तथा आप सर्व भी स्वीकार करें । ॐ शांतिः ।

श्री प्रतापभाई,

आप की पराभक्ति की भूमिका दिन प्रतिदिन वृद्धिगत हो और वह आत्मसाक्षात्कार के रूप में परिणत हो यही अंतर के आशीर्वाद । धर्मस्नेह में अभिवृद्धि हो । ॐ शान्तिः ।

सहजानन्दघन के हार्दिक आशीर्वाद

पुनश्चः- आज कई दिनों के बाद पत्रलेखन का प्रथम प्रयास है, अतः व्यवस्थित रूप में लिखा नहीं गया है तो क्षम्य गिनें । – स.

(7)

(गुरुदेव निश्रा से)

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी

दि. 17-6-1970

आदरणीय मामा श्री चन्दुभाई तथा श्री प्रतापभाई,

सादर जयगुरुदेव ।

श्री प्रतापभाई का दि. 17-6-1970 का पत्र मिला । पढ़ कर समाचार जाने । श्री चन्दुभाई की परिस्थिति जान कर संवेदना जाग्रत हुई अतः जिस प्रकार शारीरिक एवं मानसिक संतुलन बना रहे उस प्रकार से परिश्रम करने की बात उनसे करें । यहाँ आश्रम का काम तो चलता ही रहेगा, अतः इस विषय में निश्चिन्त रहें ऐसा प.पू. गुरुदेव तथा प.पू. माताजी ने लिखाया है । प.पू. गुरुदेव को भगंदर की तकलीफ़ शुरु हुई है जिसके कारण असह्य दर्द रहता है । बैठ भी नहीं सकते हैं । कुनूर में अर्श के लिए की गई शस्त्रक्रिया के समय भगंदर के लिए भी शस्त्रक्रिया की गई थी, परन्तु उसका थोड़ा भाग अन्दर बाकी रह जाने के कारण फिर से वह तकलीफ़ शुरु हुई है । प.पू. माताजी प.पू. गुरुदेव को बम्बई ले जाने की तैयारी कर रही हैं । वहाँ बकरी मलमपट्टी वाले वोराजी नामक एक वैद्य हैं जो ऐसे रोगों का उपचार करते हैं । प.पू. माताजी ने भी Bone T B के लिए उनके पास उपचार करा कर अनुभव किया है । इसलिए 28 जुन गुरुवार को यहाँ से हम रवाना होंगे । रात बेल्लारी रह कर शुक्रवार को मद्रास एक्सप्रेस से गुंटकल से रवाना होंगे ।

उलटियाँ इत्यादि दो सप्ताह से पूर्ण रूप से शान्त हैं । कमज़ोरी है जो धीरे धीरे दूर हो जायेगी । आपका साहित्य लेखन और साथ साथ मानसिक परिणामधारा परिशुद्ध बने ऐसे आशीर्वचन प.पू. गुरुदेव ने लिखाये हैं ।

वहाँ सब को प.पू. गुरुदेव एवं प.पू. माताजी के आशीर्वाद । परिवार में सभी याद करनेवाले *सत्संगी भाई बहनों को आशीर्वाद ज्ञापित* करें तथा आप भी स्वीकार करें एवं मेरी ओर से सब को जय गुरुदेव कहें ।

यहाँ आने के बाद *आठेक दिन तक* प.पू. गुरुदेव पर मिट्टी के प्रयोग किये थे जो अब बन्द कर दिये हैं ।

भवदीय,

आप की भानजी

चन्दना

(पू. माताजी की स्वनामधन्या विदुषी सुपुत्री)

B प्रतापकुमार टोलिया का पत्रसंवाद

(स्वयंपत्र : प्रथम हम्पी यात्रा के बाद का प्रथम भावप्रेषण)

(8)

बेंगलोर

दिनांक : 29-10-1969

पूज्य गुरुदेव ।

अनेकशः प्रणाम स्वीकार करें ।

वहां से लौटने पर आपके साथ का अल्प समय भी, आप की प्रेरणा से परम कृपाळुदेव की सतत स्मृति बनाए रहा है और वृत्ति आत्मस्थ बनी रही है । बार बार कृपाळु देव के वचनों की ध्वनि कानों में गुंजती-सी सुनाई दे रही है और उनका परम शांतरसपूर्ण मुखारविंद नेत्रों के सामने गड़ा-सा रहता है । "उपास्यपदे उपादेयता" का एकांत में अध्ययन-अनुशीलन करते हुए परम आनंद एवं आल्हाद का अनुभव किया, एक बार तो उसके निमित्त से अपनी अवस्था का निरीक्षण करते करते रो पड़ा, आंसुओं को पर्याप्त समय तक रोक नहीं पाया । उसी तत्व सागर में डूबा रहूं और आत्मस्वरूप की जागृत स्मृति बनाए रखकर कृपाळुदेव के चरणों में स्थित रहूं-यह भावना, यह इच्छा सतत रही है । इसे दृढ़ीभूत करने की दृष्टि से एवं एकांतवास में कालयापन की द्दष्टि से वहाँ की गुफा में रहने और आपके सान्निध्य का अनुग्रह पाने वहाँ पुनः पुनः आने का आकर्षण, लगाव बढ़ रहा है । यदि सब मेरे बस में होता तो अभी से महीने भर के लिए वहाँ रुक जाता, परन्तु ऐसा अपूर्व अवसर कब आएगा यह ज्ञात नहीं और इतने विशेष समय के लिए तो जब आ पाऊँ तब की बात तो दूर रही, परन्तु अनुकूलता रही और आपके अनुग्रह ने बल प्रदान किया तो दीवाली के दो तीन तो आपके समीप्य में आ जाना चाहता हूं । वैसे दीपावली का दिन मेरे स्थूल जीवन का निमित्त है, जन्मदिन है । यह यदि वहाँ के वातावरण में बीता पाया, तो अपने आप को कृतकृत्य समझ सकूंगा । फिर मुझे 11-11-1969 या 12-11-1969 भाई दूज के दिन तो यहां से अहमदाबाद जाने के लिए लौटना है । आ सकुं तो आपके साथ के संग को छोड़कर शेष समय एकांत और संपूर्ण मौन में रहना है । जैसी आपकी आज्ञा हो, वैसा हो, यह अब प्रार्थना है । कृपाळुदेव के, आपके, एकांतवास के निमित्तो में बने रहने की सतत अभीप्सा के साथ,

विनयावनत प्रताप के भाववन्दन ।

(9)

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी

दिनांक : 19-11-1969

मुमुक्षुबंधु श्री प्रतापभाई,

बेंगलोर से आपका लेख श्री चंदुभाई द्वारा डाक से प्राप्त हुआ । यहाँ नये जिज्ञासुओं का आवागमन और उनके साथ धर्मचर्चा में समय व्यतीत होता है अतः लेख ऊपर ऊपर से देख लिया है और उसमें कुछ संशोधन किया है । बाकी इस देहधारी को उपमा देने के विषय में आपने कुछ ज्यादा अतिशयोक्ति की है । कतिपय प्रसंगवर्णनों में जो घटनाएँ अन्य व्यक्तियों के मुख से सुन कर आपने प्रस्तुत की हैं, वे यदि यहाँ पर इस देहधारी को पूछ कर उसके मुख से सुनी होतीं तो वे सब प्रसंग भिन्न रूप से ही लिखे गये होते । आपके वैयक्तिक अनुभव पढ़ कर प्रसन्नता हुई । इस सम्पूर्ण लेख के सम्बन्ध में आप स्वतंत्र हैं और यह देहधारी किसी की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने की वृत्ति से प्रायः असंग रहने का आदी है । अतः इस लेख पर स्वामित्व क्यों और कैसे रख सकता है ?

आपकी काव्यमय शैली देख कर कृपाळु देव के वचनामृत का भाषान्तर करने के लिए उसका लाभ उठाने का लोभ किसी प्रकार से इस आत्मा में जाग्रत हुआ है सही, लेकिन उसकी पूर्ति के सम्बन्ध में अवसर आने पर सोचेंगे ।

बाकी उक्त लेख की विशेष समीक्षा की नहीं है । आपको स्वहित के साथ साथ परहित में यह जिस प्रकार सहायक सिद्ध हो उस प्रकार से आप उपयोग करें यही आशीर्वाद है ।

ववाणिया तीर्थ में पू.श्री जवलबा तथा उनकी निश्रा में एकत्रित मुमुक्षु सभी भाई बहनों को मेरा हार्दिक जय सद्‌गुरुवन्दन । यह लेख प्राप्त होने पर पहुँच पत्र अवश्य भेजें ।

यहाँ से श्री माताजी ने आपको अनेकशः आशीर्वाद प्रेषित किये हैं । सर्व मुमुक्षु भाई बहनों ने हार्दिक जय सद्‌गुरु वंदन कहे हैं उसका स्वीकार करें । खेंगारबापा ने आपको विशेष रूप से याद किया है ।

धर्मस्नेह में वृद्धि हो ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

सहजानंदघन के अनेकानेक

आशीर्वाद

(हमारी हम्पी यात्रा के प्रथम दर्शन के पश्चात् बेंगलोर होकर अहमदाबाद लौटने पर लिखा गया पत्रः "दक्षिणापथ की साधनायात्रा" पुस्तक के अंतिम मुखपृष्ठ पर मुद्रित)

(10)

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी

दिनांक : 20-11-1969

सद्गुणानुरागी सत्संगयोग्य सुविचारक भक्तहृदयी श्री प्रतापभाई, बेंगलोर

कल आपकी अन्तरंग स्वरूपस्थ रहने की अभीप्सा को व्यक्त करनेवाला आपका पत्र मिला । पढ़कर यह आत्मा प्रमुदित हुई । उक्त अभीप्सा कार्यान्वित हो ऐसे हार्दिक आशीर्वाद।

आपके हृदयमन्दिर में यदि परम कृपाळुदेव की प्रशमरसनिमग्न अमृतमयी मुद्रा प्रगट हुई हो तो उसे वहीं स्थिर करना उचित है । स्वयं के ही चैतन्य का तथा प्रकार से परिणमन यही साकार उपासना की श्रेणि का साध्यबिन्दु है और वही सत्यसुधा कहलाती है । हृदयमंदिर से सहस्त्रदल कमल में उसकी प्रतिष्ठा करके उसी में लक्ष्यवेधी बाण की भाँति चित्त वृत्ति प्रवाह का अनुसन्धान बनाये रखना यही पराभक्ति अथवा प्रेमलक्षणा भक्ति कहलाती है । उपरोक्त अनुसन्धान को ही शरण कहते हैं । शर अर्थात् तीर । शरणबल से स्मरणबल चिरस्थायी बनता है । कार्यकारणन्याय से शरण और स्मरण की अखण्डता सिद्ध होने पर आत्म प्रदेश में सर्वांग चैतन्य चांदनी फैल जाने से सर्वांग आत्मदर्शन और देहदर्शन भिन्न भिन्न रूप में दृष्टिगत होता है और आत्मा में परमात्मा की छबी विलीन हो जाती है । आत्मा-परमात्मा की यह अभेद दशा वही पराभक्ति की अन्तिम सीमा है । वही वास्तविक उपादान सापेक्ष सम्यग्दर्शन का स्वरूप है :-

"वह सत्यसुधा दरसावहिंगे,
चतुरांगल व्है दृग से मिलहै
रसदेव निरंजन को पीवहीं ।
गही जोग जुगो-जुग सों जीव हीं ।"

इस काव्य का तात्पर्यार्थ यही है । आँख और सहस्त्रदल कमल के बीच चार अंगुल का अंतर है । उस कमल की कर्णिका में चैतन्य की साकार मुद्रा वही सत्यसुधा है, यही स्वयं का उपादान है । जिसकी यह आकृति निर्मित हुई है वह बाह्य तत्त्व निमित्त कारण मात्र है । जिनकी आत्मा में जितने अंश में आत्मवैभव विकसित हुआ हो उतने अंश में साधकीय उपादान की कारणदशा विकसित होती है तथाँ कार्यान्वित होती है । अत एव जिनका निमित्त कारण सर्वथा विशुद्ध आत्मवैभवसम्पन्न हो उनका ही अवलम्बन लेना उचित है, उनमें ही परमात्म बुद्धि होनी चाहिए यह रहस्यार्थ है ।

ऐसे भक्तात्मा का चिन्तन एवं आचरण विशुद्ध हो सकता है अत एव भक्ति, ज्ञान तथा योगसाधना का त्रिवेणी संगम साधा जाता है अतः ऐसे साधक के लिए भक्तिज्ञानशून्य केवल योगसाधना करना आवश्यक नहीं है । दृष्टि, विचार तथा आचारशुद्धि का नाम ही भक्ति, ज्ञान तथा योग है और वही अभेद परिणमन से 'सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः' है । पराभक्ति के बिना ज्ञान और आचरण को विशुद्ध रखना दुर्लभ है, आ.र. इसी बाबत का द्रष्टान्त प्रस्तुत कर रहे हैं न ? अतः आप धन्य हैं, क्योंकि निज चैतन्य दर्पण में परम कृपाळु की छवि को आप अंकित कर सके हैं ।

आप दीपावली यहाँ मनाना चाहते हैं, आपकी वह भावना सफल हो । खुशी से पधारें। यहाँ, त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा दीपावली तीनों दिन अहोरात्र (दिन-रात) अखण्ड मंत्रधून रहेगी। प्रवचन बन्द रहेंगे । इस धून में धूनी बना जा सके तो धन्य निहाल हो जायेंगे । अस्तु... ।

श्री चंदुभाई सपरिवार श्री छोटुभाई सपरिवार तथा उनकी मित्रमंडली को हार्दिक आशीर्वाद। माताजी ने भी आप सब को हार्दिक आशीर्वाद प्रेषित किये हैं । अन्य आश्रमवासियों ने भी धर्मस्नेह व्यक्त किया है ।

ॐ आनन्द आनन्द आनन्द ।

सहजानन्द के हार्दिक आशीर्वाद

(11)

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी

दिनांक : 30-11-1969

साक्षरवर्य मुमुक्षु भाई प्रतापभाई,

आपका लेख रजिस्टर्ड पोस्ट द्वारा पन्द्रह दिन पहले भेजा है लेकिन अभी तक उसकी रसीद हमें नहीं है । अतः शीघ्र उत्तर दें ।

कार्तिक पूर्णिमा पर यहाँ पाँचसौ भक्त एकत्रित हुए थे । पूरे दिन के सभी कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुए और रात्रि के समय भक्तिरस की धारा आह्लादकारक बनी रही ।

श्री चन्दुभाई को इस आश्रम ने प्रमुख पद पर आरुढ़ किया है तथा श्री छोटुभाई को भी ट्रस्टी मंडल में सम्मिलित किया है ।

यहाँ से माताजी ने आपको हार्दिक आशीर्वाद तथा शेष भाई बहनों ने सादर धर्मस्नेह ज्ञापित किया है । श्री ववाणिया तीर्थ की आपकी यात्रा सफल रही होगी । वहाँ का वर्णन लिखें ।

धर्मस्नेह में अभिवृद्धि करें.....

प्रतिपल आत्मशुद्धि तथा आत्मसिद्धि में उन्नति हो यही हार्दिक आशीर्वाद । ॐ शान्तिः।

सहजानन्दघन

पुनश्च :-

रजि. पत्र C/o. गुजरात विद्यापीठ के पते पर भेजा था ।

(12)

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी

दिनांक : 14-12-1969

श्रीमद् राजचन्द्रजी तथा आनन्दघनजी विषयक संशोधन

सद्गुणानुरागी सत्यसुधारस पिपासु सत्संग योग्य मुमुक्षु भाई प्रताप,

आपका जिज्ञासा पूर्ण पत्र मिला । पी एच डी के लिए आपने जो विषय पसन्द किया है वह सचमुच अभिलषनीय है, अभिनन्दनीय है, क्योंकि उसके द्वारा परोपकार के साथ साथ स्व-उपकार भी अवश्यंभावी है । तद्विषयक मेरी सलाह इस प्रकार है:-

इस काल में इस समय इस क्षेत्र में जनसंख्या (आबादी) में वृद्धि के कारण मनुष्यों के लिए पेट भरना जिस प्रकार अत्यंत कठिन हो रहा है उसी प्रकार दिल और दिमाग की आवश्यकता की पूर्ति करना भी कष्टसाध्य हो गया है । पेट की भूख की पूर्ति के लिए जिस प्रकार अन्न उत्पादन तथा उत्पादक क्षेत्र के विस्तार की आवश्यकता है, उसी प्रकार दिल-दिमाग की भूख मिटाने हेतु आवश्यक मन-उत्पादन अर्थात् स्वाधीन मन तथा उसके अनुसन्धान हेतु उत्पादक क्षेत्र का विस्तार अर्थात् तथा प्रकार के साधनालय अनिवार्य हैं ।

आज अन्न और मन की समस्यापूर्ति हेतु हरित क्रान्ति की ध्वनि सुनाई देती है अवश्य, किन्तु दिखाई देता है सर्वत्र उभय प्रकार का अभाव । अन्नाभावजन्य भूखमरी सब को सर्वत्र खटकती हो यह स्वाभाविक है परन्तु आवश्यक मनोभावजन्य भूखमरी भी अब जनमानस को खटकने लगी है यह आनन्द का विषय है, क्योंकि इससे उस दिशा में कहीं कहीं विकास भी हुआ है ।

विश्व में भौतिक भूखमरी को शान्त करने हेतु भौतिक वैज्ञानिकों के द्वारा सार्वत्रिक प्रयत्न हो रहे हैं और उस दिशा में कहीं कहीं विकास भी हुआ है ।

इस धरती की बंजर भूमि तथा समुद्र की अतल गहराई में एतद् अनुशीलन (Research) के साथ साथ मानव ने चन्द्रमा की धरती पर भी कदम रख दिया है लेकिन आध्यात्मिक श्रद्धा-पीपासा को शान्त करने हेतु जिन जिन अनेक चैतन्यवैज्ञानिकों ने सफल अन्वेषण कर धार्मिक संस्थाओं की स्थापना के द्वारा उस दिशा में प्रगति करके जगत के अन्तर और मन को जो राहत दी थी, वैसी राहत आधुनिक जगत को प्राप्त नहीं हो रही है यह सचमुच दुःखद हकीकत है, क्योंकि उन धर्मसंस्थाओं के अग्रणीजन चैतन्यविज्ञान का संशोधन छोड़कर अपनी समग्र शक्ति सम्प्रदायवाद में निरर्थक व्यय कर रहे हैं । धर्म के नाम पर अपने अपने गुट बांधकर-विस्तृत कर के एक-दूसरे के अनुयायियों को अपने-अपने गुटों के भेड़ बनाने मे जुड़े हुए हैं । क्योंकि क्वचित् कोई संशोधक स्वतंत्र रूप से चैतन्य विज्ञान का विकास साधने लगे तो उसे नास्तिक का इल्काब देकर अपने अपने गुटों के भेड़ों के दिल में उसकी ओर धिक्कार की भावना पैदा करते हैं यह सखेद आश्चर्य है । अतीतकालीन सर्वज्ञ किंवा आत्मज्ञ-चैतन्य विज्ञानिकों की श्रृंखलाबद्ध श्रेणी खंडित होने के पश्चात् अब तक ऐसा होता आया है और हो रहा है यह निर्विवाद सत्य है ।

निकट भूतकाल में कतिपय स्वतंत्र वैज्ञानिक हो गये, उनमें सन्त कबीर, सन्त आनन्दघन तथा सन्त श्रीमद् राजचन्द्र अपने अपने समय के अद्वितीय चैतन्य वैज्ञानिक मान्य करने योग्य हैं। इन तीनों सत्पुरुषों को कोई सम्प्रदायवाद इष्ट न था अतः उन्होंने तो किसी धर्म के सम्प्रदाय नहीं बनाये थे। केवल धर्म का मर्म प्राप्त कर के धर्म संशोधन के द्वारा धर्मसमन्वय साधा था और उसके प्रति परिचित व्यक्तियों को इशारा किया था। इनमें से सन्त आनन्दघनजी अणगार होने के कारण निर्जन वनों में, गिरि कन्दराओं में तथा स्मशानों में असंगदशा में विचरण करते रहे और वि.सं. 1730 में इस दुनिया से सदा के लिए अदृश्य हो गये। इस कारण से उनके पीछे उनका कोई अनुयायी वर्ग तैयार न हुआ। दिल और दिमाग को शान्तिदायक उनकी अनुभववाणी भी अल्प मात्रा में संशोधकों को प्राप्त हुई। परन्तु विषय गाम्भीर्य सा कठिन शब्द प्रयोग तथा अशुद्ध आलेख के कारण उस टकसाली (अत्यन्त प्रभावोत्पादक) वाणी पर जैसा होना चाहिए ऐसा संशोधन नहीं हो सका हैं, जब कि सन्त कबीर तथा सन्त श्रीमद् राजचन्द्रजी के सम्बंध में स्थिति भिन्न है। वे आगार धर्म के माध्यम से अणगार धर्म का विकास करके चैतन्य विज्ञान को विकसित करते रहे - *संग में रह कर असंग की आराधना करते रहे, फलतः* उनकी अनुभववाणी परिचित वर्ग में स्वीकृत हुई, प्रसरित होती रही और इसके परिणाम स्वरूप उनका अनुयायी वर्ग भी तैयार हुआ तथा उनकी अनुभववाणी पर संशोधन भी हुए और आज भी हो रहे हैं।

सर्वज्ञ भगवान श्री महावीर की केवलज्ञान श्रेणी जिस प्रकार तीसरी पाट पर लय हो गई, उसी प्रकार आत्मज्ञ सन्तों की आत्मज्ञान श्रेणी तीसरी पाट पर लय हो जाय तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं और इसी कारण से उनके बाद के साधकीय गच्छसमुदाय गच्छवाद-सम्प्रदायवाद में परिवर्तित हो जाय तो उसमें भी कोई आश्चर्य नहीं। इसी न्याय से सन्त कबीर तथा सन्त श्रीमद् राजचन्द्र के नाम से सम्प्रदायवाद आरम्भ हो जाय और धर्म के नाम पर गुट-बन्दी (गच्छ, वाडाबन्धी) शुरु हो गई हो तो उसमे कोई भी सुविचारक सच्चा चिन्तक उन महापुरुषों का *दोष मान ही नहीं सकता।*

सन्त कबीर और सन्त श्रीमद् राजचन्द्र के साहित्य को तो वर्तमान समय में उपजाऊ-ऊर्वरा भूमि समान मान सकते हैं जब कि सन्त आनन्दघनजी रचित साहित्य मेरी दृष्टि में तो गोचरभूमिवत् प्रतीत होता है क्योंकि उनके साहित्य क्षेत्र में आज पर्यंत जितना भी काम हुआ है वह अपर्याप्त है। *श्री अगरचन्दजी नाहटा द्वारा प्राप्त आनन्दघन साहित्य की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ तथा आज तक मुद्रित तथा अनुवादित* साहित्य का अन्वेषण तथा अनुशीलन करने पर मेरे हृदय पर जो प्रभाव पड़ा है वह मैने ऊपर दर्शाया है। गोचर भूमि को उर्वरा बनाना यह आज की दुनिया के लिए महान पुण्यकार्य गिना जा सकता है - मानना चाहिए। यह कार्य कष्टसाध्य होने के कारण उस दिशा में कोई विरले ही दृष्टि डालें यह स्वाभाविक है। तथापि उन विरल व्यक्तियों की पंक्ति में सम्मिलित होना आप जैसे व्यक्ति के लिए कुछ कठिन नहीं है क्योंकि आपके पास तथा प्रकार का हृदय है, दिमाग है, कलम का कसब है तथा सरस्वती पुत्र सम पण्डित सुखलालजी की निश्रा है एवं हमारे समान लंगोटीवालों की भी मैत्री है.... तो फिर.... ?

इतना सब कुछ होने पर भी यदि उस दिशा में हिम्मत की कमी महसूस हो रही हो तो लग जाईये उर्वरा भूमि पर खेती करने..... ॐ

सन्त कबीर तथा सन्त श्रीमद् राजचन्द्रजी के साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन से स्व-पर उपकार तो अवश्यंभावी है ही। इसके अतिरिक्त सन्त कबीर की भाँति श्रीमद् का साहित्य गुर्जरसीमा को पार कर हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों में प्रवरित-प्रसारित हो महक उठे, यह इच्छनीय है। वैसे हिन्दी भाषा में उनका जितना होना चाहिए उतना प्रचार हुआ नहीं है। महात्मा गाँधीजी के उन अहिंसक गुरु को गाँधीजी की ही भाँति जगत के समक्ष प्रकाश में लाना चाहिए, जिससे शान्ति की खोज में जगत सच्चा मार्गदर्शन प्राप्त कर सके। लेकिन हम लोगों ने उनको भारत के एक कोने में ही छुपाकर रख दिया है यह हम लोगों की सामान्य करामात नहीं है क्योंकि मतपंथियों ने उस सूर्य को बादलों की घटा में इस प्रकार से छुपा के रख दिया है कि शायद ही कोई उसके दर्शन कर सके। ॐ

इस विषय में लिखना तो बहुत चाहता हूँ (और भी अनेक बातें मन में आती हैं) परन्तु यह शरीर अधिक बैठने नहीं देता है। करीब बीस दिन से अर्श के रूप में व्याधिदेव ने इस शरीर में आसन जमाया है। जलन तथा शूल के द्वारा उसने अग्नि परीक्षा आरम्भ की है, फिर भी परम कृपालु की कृपा से उस व्याधि का समाधिमय दशा में वेदन हो जाता है। इसी कारण से समय से पत्र का उत्तर न दे सका जिसके लिए क्षन्तव्य हूँ। सुज्ञेषु किं बहुना ?

महामना पण्डितजी को धर्मस्नेह ज्ञात करायें और आप भी स्वीकार करें। ॐ शान्ति.....।

सहजानन्द के हार्दिक आशीर्वाद

(13)

द्वारा - डो.पं. सुखलालजी
सरित् कुंज, आश्रम मार्ग
अहमदाबाद-9
16-02-1970 (प्रातः साड़े पाँच)

परम पूज्य गुरुदेव,

सविनय वन्दना स्वीकार करें। आप सुखशान्ति में विराजमान होंगे और अब आपकी शारीरिक व्याधि की प्रतिकूलताएँ कम हुई होंगी।

परम कृपालु देव की कृपा से मेरी और परिवार की आधि-व्याधि उपाधियों के बीच भी अल्प अंशों में समाधि की अवस्था प्रवर्तित रही और स्मरण, सजगता और साधना दृष्टि विशेष तीव्र रहे। अब समय की भी थोड़ी बाह्य अनुकूलता मिलने से कई दिनों के बाद आपको कुछ विस्तार से लिख रहा हूँ।

(1) सर्व प्रथम तो क्षमाप्रार्थना करुँगा कि आज तक पू. चन्दुभाई की सूचनानुसार सोमपुरा के पास से वहाँ के जिनालय का नकशा या सूचन प्राप्त कर के भेज सका नहीं हूँ, परन्तु यथासम्भव जल्दी ही यह भेजने का प्रयत्न कर रहा हूँ ।

(2) आपने गत पत्र में श्रीमद् राजचन्द्रजी तथा आनन्दघनजी जैसे परम ज्ञाता युगपुरुषों के विषय में मेरे संशोधन हेतु *आशीर्वाद एवं दिशासूचन* प्रदान किये उसके लिए अत्यन्त अनुग्रहित हूँ । तदनुसार प्रयत्नशील रह कर हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों जगत के लिए उन दोनों महापुरुषों के विषय में कुछ उपयोगी एवं उपादेय अभिव्यक्त करने की क्षमता मेरी लेखिनी को प्राप्त हो ऐसी प्रार्थना उन दोनों प्रेरणादाता और अनुग्रहकर्ता महापुरुषों के प्रति एवं आप गुरुजनों के प्रति सादर, विनम्रभाव से इस प्रातः काल के समय प्रस्तुत कर रहा हूँ ।

(3) हाँ, मेरा यह कार्य अब यहाँ विद्यापीठ में रहकर या पूज्य पण्डित सुखलालजी के सान्निध्य में या विद्याजीवी के जीवन या वातावरण में नहीं होगा, तथापि उसका कोई अफसोस नहीं है । अन्तःकरण की गहराई में यह प्रतीति मुझे हो रही है कि अन्य व्यवसाय में जुड़ने के बाद भी परम कृपाळु देव की कृपा तथा अन्तःकरण की अभीप्सा मेरे हाथों को, हृदय को तथा मस्तिष्क को उसके योग्य बनायेंगी, और विशेष में शायद आपके उस शान्त, नीरव, साधना की भूमि के एकान्त वातावरण में ही वह कार्य सम्भव होगा । अर्थात् परम कृपाळु देव की प्रेरणा से, पू. चन्दुभाई की मेरे प्रति प्रेम-वात्सल्य-पूर्ण भावना के कारण, प.पू. सुखलालजी की प्रत्यक्ष-अत्यन्त आग्रहपूर्ण एवं आदेशात्मक सूचना के कारण एवं हृदय की गहराई में हो रही प्रतीति के कारण, इसी वर्ष ग्रीष्मावकाश आरम्भ होते ही विद्यापीठ का यहाँ का काम छोड़कर, बेंगलोर आकर पू. चन्दुभाई के साथ उनके काम में जुड़ने का निर्णय लिया है । इस निर्णय के लिए आपके एवं पू. माताजी के आशीर्वाद की प्रबल भावना है, जिससे जो अन्य विकल्प एवं प्रलोभन दृष्टिगत हो रहे हैं उनको नकार के दृढ़तापूर्वक एवं स्थिरतापूर्वक वहाँ आकर पद्मासन लगाकर बैठ सकूं तथा साथ साथ मेरी उपस्थिति से चन्दुभाई के लिए बाधारूप न बन कर उनके कार्यों में सर्व प्रकार से सहायरूप बन सकूं । इन दोनों कार्यों के लिए आपके आशीर्वाद की प्रबल इच्छा है । क्योंकि मेरे हृदय में यह वेदना है कि एक तो मेरे भ्रमण एवं विविध साधना के काल में एकाग्रतापूर्वक एक स्थान में कहीं भी स्थिर नहीं हो सका हूँ, और मेरी आन्तरिक शक्तियों को पूर्ण रूप से कार्यान्वित नहीं कर सका हूँ। जिसके फलस्वरुप हृदय अत्यन्त व्यथित रहता है साधना तथा व्यवहार के बीच समन्वय स्थापित करने के प्रयत्न के कारण । (इस व्यथा की कथा कभी फिर कहूँगा) दूसरा कारण यह भी है कि पूज्य चन्दुभाई का मुझ पर ही नहीं, हमारे पूरे परिवार पर असीम उपकार है जिसका ऋण पूर्णरूप से तो चुकाना कभी भी सम्भव नहीं है, परन्तु मेरे और मेरी पत्नी के बेंगलोर आने से उन सब के जीवन में आर्थिक-भौतिक रूप के साथ साथ अध्यात्म क्षेत्र में कुछ उपयोगी बन सकूं, सब के बीच प्रेम, स्नेह और सौहार्द में वृद्धि कर सकूँ । (मेरी पत्नी भी ऐसा कर

सके) ऐसी शक्ति प्राप्त हो ऐसे आपसे और पू. माताजी से हार्दिक आशिष प्राप्त हो यही कामना है । गुरुजनों के आशिष ही हमारा सम्बल एवं बल है । इसके सिवा मेरे पास तो कोई बल है नहीं । आशा है, मेरे संकल्प को चरितार्थ करने के लिए आपके आशीर्वाद अवश्य प्राप्त होंगे । बेंगलोर स्थिर होने पर आपके सान्निध्य की सुविधा भी होगी यह भी बड़ा आकर्षण है, अतः आप मेरी ध्यान-भक्ति के द्वारा ज्ञान-दर्शन-चारित्र की साधना में एवं श्रीमद् राजचन्द्र तथा आनन्दघनजी विषयक मेरे उपरोक्त संशोधन आदि सब कार्यों में सहायरुप बनेंगे इसका मुझे विश्वास है । वैसे बेंगलोर में व्यवसाय की जिम्मेदारी पूर्ण जागृति के साथ फिर भी कृपाळुदेव की भाँति निर्मल निर्लेपभाव से निभानी है और उसके लिए भी आपके आशीर्वाद की अपेक्षा है ।

(4) पू. चन्दुभाई शायद पूर्णिमा के अवसर पर वहाँ आते रहते होंगे और आपका मार्गदर्शन उनको मिलता रहता होगा ।

(5) इस पूर्णिमा पर शारदाग्राम हो कर चोरवाड़ के सागरतट पर आयोजित विमलाताई के ध्यान शिबिर में जा रहा हूँ । प्रथम मेरी पू. मातुश्री के पास शारदाग्राम जाऊँगा । पूर्णिमा की रात को संकल्प से तथा भावदेह से मेरे संगीत एवं भक्ति के साथ दूर रह कर भी वहाँ की भक्ति में उपस्थित रहने का प्रयत्न करुँगा । मेरी भक्ति के आंदोलन अगर सच्चे एवं समर्थ हों तो आपके एवं माताजी के भक्ति तथा आशीर्वाद के आन्दोलन भी उनमें सम्मिलित हो जायें ऐसी प्रार्थना ।

(6) इस पत्र के साथ एक अन्य छोटा-सा पत्र है एक परम विदुषी, जिज्ञासु एवं साधनारत साध्वी श्री निर्मलाश्रीजी का । एम.ए. और साहित्यरत्न तक का उनका अभ्यास है और 'भारतीय दर्शन में अभाव भीमांसा' इस विषय पर पी.एच.डी के लिए निबंध भी उन्होंने लिखा है । जप और ध्यान की साधना में वे रत रहती हैं और सामाजिक कार्य की दृष्टि से युवतियों-कन्याओं के लिए वे ग्रीष्मकालिन शिबिर-संस्कार अध्ययन सत्र का आयोजन प्रति वर्ष करती हैं । इस वर्ष भी अहमदाबाद में उनका शिबिर होगा । सर्व प्रकार से उनकी यह प्रवृत्ति अनुमोदनीय है, सहायता करने योग्य है । आपकी तथा पू. माताजी की साधना के विषय में बात करने पर वे अत्यन्त आनन्दित हो गई थीं । ध्यान तथा षड्चक्रभेदन के विषय में उनका प्रश्न है उसका उत्तर देने की कृपा करें, आप चाहें तो उनके द्वारा दिये गये पते पर सीधा लिखें, या मेरे द्वारा भिजवायें ।

पुनः आपके आशीर्वाद की अपेक्षा के साथ इस प्रातः काल के समय अनेकानेक वन्दन के साथ रुकने की अनुमति लेता हूँ ।

प्रताप के भाववन्दन

(14)

दिनांक : 28-2-1970

प्रति

साध्वीश्री निर्मलाश्रीजी आदि अहमदाबाद.

मेरी साधना के विषय में आपने प्रश्न प्रेषित किया है कि षट्चक्रभेदन की रीति से साधना करते हैं या अन्य प्रकार से ? इस वैयक्तिक प्रश्न के स्वल्प उत्तर के सिवा अधिक लिखने का समय एवं वृत्ति नहीं है ।

इस देहधारी को आगारवास में बसते हुए मोहमयी नगरी भातबाज़ार स्थित गोदाम में बिना प्रयास के 19 वर्ष की आयु में समाधि स्थिति हो गई । उसमें विश्व का स्थूलरूपेण अवभासन हुआ । भरतक्षेत्र के साधकों की दयनीय दशा देखी । अपने पूर्वसंस्कार स्मृति में उभर आए। उसके पश्चात् बद्ध से मुक्त सारी आत्माओं को नीचे से ऊपर तक देखा ।

जो दर्शन पूर्वसंस्कारविहीनों को षट्चक्रभेदन द्वारा संभव होता है वह अनायास हुआ । उस से जाना जा सका कि पूर्व भवों में चक्रभेदन करके ही इस आत्मा का इस क्षेत्र में आना हुआ है । वर्तमान में तो स्वरूपानुसंधान ही उसका साधन है । अधिक क्या लिखूं ?

राजयोग पद्धति से अंतर्ज्योति के द्वारा और हठयोग पद्धति से प्राणायाम के द्वारा चक्रभेदन हो सकता है । जैन साधन प्रणाली राजयोग प्रधान है और गुरुगम के द्वारा इस काल में उससे बीज केवलज्ञानदशा प्राप्त की जा सकती है । आपकी तथा प्रकार की जिज्ञासा अनुमोदनीय है ।

अस्तु　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　आनंद आनंद आनंद, सहजानन्द

(प्रतापभाई के प्रति)

एवंच :- माताजी के देह में हार्ट विकनेस और हार्ट प्रेशर का उपक्रम हुआ था । उसमें अभी राहत है । उन्होंने हृदय की ऊर्मि से आपको अनगिनत आशीर्वाद विदित किए हैं । खेंगारबापा आपकी पृच्छा करते रहते हैं । अपने में मस्त हैं । आत्माराम को खानपान के विषय में, कुछ अधिक वैराग्य प्रवर्तित होता होगा ऐसा प्रतीत होता है ।

श्री चंदुभाई, श्री छोटुभाई इस पूर्णिमा पर शायद पधारें ऐसा अनुमान है । पत्र नहीं है।

शेष आश्रमवासी भी सितारवादन पुनः पुनः सुनने के लिए उत्सुक दिखाई देते हैं । परन्तु उसके वादक आप तो इन दिनों कैसे आ सकते हैं ? अस्तु । पत्रदर्शन की तो शीघ्र अपेक्षा रहेगी ही । सहजानंदघन के सहजात्म स्मरण सह हार्दिक आशीर्वाद ।

(15)

ट्रीचीनापल्ली

महा वदी 7 शनिवार वि.सं. 2027

(मार्च-1970)

साक्षरवर्य मुमुक्षुबंधु श्री प्रतापभाई

दि. 15-2-1970 दोपहर को हम्पी से प्रयाण कर के करीब 12-15 भाई-बहनों के साथ ट्रेइन द्वारा मद्रास पहुँचे । वहाँ छः दिन का कार्यक्रम सम्पन्न करके पुन्नुर तिंडीवनम् आदि का प्रवास करते हुए तिरुचिरापल्ली में प्रवेश हुआ । चार दिन शहर में ठहरने के बाद वहाँ से प्रयाण कर के सेलम रोड पर 19 मील दूर अपर डेम के किनारे कावेरी तथा दो नदियों के संगम पर स्थित द्वीप पर पी.डब्लू.डी. के बंगले पर गत गुरुवार के दिन प्रवेश किया । यह द्वीप विशालकाय वृक्षों से अलंकृत है, यहाँ का वातावरण शीतल है । यह भूमि ऋषिमुनियों के योग्य है । बंगले के तीन कक्ष में से एक कक्ष मिलने के कारण साथ आये हुए लोग एवं ट्रीची के भावुक उसमें रहते हैं तथा इस देहधारी को एक कुटिया मिल गई जिससे उसमें आसन जमाया है । यहाँ प्रायः एकाध मास स्थिरता करने की सम्भावना है । तत्पश्चात् आसपास के शहरों में भावुकों को सन्तोष प्रदान करने हेतु जाना पड़ेगा । तत्पश्चात् नीलगिरि का कार्यक्रम होगा । करीब तीन-चार मास प्रवासों में व्यतीत होंगे ऐसी धारणा है ।

इस देह पर अर्शव्याधिदेव की कृपा थी उसमें अब पर्याप्त न्यूनता है ऐसा लगता है । कुछ अंशों में पेट की गड़बड़ है जो योगासन के द्वारा शान्त हो जायेगी ।

माताजी के स्वास्थ्य में गड़बड़ थी उसमें कुछ सुधार हो रहा है । हम्पी में श्री चन्दुभाई की निश्रा में निर्माण कार्य जारी है मन्दिर के प्लान आदि तैयार करने की सूचना दी है । वे प्रति मास एक बार मुलाकात लेते रहते हैं ।

आप की भावना विद्यापीठ छोड़कर बेंगलोर में बड़े भाई की सहायता करते हुए साहित्य सेवा में विकास साधने की है यह हितरुप है । उस प्रकार की सभी भावनाएँ सफल हों ऐसे इस देहधारी एवं माताजी के हार्दिक आशीर्वाद हैं । आपकी शक्तियाँ भक्तिरस में सराबोर होकर साहित्य सेवा में तन्मय हों ।

परिवार में सब को हार्दिक आशीर्वाद । धर्मस्नेह में अभिवृद्धि हो ।

ॐ शान्ति

सहजानन्दघन

सहजात्मस्मरण हार्दिक आशीर्वाद

(16)

C/o. डो. पं. सुखलालजी
सरित् कुंज, आश्रम मार्ग
अहमदाबाद-9
16-3-1970, सोमवार

पूज्यपाद स्वामीश्री सहजानन्दघनजी,

सविनय वन्दना ।

आपका महा वद 8 का पत्र प्राप्त होने पर बहुत आनन्द हुआ था । आपका स्वास्थ्य *ठीक नहीं है ऐसे समाचार* चन्दुभाई ने भी लिखे थे । अब आपका स्वास्थ्य कैसा है ? शायद वहाँ के प्राकृतिक *वातावरण में सहज रूप से ही स्वास्थ्य लाभ हो जाय स्वभाविक है ।* वहाँ से आप अन्यत्र पधारें तो भी पन्द्रह दिन में एकाध संक्षिप्त पत्र तो लिखने या लिखाने का अनुग्रह करें ।

आपके आशीर्वाद के लिए सचमुच अत्यन्त अनुग्रहित हूँ । धन्य हुआ हूँ । यह कोई अगम्य संकेत ही है कि उस तरफ आने का संकल्प होते ही एक अन्य उपकारक कार्य भी साथ साथ करने के लिए निमंत्रण आया है और वह कार्य है कृपाळुदेव के वचनों का "Selected Works of Shrimad Rajchandra" के रूप में, प्रकाशन करने का कार्य । सुश्री विमलाताई (जिन्हें आप इडर में मिले थे) के साथ ध्यान शिबिर में चोरवाड़ गया था वहाँ उन्होंने मुझमें कृपाळुदेव के जीवन दर्शन के प्रति आया हुआ रुपांतरण देखकर सानंद यह महाकार्य मुझे सौंपने का सोचा है ।

कुछ मास पहले वे अमेरिका में सान फ्रांसिस्को में थीं तब वहाँ कृपाळुदेव के एक भक्त (श्री भूलाभाई पटेल) उन्हें अपने घर ले गये थे और श्री आत्मसिद्धि की पूजा भी करवाई थी और साथ साथ उन्होंने कृपाळुदेव के वचनों का अंग्रेजी में सुन्दर अनुवाद प्रकाशित करवाने हेतु पचास हजार रुपये खर्च करने की भावना प्रदर्शित की थी । इसके अतिरिक्त श्रीमद् राजचन्द्र शताब्दी मण्डल के प्रमुख श्री त्रिकमलाल महासुखराम-जिनका हाल ही में यहाँ देहान्त हुआ-ने भी ऐसी इच्छा प्रकट की थी । वे भी सुश्री विमलाताई को यह कार्य सौंप कर गये हैं । विमलाताई स्वयं यहाँ के एक-दो अन्य विद्वानों को साथ में लेकर यह मुझे सौंपना चाहती हैं। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए अधिक धन की आवश्यकता पड़ सकती है, क्योंकि पाश्चात्य जगत में अत्यन्त सुन्दर स्वरूप में यह साहित्य पहुँचे - मुद्रण सुन्दर हो इत्यादि हेतु एवं सहायता के लिए अन्य लोगों को रखना पड़े तो उनके लिए भी खर्च करना पड़ेगा ।

इस कार्य में दो प्रकार से आपकी सहायता मिल सकती है ?

(1) कोई धनिक भक्त इस कार्य में आवश्यकता पड़े तो थोड़ी अर्थसहायता कर सकते हैं ?

(2) बेंगलोर में रह कर मुख्य रूप से मुझे (और माउन्ट आबु, अहमदाबाद या विदेश में जहाँ भी हों वहाँ से डाक द्वारा गौण रूप से सुश्री विमलाताई को अंग्रेजी तथा तात्त्विक निरुपण अंग्रेजी भाषा में सही रूप से हुआ है यह देखने के लिए) यह कार्य करना है अतः जहाँ भी आवश्यकता हो वहाँ कृपाळुदेव के अर्थ एवं उसके रहस्यों को समझने हेतु आपकी ज्ञानशक्ति का लाभ हमें मिल सकता है ?

अगर अपकी सहायता मिलेगी तो मैं समझूंगा कि मैं आपकी तथा कृपाळुदेव की कृपा के पात्र बन सका । पू. पण्डित सुखलालजी ने ही आपकी यह सहायता लेने का सूचन किया है । बेंगलोर में मेरा रहना निश्चित हो जाने के कारण आप ही निकटस्थ अधिकारी मार्गदर्शक रहेंगे ।

तो इन दोनो बातों के विषय मे योग्य मार्गदर्शन देने की विनति कर रहा हूँ ।

इस पत्र के साथ साध्वीजी निर्मलाश्रीजी का भी दूसरा पत्र है । आपके प्रत्युत्तर से वे अनुग्रहित हुई हैं और इस दूसरे पत्र के द्वारा वे उनकी स्वर्गीया माताजी के विषय में जानना चाहती हैं । उन्होने अपनी इन मातागुरु के पास ही नव वर्ष की बाल वय में दीक्षा ली थी और मातागुरु दो वर्ष पूर्व काल कर गई हैं... यह सहज जानकारी के लिए लिख रहा हूँ ।

आप को बार बार कष्ट दे रहा हूँ जिसके लिए अन्तःकरणपूर्वक क्षमायाचना कर रहा हूँ।

अन्त में आपको एवं माताजी को विनय वन्दना के साथ

प्रताप के भाववन्दन

(17)

(पू. गुरुदेव की निश्रा से)

290 सुख निवास
सायन (पूर्व) स्कीम नं. 6,
मार्ग-31, मुम्बई-22.
दिनांक : 30-06-1970

पू. आदरणीय श्री प्रतापभाई

सविनय सप्रेम जय सद्गुरुवन्दन ।

आपका कृपापत्र मिला । सर्व हकीकत ज्ञात हुई । यहाँ हम सब सकुशल हैं और सब की कुशलता की कामना करते हैं ।

प.पू. गुरुदेव तथा प.पू. माताजी ने आप सब को अनेकानेक आशीर्वाद कहे हैं ।

प.पू. गुरुदेव तथा प.पू. माताजी का शरीर स्वास्थ्य ठीक है । बकरीवाले मरहमपट्टी वाले के नाम से प्रसिद्ध भाई की दवा (मरहमपट्टी) का उपचार गुरुदेव के लिए चल रहा है । फोड़ा था वह फूट गया है । पस (पीब) बाहर आने के बाद उसे रुझाने की दवाई दी जायेगी ।

इसे कितना समय लगेगा कुछ कहा नहीं जा सकता । फिर भी प.पू. गुरुदेव अपनी मंडली के साथ यहाँ से दि. 13-07-1970 को निकलने की भावना रखते हैं बाकी तो जैसा उदय । आषाढ़ शुक्ला नवमी के दिन यहाँ से निकल कर दसवीं के दिन हम्पी पहुँच जायेंगे । एकादशी को आश्रम का स्थापना दिन प्रतिवर्ष अत्यन्त उत्साहपूर्वक मनाया जाता है । अतः उस दिन अर्थात् दि. 15-07-1970 को पूज्यश्री की वहाँ उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक है । आप सब को भी उस प्रसंग पर उपस्थित रहने के लिए हार्दिक निमंत्रण है । सब को साथ लेकर आप अवश्य हम्पी पधारें, आपको भी आनन्द होगा ।

पू. मुरब्बी श्री चन्दुलालभाई को तथा उनके पूरे परिवार को प.पू. गुरुदेव तथा पू. माताजी ने अनेकानेक हार्दिक आशीर्वाद कहे हैं । उनको भी आषाढ़ शुक्ला 11 दि. 15-07-1970 को वहाँ उपस्थित रहने के लिए विनंति ।

यहाँ बरसात थोड़ी थोड़ी शुरु हो गई है । दिन में अधिकतर आकाश साफ़ रहता है । वहाँ के क्या हाल हैं ? याद करने वाले सभी मुमुक्षु भाई बहनों को प.पू. गुरुदेव तथा प.पू. माताजी के अनेकानेक आशीर्वाद ।

संत चरणरज

हीराचंद के प्रणाम

(18)

(पू. गुरुदेव की निश्रा से)

हम्पी

दि. 14-07-1970

श्रीमान् प्रतापभाई,

सादर जयगुरुदेव ।

आपका पत्र मिला । हकीकत ज्ञात हुई । आपकी भावना सफल हो । आत्मसिद्धि का कार्य समय मिलने पर करें ।

प.पू. गुरुदेव का स्वास्थ्य वैसा ही है । दो-तीन दिन से दर्द बढ़ा है । पस निकलता है और फिर से भर जाता हैं । प.पू. माताजी का स्वास्थ्य नरम-गरम रहता है । पूज्यश्री के शरीर में वेदना अधिक है ऐसा लगता है, फिर भी दोनों समय प्रवचन देते हैं । सत्संगियों का आना-जाना जारी है । आप सब को दोनों महापुरुषों ने हार्दिक आशीर्वाद कहे हैं, स्वीकार करें ।

भवदीय

सुखलाल के प्रणाम

(19)

अनंत, 12 केम्ब्रिज रोड़, बेंगलोर-8
दि. 06-08-1970

परम पूज्य गुरुदेव,

सविनय वन्दना । आप एवं पू. माताजी सुखशाता में होंगे । प्रतिदिन आपका स्मरण होता है । आपके द्वारा सौंपे गये कार्य का स्मरण होता है—आत्मसिद्धि के अनुवाद के कार्य का— और विकलता का अनुभव होता है कि कैसी परिस्थिति में फँस गया हूँ कि मेरे ही दिये हुए वचन का पालन नहीं कर पा रहा हूँ । काम का अत्यधिक बोझ ही इसके पीछे कारण है । फिर भी आपकी कृपा से आज गुरुवार के शुभ दिन किसी भी प्रकार रात में जाग कर भी उसका प्रारम्भ तो कर ही देना चाहता हूँ । इस अक्षम्य विलम्ब के लिए पुनः पुनः आपकी क्षमा माँगता हूँ ।

इस परिस्थितिवश कुछ संकोच के साथ परन्तु आपके प्रति सहज उन्मुक्त हृदय रहने से यह लिखने की इच्छा हो रही है और वह यह कि इन दिनों काम का बोझ मुझ पर कुछ अधिक रहता है उसमें और कुछ नहीं है, केवल यहाँ परिस्थिति कुछ त्रिविध तापमय बन गई है और उससे चन्दुभाई हाल में अत्यन्त तकलीफ़ में हैं । प्रभु पर विश्वास रख कर वे समतापूर्वक मार्ग निकाल रहे हैं किन्तु आखिर मनुष्य की सीमित शक्तियों का बल कितना ? इस स्थिति में भी वे तो अपनी मौन रहने की और न माँगने की प्रकृति के कारण कुछ लिखते नहीं हैं लेकिन मैं उनके लिए आपके पास माँग रहा हूँ विशेष आशीर्वाद कि उन्हें अपनी समस्याओं का निराकरण करने हेतु कुछ मार्ग मिले और वर्तमान संयोगों में से वे बाहर निकल सकें ।

विवश हो कर आपके पास यह प्रार्थना कर रहा हूँ । आशा है, आपके अन्तर के आशीर्वाद (भले मनोमन ही) चन्दुभाई को प्राप्त होंगे ।

आपने आश्रम के लिए किसी ऐसे व्यक्ति की खोज करने के लिए कहा था जो व्यवस्थापक के रूप में कार्य कर सके । मेरे ध्यान में एक ऐसे भाई हैं जिन्होंने मेरे पास ही गुजरात विद्यापीठ में अभ्यास किया था । स्नातक-ग्रज्युएट हो कर इन दिनों अध्यापक के रूप में कार्य कर रहे हैं । मन से अत्यंत उत्साही हैं, कार्यक्षम हैं और कृपालुदेव के प्रति भक्ति एवं श्रद्धा है । अविवाहित हैं । उनका नाम देवशी भाई हैं । पटेल हैं, परन्तु हृदय से भावनाशील एवं साधना के प्रति झुकाव है । उतने ही कार्यदक्ष भी हैं । गुजराती भाषा के साथ साथ हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा भी जानते हैं । खादी पहनते हैं । गाँधीजी की राष्ट्रीय विचारधारा में पले हैं । उनका हाल ही में लिखा पत्र भेज रहा हूँ । अगर आपको उचित लगे और आपका हृदय अगर साक्षी प्रदान करे, तो आप मुझे लिखें, मैं उन्हें पत्र लिखूंगा । आपकी आज्ञा मिलने से पहले उनको कुछ पूछना उचित नहीं लगता है अतः उन्हें कुछ नहीं लिखना चाहता ।

कल आपके स्मरण के साथ एवं आशीर्वाद की अपेक्षा के साथ, रवीन्द्र स्मृति के उपलक्ष में "रवीन्द्र संगीत प्रतिष्ठान" तथा "ध्यान संगीत" 'Music For Meditation' का प्रारम्भ करने जा रहे हैं। टैगोर तथा मल्लिकजी के भक्तिसंगीत का इसके साथ सम्बंध है। आशीर्वाद दे कर अनुग्रहित करें। पूर्णिमा पर पुनः आने की भावना है।

वहाँ सब को वन्दन

प्रताप के भाववन्दन

संलग्न-देवशीभाई का पत्र

(20)

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम
दिनांक : 09-08-1970

सद्गुणानुरागी मुमुक्षुबंधु श्री प्रतापभाई सपरिवार,

अंगत पत्र सम्प्राप्त हुआ। पढ़ कर प्रसन्नता हुई। इस देह में अब भी व्याधिदेव की कृपा के कारण व्यवस्थित आसन पर बैठा नहीं जाता, अतएव लिखने में तकलीफ़ होती है, तथापि कभी कभी पत्रोत्तर देना अनिवार्य होने पर लेखनक्रिया करनी पड़ती है। वैसे दर्द में कमी है। केवल बाह्य औषधि प्रयोग चल ही रहा है।

श्री चन्दुभाई के लिए विपरीत परिस्थिति में समरस रहने के लिए आपने बल माँगा यह निष्कामभावना अभिनन्दनीय है। आत्मार्थी का यही कर्तव्य है।

यदि निरन्तर प्रभुस्मरण की आदत डाली जाये तो अदृश्य शक्ति के द्वारा अनुपम बल अवश्य प्राप्त होता है ऐसा इस आत्मा को विश्वास है अतः भाई को उस दिशा की ओर अंगुलि निर्देश करें। यह आत्मा परमकृपाळु के प्रति अंतरंग प्रार्थना करती है कि आप सब के अन्तःकरण में उक्त आत्मबल विकसित हो और आत्मा परिस्थितियों के प्रभाव से बचे। ॐ

आपके मित्र श्री देवशीभाई के विषय में जो लिखा था तथा उनकी अन्तरंग योग्यता समझने के लिए उनका पत्र अपने पत्र के साथ भेजा, वह पढ़ा। यह आत्मा सुपात्र लगती है। अतः उन्हें यहाँ काम के लिए बुलाना उचित लगता है। अगर वे आश्रम की व्यवस्था का कार्य हाथ में लेने के लिए तैयार हैं तो सोने में सुहागा। परन्तु एक शर्त के साथ-अपना फर्ज़ अदा करने के साथ साथ (आश्रम का काम सम्हालते हुए) अवकाश के समय में आत्मसाधना करें, जिससे दोनो कार्यों में प्रगति हो सके। केवल आत्मसाधना में लीन रह सकें ऐसी उनकी स्थिति नहीं है इसलिए कुछ प्रवृत्ति तो आवश्यक है ही। अतः उन्हें इस शर्त के साथ शीघ्र यहाँ भेजने का प्रबंध करें। उचित पारिश्रमिक अवश्य मिलेगा। इस विषय में चन्दुभाई के साथ बात कर के उनकी सलाह भी लें, क्योंकि आश्रम के प्रमुख होने के नाते उनका यह उत्तरदायित्व है।

गत गुरुवार को हिरजीभाई यहाँ से सपरिवार बेंगलोर गये। उनके साथ पत्र भेजा था, जो प्राप्त हुआ ही होगा। माताजी स्वस्थ एवं प्रसन्न हैं। आप सब को हार्दिक आशीर्वाद प्रेषित किये हैं। वहाँ आपके परिवारजन, मित्रों एवं साधर्मिक जनों को हार्दिक आशीर्वाद ज्ञात करायें एवं स्वीकार करें। ॐ शान्तिः।

सहजानन्दघन के हार्दिक आशीर्वाद

(21)

बेंगलोर

दिनांक : 12-08-1970

परमपूज्य गुरुदेव तथा पूज्य माताजी की सेवा में,
प्रताप के भाववन्दन ।

अपने शरीर की अस्वस्थ स्थिति में भी कष्ट उठाकर लिखकर भेजा हुआ आपका अनुग्रह पत्र प्राप्त कर धन्य हुआ । पत्र से बहुत बल और प्रेरणा भी प्राप्त हुए । वह पत्र चन्दुभाई को भी पढ़ने के लिए दिया है । वे आज ही काम से वापस आए हैं । उनका उत्तर बाद में लिखूंगा । आपकी प्रभुस्मरण की प्रेरणा से मेरी जागृति तो पुनः दृढ़ हुई और वह स्मरणधारा-अखंड स्मरणधारा पुनः आरंभ हो गई । वैसे भी आपका एवं कृपाळुदेव का सतत स्मरण उसमें दृढ़ता करता ही है । हां, रवीन्द्र संगीत प्रतिष्ठान के संगीत भजन के कार्यक्रम उपाधियों के बीच भी आपके अनुग्रह से होते रहते हैं यह आश्चर्यजनक है तथा ये अर्न्तमुखता को टिकाए रखते हैं । भजनों के द्वारा गहन आत्मानन्द का सुन्दर अनुभव होता रहता है ।

विशेष में आपके एवं कृपाळुदेव के अनुग्रह के ही फलस्वरूप श्री आत्मसिद्धिशास्त्र के अनुवाद का कार्य गत गुरुवार से थोड़ा थोड़ा ही सही शुरू हो गया है और आपकी सूचनानुसार गुजराती, संस्कृत और हिन्दी इस क्रम में गाथाएँ सभी लिखीं जा रहीं हैं । 2 से 25 आनंदपूर्वक पूर्ण हो चुकी हैं । साथ साथ हिन्दी गद्यानुवाद करते करते हिन्दी पद्यानुवाद की भी अन्तः प्रेरणा हुई वह भी मेरी टूटी-फूटी भाषा में किया है, परन्तु अनुवाद के उपर्युक्त क्रम में उसे सम्मिलित नहीं किया है, अगर आप उसे पसंद करेंगे और आज्ञा देंगे तो ही उसे उसमें जोड़ दूंगा । अनुवाद की दो प्रतिलिपियां या तो डाक द्वारा आपको भेजूंगा या पहले मेरा वहाँ आना संभव हुआ तो मेरे साथ ही सब लेकर आंऊगा इस विषय में पीछे पढ़ने की कृपा करें ।

(1) श्री आत्मसिद्धि के अनुवाद के पृष्ठों के अतिरिक्त –

(2) "साधनायात्रा का संधानपंथ" नामक वहाँ हम्पी की मेरी गुरुपूर्णिमा की यात्रा समय का दूसरा लेख एवं

(3) आपके आशीर्वाद से प्रारंभ हुई चिंतन विचारणा के पश्चात् लिखा हुआ 'जैन दर्शन विद्यापीठ' की योजना का लेख वैचारिक योजना का (आर्थिक बाद में तैयार करूँगा) भेजा है । सूचित सारे सुझाव (सुधार-संशोधन) करें यह विनति है ।

श्री देवशीभाई के बारे में आपने जो सूचित किया वह नितांत यथायोग्य है । उन्हें आजकल में पत्र लिख दूंगा ।

अंत में विदित करना यह है कि यहाँ कामकाज के वर्तमान उपाधियोग के बीच भी मेरा चित्त कृपाळुदेव के चरणों में और वहाँ ही रहता है । वहाँ पुनः पुनः आकर रहने की प्रेरणा होती रहती है । आगामी पूर्णिमा का लाभ उठाने का भी उत्कृष्ट भाव है । उपर्युक्त बातों के

विषय में प्रत्यक्ष बात भी करनी है । शनिवार को दिनांक 15 अगस्त है, 16 को रविवार है। 17 को पूर्णिमा है, अत: कोई आकस्मिक व्यवधान–रुकावट–नहीं आया तो आपके अनुग्रह से शनिवार दिनांक 15वी अगस्त के रोज यहां से एक मित्र की मोटर के द्वारा प्रस्थान करके शनिवार शाम के भोजन समय पूर्व वहाँ पहुंचेंगे वैसी सूचना संबंधित जनों को देने की विनति है ।

आपके स्वास्थ्य समाचार ज्ञात हुए ।

विनीत प्रताप के भाववंदन

(22)

दिनांक : 24-09-1970

(महाव्याधि के बीच भी प्रसन्न अलखमस्ती... !
अंतिम दिनों की स्थिति: प.पू. माताजी का महत् पत्र)

सद्‌गुणानुरागी चन्दुभाई तथा प्रतापभाई सपरिवार,

आप सब आनन्द में होंगे ।

आपका पत्र मिला । पढ़ने पर हकीकत ज्ञात हुई । प्रतापभाई, आपके जाने के बाद प.पू. श्री प्रभुजी का स्वास्थ्य बहुत ज्यादा खराब हो गया है । दि. 25-09-1970 से उलटियाँ हो रहीं हैं । अशक्ति बहुत है । उठने-बैठने के लिए भी सहारे की आवश्यकता पड़ती है । पूर्ण रूप से आराम लेने का तय किया है । भाई ! उनका मन तो नहीं मानता है, लेकिन हम सभी आश्रमवासियोंने मिलकर प्रवचन बन्द करवाया है, क्योंकि शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया है । देखनेवाला घबरा जाये लेकिन इस महापुरुष को किसी प्रकार का असर नहीं होता है । अपनी अलखमस्ती में रहते हैं । प्रसन्न मुख से समभावपूर्वक व्याधिकर्मों को भोग लेते हैं । यही ज्ञानी पुरुष की पहचान है । इस महापुरुष की इस जगत को बहुत आवश्यकता है । अनेक जीव उनके चरणों में, उनकी शरण में भवपार उतर सकते हैं, इसलिए हम सब को मिलकर उनके लिए प्रभुप्रार्थना करनी है कि ये व्याधिकर्म शीघ्र दूर हो जायें, उनके शरीर को खूब शाता हो और ये महान पुरुष जुग–जुगों तक जीवित रहें । मैं तो भाई ! महापुरुषों के पास नित्य यह प्रार्थना करती हूँ ।

आप सब भी मिलकर यह प्रार्थना प्रभु से करें । मेरा हृदय तो रातदिन रोता ही रहता है – अरे ! कैसी है कर्मों की गति कि ज्ञानी हो या अज्ञानी, कर्म तो अपना खेल दिखाते ही हैं । अन्तर केवल इतना ही है कि ज्ञानियों के पासे धैर्य होता है और अज्ञानी जीवों के पास 'हाय' होती है । इसी कारण से पूर्णिमा की रात को मैंने आपको मीठी डांट दी थी, क्योंकि 'रतन का जतन' होना चाहिए । और वह केवल एक मेरे लिए नहीं, जगत के सर्व जीवों के लिए इस पुरुष की रक्षा करना आवश्यक है । अगर उनके शरीर को शाता है, शान्ति

है तो अनेक जीव लाभान्वित हो सकते हैं । आजकल अशान्ति तथा व्याधि का ज़ोर बढ़ जाने के कारण सारा क्रम बन्द करवाया है । उसमें भी यह ज्ञानी पुरुष राज़ी नहीं है । विवश होकर चूप रहना पड़ता है क्योंकि हम सब एक हो गये हैं कि पूज्यश्री पाट पर विराजमान हों तब शाता पूछ कर सब अपने अपने स्थान में चले जायें । इस प्रकार विश्राम मिल सकता है । एसी बात है बेटा !

आपकी पुत्री को आप खुशी से ला सकते हैं । घर में छोटे-बड़े सब को प.पूज्यश्री के तथा मेरे आशीर्वाद । छोटुभाई के घर में एवं जो भी पूज्यश्री के विषय में पृच्छा करें उन सब को आशिष । ॐ शान्ति !

माताजी के आशीर्वाद

सब को हार्दिक आशीर्वाद – सहजानन्दघन

(23)

दिनांक : 23-12-1970

(गुरुदेव की विदा के बाद)

भव्यात्मा श्रीमान् प्रतापभाई

बालगोपाल सब स्वस्थ होंगे । आपका पत्र अनोपचन्दभाई ने दिया । पढ़कर मन में उदासी का अनुभव हुआ । संसार की समस्याएँ और कठिनाइयाँ मनुष्य को अत्यन्त व्यथित कर देती हैं । यह संसार किसीको चैन से बैठने नहीं देता, इसलिए, बेटा हिंमत रखो । आये हुए बोझ को (दुःखों को) शान्ति एवं समभाव से सहन कर लेना है । साथ साथ आत्मलक्ष रखना, महापुरुषों का स्मरण करना ।

पूर्णिमा के दिन आपकी राह देखी थी परन्तु छोटुभाईने बाद में सब बातें बताई तो सन्तोष मान लिया । बेटा, मेरा दिभाग भी काम करता नहीं है । प.पू. प्रभु का विरह सताता है । इस कारण से किसीको भी पत्र कम ही लिखना होता है ।

घर में सब की तबियत अच्छी होगी । सब को आशिष । आपकी भाभी को हिंमत बंधाना । आप भी हिंमतपूर्वक इन सब झंझटों से पार उतरें यही आशिष । कितना भी कठिन समय आये, लेकिन आत्मा का विचार करना, उसका विस्मरण न करना, भाई !

श्री छोटुभाई के घर सब को आशीर्वाद कह दें । ॐ शान्तिः ।

माताजी के आशीर्वाद

C पूज्य गुरुदेव के कुछ प्रेरक पत्र :

(आश्रम अध्यक्ष चंदुभाई एवं प्रो. प्रतापभाई के विषय में)

(24)

हम्पी, 31-10-1969

परम कृपाळुदेव के लाड़ले 'लाल' (श्री लालभाई सोमचंद शाह अहमदाबाद),

"शरद पूर्णिमा" के दिन श्री छोटुभाई, श्री चंदुभाई टोलिया सहपरिवार और उनके अनुज प्रो. प्रतापभाई टोलिया आये थे । चंदुभाईने बांधकाम देखकर संतोष व्यक्त किया था । उचित परामर्श सूचनाएँ दी थीं ।

प्रतापभाईने सितारवादन से 'अपूर्व अवसर' एकतानता से गाया, जिसमें स्वयं रसप्लावित बने । तीन प्रवचन उनके ही प्रश्नोत्तर के रूप में सुनकर बड़े ही प्रसन्न हुए थे और इस देहधारी को अमरिका ले जाकर वहाँ के लोगों को पारमार्थिक मार्गदर्शन के हेतु हार्दिक अनुरोध किया था । फिर से अपनी मित्रमंडली सह यहाँ आया जा सके ऐसी भावना से अपना प्यारा सितार भी यहाँ रखकर गये हैं । चंदुभाई–छोटुभाई की लगनी भी तीव्र होती दिख रही है ।

(पत्रसुधा)

सहजानंदघन

(25)

हम्पी, 23-11-1969

(पत्रांक 290)

'परमकृपाळु के लाड़ले लाल, (श्री लालभाई)

ट्रस्टीओं के नये चुनाव में श्री चंदुभाई को अध्यक्षपद पर चुना गया । बांधकाम विभाग उपाध्यक्ष को सौंपा गया । प्रतापभाई का पत्र नहीं है ।

(पत्रसुधा)

(26)

(पत्रांक 201)

प्रतापभाई टोलिया व्यस्ततावश न तो ववाणिया जा सके, या न यहाँ यथा समय पत्र प्राप्ति की सूचना दे सके । उनका पत्र दो दिन पूर्व आया है ।

(पत्रसुधा)

सहजानंदघन

(27)

(पत्रांक 293)

कुनूर, दि. 25-06-1970

"परमकृपाळु के लाड़ले लाल" (श्री लालभाई),

श्री प्रतापभाई टोलिया को श्री विमलाताईने कृपाळु देव के वचनामृत का अंग्रेजी अनुवाद करने का अनुरोध किया है । उन्होंने कृपाळु के रहस्य समझने मेरे साथ पत्र व्यवहार करना चाहा है । आपको प्रतापभाई मिले तब उचित सलाह दें । कृपाळु के गूढ़स्थ वाक्य या शब्द समझने हेतु यथाशक्ति सहायता करूँगा ऐसा लिखा है ।"

(पत्रसुधा)

सहजानंदघन

(28)

('पत्रावली' पत्रांक 300)

ट्रीची, 28-02-1970

भव्यात्मा श्री नवीनभाई सपरिवार,

हम्पी में श्री टोलियाजी (चंदुभाई) की जिम्मेदारी से निर्माण कार्य चल रहे हैं । महीने में एकाध बार वे आते रहेंगे ।

सहजानंदघन

(29)

मुमुक्षु बंधु श्री नवीनभाई सपरिवार,

'आत्मसिद्धि' हिन्दी अनुवाद की पुस्तिका आपको बम्बई भेज दी थी वह यहाँ आने के बाद जाते समय प्रतीत हुआ कि उसका हिन्दी अनुवाद ठीक नहीं है । जिससे प्रो. प्रतापभाई कि जो यहाँ के अध्यक्ष महोदय के अनुज हैं, गुरुपूर्णिमा पर उनकी यहाँ उपस्थिति थी, उनको फिर से अनुवाद करने का काम सौपा है । कुछ पंद्रह दिनों में प्रेसकॉपी तैयार करके बेंगलोर से सीधी आपको भेजेंगे । तदनुसार आप मुद्रण करवायें । वह कॉपी न आये तब तक जल्दी न करें । वे अंग्रेजी और हिन्दी के एम.ए. हैं और अच्छे साक्षर हैं, इसलिये उनकी कृति अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध होगी । उसमें संस्कृत पद्यानुवाद भी देंगे ।

सहजानंदघन

(30)

(पत्रावली पत्रांक 194)

हम्पी, 17-09-1970

॥ ॐ नमः ॥

भव्यात्मा श्री नवीनभाई सपरिवार,

"कामकाज की भीड़ के कारण देरी से प्रस्थान कर और रास्ते में मोटर बिगड़ने से, प्रो. प्रतापभाई आख़िर आप गये उसके दूसरे दिन यहाँ आ सके । केवल दो दिन रहकर कल प्रभात के समय वापिस गये । उनकी धारणानुसार आत्मसिद्धि का हिन्दी अनुवाद यहाँ भी संपन्न कर नहीं सके उसके लिए खेद व्यक्त किया । मैने आश्वासन देकर यथाप्रकार कार्य संपन्न करने का कहकर उन्हें विदा दी । इसलिये अभी तो आप प्रथम पुस्तक का ही प्रकाशन करें । आत्मसिद्धि का उसके बाद देखा जायेगा । अनुवाद थोड़ा थोड़ा करके आपके पास भेजते रहेंगे ।"

सहजानंदघन

(31)

श्री चंदुभाई का स्वर्गवास : गुरुदेव का महाप्रयाण

02-10-1970 के दिन इस हम्पी आश्रम के अध्यक्ष श्री चंदुभाई टोलिया पू. गुरुदेव के दर्शन कर स्वगृह लौटते हुए अपनी कार दुर्घटना में प्रभुशरण हुए । यह आघात तो प्रत्येक आश्रमवासी पर पड़ा ही था, उतने में दूसरा कातिल उदय आया... प्रभु 2027 के का.शु. 3 की रात दो बजे निर्वाण पधारे । भारी वज्राघात अनुभव हुआ ।

स्थायी शांति दाता, अशोकवृक्ष सम शीतल छाया विलीन हो गई ..... !

(पत्रसुधा)

श्री लालभाई, अहमदाबाद

(नवम्बर 1970)

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

८६ गुरुदेव और विमलाताई का मिलन

अंतरराष्ट्रीय स्तर की प्रसिद्ध समाज सेविका व उच्च कोटि की योगिनी विमलाताई परमकृपाळु देव के साहित्य की गहन अध्येता थीं । उन्होंने "Selected Works of Shrimad Rajchandra" अंग्रेजी ग्रंथश्रेणि की आयोजना प्रोफेसर प्रतापभाई टोलिया के साथ बनाई थी । ईडर की श्रीमद्‌जी की सिद्धशिला साधना भूमि की स्पर्शना करने की उनकी दीर्घकालीन इच्छा थी । श्रीमद्‌जी के जन्म शताब्दी महोत्सव के समय दिसम्बर 1967 में विसनगर में महिला कॉलेज की छात्राओं का शिविर आयोजित किया गया था । वहाँ से वे प्रतापभाई और उनके सितार को साग्रह ईडर साथ ले आईं ।

गुरुदेव व माताजी के साथ वहाँ उनका अप्रत्याशित व प्रेरक समागम हुआ । प्रथम रात गुरुदेव की भक्ति की मस्ती जमी प्रतापभाई के सितारवादन व गान के साथ । दूसरे दिन लघुता मूर्ति गुरुदेवने विमलाताई का प्रवचन सुनना चाहा । परन्तु ताई ने साग्रह गुरुदेव का प्रवचन विनयपर्वक सुना । वे इतनी प्रभावित हुइं कि वहाँ पर सभी को एवं बाद में अपने मित्रों को गुरुदेव गाथा सुनाती रहीं ।

(सौजन्य : श्री पेराजमल जैन : 'अद्‌भुत योगी', पृ. 102)

---

८७ भक्ति रस में निमग्न होना

प्रोफेसर प्रतापभाई टोलिया उच्च कोटि के लेखक व संगीतज्ञ हैं । वे गांधीजी द्वारा स्थापित गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद में अपने विद्यागुरु और जैन दर्शन के प्रकांड पण्डित प्रज्ञाचक्षु डो. सुखलालजी के साथ कार्यरत थे । पण्डितजी के हृदय में इस बात का बड़ा मूल्य था कि गुरुदेव सहजानंदघनजी श्रीमद्‌जी का कार्य समर्पित भाव से कर रहे हैं ।

ईडर में प्रथम परिचय होने के बाद प्रतापभाई अपने बड़े भाई और आश्रम अध्यक्ष श्री चन्दुभाई टोलिया और श्री छोटुभाई के साथ बेंगलुरु से 1969 में शरद पूर्णिमा के अवसर पर पहली बार हम्पी आए थे । उन्होंने सितारवादन के साथ 'अपूर्व अवसर' एकतान होकर गाया जिसमें वे स्वयं रस निमग्न हो गए । तीन प्रवचन उनके ही प्रश्नोत्तर रूप में सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए । गुरुदेव की प्रेरणा व पण्डितजी की सम्मति से 1970 में गुजरात विद्यापीठ से त्याग-पत्र देकर वे गुरुदेव के चरणों में समर्पित हो गए । उनके सिद्धांतों का प्रचार व प्रसार साहित्य, संगीत व ध्यान शिबिरों के माध्यम से देश-विदेश में कर वे जिन शासन की महत्वपूर्ण सेवा कर रहे हैं ।

(सौजन्य : श्री पेराजमल जैन : 'अद्‌भुत योगी', पृ. 103)

प्रकरण-१० Chapter-10

देह-रथी की बाल्यावस्था : विद्यार्जन शिक्षा

मूळजीभाई, मूल नामधारक, मूळ नक्षत्र में जन्मे इस महामुनि का देह-रथ कच्छ डुमरा गाँव का । उनका जन्म और बाल्यकाल 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' (पुत्रना लक्षण पारणामांथी) उक्ति सिद्ध करता है, जैसा कि उनके स्वयं के 'आत्मकथा' - शब्द घटित घटनाएँ और उनके चरित्र लेखकों के स्थूल कथन हैं :

"बीसा ओसवाल वंश के, परमारगोत्रीय सुश्रावक श्री नागजीभाई कच्छ देश में निवास करते थे, जिनकी धर्मपत्नी सुश्राविका नयनादेवी की कोख रूपी सीप से उत्तम मौक्तिक की भाँति विक्रम संवत १९७० मिति भाद्रपद शुक्ल १० के दिन मूला नक्षत्र में पुत्ररत्न का जन्म हुआ ।"०००

जन्मकुंडली का संकेत मानें तो "सब ग्रह उत्तम स्थान में थे, मूला नक्षत्र और राजयोग था ।"[१]

उनका यह जन्मदिन रविवार था, सूर्योदय का समय था और अंग्रेजी तारीख ३०-८-१९१४ थी ।[२]

उनके दादाजी का नाम सामतभाई काराणी, छोटे भाई का नाम मोरारजी, दो बहनों के नाम मेघबाई-भाणबाई और चचेरे भाईयों के नाम हैं (१) श्री विसनजी भाणजीभाई (२) श्री जेठालाल भाणजीभाई और (३) श्री प्रेमजीभाई ।

नवकार महामंत्र, जिन चोवीसी नाम आदि प्राथमिक जैन धर्म संस्कार उन्हें छोटी आयु से ही माँ की मीठी गोद में मिले थे । फिर विशेष धार्मिक ज्ञान उन्हें प्राप्त हुआ यतिश्री रविसागरजी के पास से ।

उनकी देह-गाड़ी, देह-रथ का इस प्रकार प्रथम प्रस्थान होता है । कई जन्मों के पूर्वसंचित पुण्यों एवं पूर्वानुभवों से लेकर इस योगीश्वर देहधारी का बाल्यकाल रोमांचक बना रहता है। उनकी संक्षिप्त 'आत्मकथा' ही इसका स्पष्ट संकेत करती है ।

उन ज्ञानावतार-अनुग्रह से पूर्वज्ञान-प्राप्ति

"उस ज्ञानावतार (प.कृ.दे. श्रीमद् राजचंद्रजी) की असीम कृपा से यह देहधारी निश्चयात्मक रूप से ऐसा जान सका है कि पूर्व के कुछ जन्मों में केवल पुरुषवेद से इस आत्मा का उस महान पवित्र आत्मा के साथ व्यवहार से निकट का सगाई सम्बन्ध ओर परमार्थ से धर्म सम्बन्ध घटित हुआ है । उनकी असीम कृपा से यह आत्मा पूर्व में अनेकबार व्यवहार से राजऋद्धियाँ और परमार्थ से महान तप-त्याग के फलस्वरूप लब्धिसिद्धियाँ अनुभव कर चुकी है ।

"राजऋद्धियों से उद्‌भव होनेवाले अनर्थों से बचने हेतु पूर्वजन्म में आयुबंध काल में किये हुए संकल्प बल से यह देहधारी इस देह में एक खानदान किन्तु उपजीवन में साधारण स्थितिवाले

१. भक्ति झरणां : जगत्माता श्री धनदेवीजी : पृ. १, २
२. श्री सहजानंदघन चरित्र : श्री भंवरलाल नाहटा : पृ. ३, ५

कच्छी वीसा ओसवाल अंचलगच्छीय जैन कुटुम्ब में जन्मा हैं । स्तनपान करते करते वह जननी-मुख से श्रवण कर नवकार मंत्र सीखा ।

"घोळां धावण केरी धाराए धाराए नीतर्यो नवकारनो रंग

हो राज ! मने लाग्यो जिनभक्तिनो रंग ।"

शिशु-किशोरवय चर्या और पूर्व-परिचित श्रीमद्-वचनामृत प्रभाव :

"जिस मंत्र के प्रताप से केवल 2½ ढाइ वर्ष की आयु में वह स्वप्न अवस्था में संसारकूप का उल्लंघन कर गया.....

..... ४ वर्ष की आयु में उसे खुले नेत्र से प्रकाश प्रकाश दिखाई दिया .....

..... ९-१० वर्ष की आयु से वह पौषधोपवासव्रत पूर्वक सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करने लगा .....

"संवत्सरिमां चालीस लोगस्सनो काउसग्ग मूळजी बोल्यां ।

बालयोगी साधु समा आ, निरखी लोको डोल्यां ॥"

फिर आगे –

"द्वादश वर्षे पठन कर्यां 'तां, राजप्रभुनां वचनो ।

वचनो सर्वे रह्यां सत्तामां, जागे अंतरमां भजनो ॥"

("गुरुदेवनी पूजा" : पुष्पाबाई स्वयंशक्ति : पृ. ४, ५)

"..... १२ वर्ष की आयु में उसे श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत ग्रंथ पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । जिसे पढ़ने पर वह शिक्षा पूर्व-परिचित प्रतीत हुई । उसमें से "बहु पुण्य केरा पुंजथी .... निरखीने नवयौवना ..... क्षमापना पाठ" इत्यादि उसने सहसा कंठस्थ किए । "मैं कौन हूँ, कहाँ से हुआ ?" (हुं कोण छुं, क्यांथी थयो ?) यह गाथा उसकी जीभ पर खेलने लगी एवं "निरखीने नवयौवना" - इस शिक्षाबल से लघुवय में संपन्न सगाईवाली कन्या का विवाहपूर्व ही देह छूट जाने पर, दूसरी कन्या के साथ हो रहे सगाईसम्बन्ध को टालकर वह आत्मसमाधि मार्ग पर अग्रसर हो सका ।

"पूर्वकाल के जन्मान्तरों में परमकृपाळुदेव, श्री तीर्थंकर देव आदि अनेक महाज्ञानी सत्पुरुषों के महान उपकारों के नीचे यह देहधारी अनुग्रहबद्ध है । उनमें से दो सत्पुरुषों का उपकार उसे इस देह में बारंवार स्मृति में आया करता है – एक स्वलिंग संन्यस्त युगप्रधान श्रीमद् श्री जिनदत्तसूरिजी और दूसरे गृहलिंग संन्यस्त युगप्रधान श्रीमद् राजचंद्रजी । इन उभय ज्ञातपुत्रों की असीम कृपा इस देह पर वारंवार अनुभव करती हुई यह आत्मा, धीमी गति फिर भी सुदृढ़रुप से आध्यात्मिक उन्नति श्रेणी पर अग्रसर हो रही है ।"

(इस ग्रंथ के प्रकरण-४ में लिखित स्वयं की "आत्मकथा-आश्रमकथा")

३. सहजानंद सुधा : श्रीमती चन्दनाबेन काराणी : सं. परिचय

डुमरा जैसे छोटे-से गाँव की अल्पसंख्यक आबादी के शिक्षार्जन-विद्यार्जन के साधन सीमित होते हुए भी अपने पूर्वसंस्कारवश उनका विकास विलक्षण रुप से मोड़ लेता है । उनके चरित्र लेखकों का चित्रण उसे चिरंतन बना देता है । अनेक जन्मों से उन्नत ऊर्ध्वप्रदेशों में बहती आई उनकी अनादि आत्मा की जीवनसरिता इस जन्म में किनकिन सिद्धक्षेत्रों में गुज़रती हुई, महाविदेही अंतर्दशा के महाप्राण ध्यान के द्वारा महाविदेह क्षेत्र के किस चैतन्य महासागर में जाकर घुल मिल जानेवाली थी, इसकी कल्पना तक किसे हो सकती थी ?

परंतु देख ली थी उनमें यह सम्भावना, स्वयं आत्मज्ञा जगत्माता परम पूज्या माताजी ने अद्‌भूत रुप में । प्रभुगुण गाती हुई वे "प्रभु सहजानन्दघन जन्म स्तवन" और "झुले पारणिये" में लिखती-गाती-जयजयकार करती हैं :-

"पश्चिम भारते कच्छ देश, पावन डुमरा संनिवेश
परमार क्षत्रि मालदे वंशनां अवतंस जय जय हो.. ।
माता नयनादेवीनंद, सहजानंदघन जय हो... !
विशा ओसवाल सुजात, श्रावक धर्मे अति विख्यात
शाह श्री नागजी कुलचंद, सहजानंदघन जय हो... ! माता.
विक्रम शून्य सात नव एक दशमी, भाद्र सुदी ए नेक,
सूर्योदय वेला घड़ी छेक, जन्म्या आप जय जय हो... ! माता."
"भाद्रव दशमी आजे, ए जन्म ओच्छव काजे,
    महेन्द्रइन्द्रादि सुर आवे.... हो सहजानंद झुले...
भावी जिन जाणी, सुभक्ति उलट आणी
    नमी वंदीने ओच्छव मंडावे... हो सहजानंद झुले ।"[१]

●●●

धार्मिक ज्ञान उपरान्त शिक्षार्थ "मातापिता ने उन्हें डुमरा के छात्रावास में भरती कर दिया जहाँ से मूळजी रविवार को घर आते, छः दिन वहाँ रहते !... शिक्षकों और छात्रों के उभय पक्षों में पिता-पुत्र का सम्बन्ध था । छात्र जन गुरु के अनुशासन में रहते थे । सहपाठियों के प्रति हृदय में विशिष्ट प्रेम था ।[२]

छात्रावास के दौरान घटित व्यंतरादि की चरित्रलेखकों द्वारा लिखित घटनाएँ सही हों-न हों अथवा अतिशयोक्तिपूर्ण हों तो भी मूळजीभाई की नवकारमंत्र श्रद्धा और निर्भयता का अवश्य परिचय देती हैं ।

"कच्छ डुमरा के स्कूल में सातवीं कक्षा तक अभ्यास करने के पश्चात् अध्ययन की अदम्य इच्छा होने पर भी संयोगवश पढ़ाई छोड़कर उन्हें आजीविका के हेतु बंबई महानगरी में आना पड़ा ।"[३]

(विशेष पूर्व चतुर्थ प्रकरण की 'आत्मकथा' एवं उपर्युक्त चरित्रों-कथनों में)

प्रकरण-११ Chapter-11

जीवनमोड़ प्रदाता अकथ्य आनंदानुभव: सर्वसंगपरित्याग और गुरुकुलवास

१२ वर्ष की कठोर आत्मसाधना, अध्ययन

"युवावय का सर्वसंगपरित्याग परमपद प्रदान करता है।"

— प.कृ.दे. श्रीमद् राजचंद्रजी ।

अपनी शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयंज्योति स्वरूप शुध्धात्मा के पूर्वाभ्यास के स्मृति-संस्कार युवा मूळजीभाई में एक धन्य, विरल, अलौकिक अनुभूति-वेला में जाग गए। उनके स्वयं के कथन अनुसार, यह एक अकथ्य शब्दातीत आनंदानुभव की वेला थी ।

"अपूर्व अवसर ऐसा कब रे आएगा ?

कब होंगे हम बाह्यांतर निर्ग्रंथ रे ?"

- परमपद-प्राप्ति की इस भावना हेतु बाह्यांतर निर्ग्रंथदशा का मुनिजीवन अंगीकार करने की किसी पूर्वकालीन शुभ इच्छा को साकार करने का तब अचानक एक 'निमित' मिल गया.... 'उपादान' गहन हो फिर कहना क्या ?

अपनी १२ वर्ष की अवस्था में "मैं कौन हूँ ?" (हुं कोण छुं ?) के श्रीमद्-पद ने प्रज्जवलित की हुई भीतरी लौ को अब बाहर भी प्रकाशित-विस्तारित करने की धन्य बेला आ गई । १९ वर्ष की युवावस्था में इसे चरितार्थ करने एक वैराग्य-प्रदाता असामान्य घटना घटी ।

मोहमयी नगरी मुम्बई भातबाज़ार का गोदाम..... भीतर कार्यरत युवान मूळजीभाई..... ऊपरी मंज़िल से किसी अनजान माई के चांदी के बटनवाले कमीज़ का वहाँ गिरना..... मूळजीभाई द्वारा नितांत निस्पृह निर्लोभभावपूर्वक उस अज्ञात मालिक के कमीज़ को एक ओर रख देना (यह समझकर कि वह स्वयं उसे ले जाएगा)..... और विपरीत-बुद्धि कमीज़-मालकिन का वहाँ आकर उनपर ही चोरी का आरोप लगाते हुए आग-बबूला हो जाना, इस निमित्त से उनके भीतर प्रश्न-चिंतन की परंपरा उठी :

क्या संसार के लोगों के ऐसे ही आरोपण-प्रतिभाव ?..... संसार का ऐसा ही स्वरूप..... ? सारे संसारी जन ऐसे ही बह रहे हैं ?..... इन सब के बीच मैं कहाँ हूँ और मैं कौन हूँ .....? "मैं कौन हूँ ? आया कहाँ से ? क्या स्वरूप है मेरा सही ?.....[१]

इस "स्व-विचार" मे डूबते हुए वे अंतस् के गहरे पानी में पैठ गए.....[२]

१ "हुं कोण छुं ? क्यांथी थयो ? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं ?" — श्रीमद्जी ।

२ "जिन खोजा तिन पाईया गहरे पानी पैठ" — संत कबीर ।

परिणाम ? इस भीतरी लौ का कोई प्रकाश-परिणाम ?

परिणाम में देहभान छूट गया, लग गई भाव-समाधि-सहज समाधि, हो गई एक असामान्य, अलौकिक, अशब्द अनुभूति में संस्थिति, प्रकट हुआ निर्मल ज्ञान प्रकाश और..... और ज्ञान के उस आलोक में उन्हें स्पष्ट दर्शन हुआ लोकालोक का, लोक-स्वरूप का, वर्तमान-विश्व का, भरतक्षेत्र के आत्मसमाधि-मूल मार्ग से भटके हुए साधु संतों-श्रावकों-गृहस्थों सभी का ।

अपने इस उपर्युक्त शब्दातीत अनुभव का वर्णन करने के लिए शब्द नहीं मिलने पर वे हाथ लगे हुए चंद ही शब्दों में लिखते हैं :-

"…. एक उत्तम क्षण पर एक अकथ्य निमित्त पाकर भवान्तर के अभ्यास-संस्कार से गोडाउन के एकान्त भाग में स्वविचार में बैठे बैठे... देहभान छूट कर सहजसमाधि स्थिति हो गई । उस दशा में.... ज्ञान की निर्मलता के कारण इस दुःखी दुनिया का भासन हुआ । उसमें भरतक्षेत्र के गृहस्थजनों की तो क्या बात, साधु-संत भी आत्मसमाधिमार्ग से लाखों योजन दूर भटक गए दिखाई दिए.....[३]

यह तो हुई औरों के दर्शन की, वर्तमान विश्व के दर्शन की बात, पर अपनी ?..... अपनी दशा का भी प्रामाणिक दर्शन, आकलन, आलेखन करते हुए वे स्पष्ट लिखते हैं :- "यह आत्मा भी पूर्व-आराधित समाधिमार्ग से विच्छिन्न पड़ गई दिखाई दी !"[४]

विश्वदर्शन-आत्मदर्शन की इस अप्रमत्त दशा में तत्क्षण ही उनकी आत्मखोज की प्रश्न-परंपरा और आगे फूट पड़ी कि, "तो अब मेरा मार्ग ? कहाँ जाना है मुझे ?"

जिसके प्रत्युत्तर में अद्‌भुत, अपूर्व ऐसा एक घटस्फोट होनेवाला है ऐसे इस महाप्रश्न को स्वयं उठाते हुए इस अनुभव के अंत में वे लिखते-पूछते हैं :-

"मेरा मार्ग कहाँ ? मेरा मार्ग कहाँ ?"

..... और हुआ वह घट-स्फोट.... मिला इस महाप्रश्न का महा उत्तर - तत्काल प्रकट हुई एक आकाशवाणी के द्वारा :

"..... यह रहा तेरा मार्ग ! जा ! सिद्धभूमि में जा !..... शरीर को वृक्षतल में रखकर स्वरूपस्थ बनकर रह जा.... । ॐ[५]

और बस । फिर तो कहना क्या ? मन मस्त हुआ तब क्यों बोले ?

'सर्वप्रदेशी आत्मा' का आनंद सागर आत्मानंद की हिलोरें लेने लगा.... यह अनुभवगम्य ज्ञानानंद शब्दों में थोड़ा ही व्यक्त होनेवाला था ? उसकी अभिव्यक्ति के लिए शब्द लूले-लंगड़े असमर्थ बनकर रह गए और अनुभूति रह गई 'गूँगे के गुड़' के समान अकथ्य । ठीक ही कहा था न परमकृपाळुदेवने :-

---

३ इस ग्रंथ के चतुर्थ प्रकरण में लिखित 'आत्मकथा-आश्रमकथा' ।

४ द्रष्टव्य एवं तुलनीय गुरुदेव के ही अजितनाथ चैत्यवंदन के ये शब्द :
"अजित शत्रु-गण जीतवा, अजितनाथ प्रतीत,
विलोकुं तुझ पथ प्रभो ! यूथ-भ्रष्ट मृग-रीत ।

५ पूर्वोक्त चतुर्थ प्रकरण-लिखित 'आत्मकथा-आश्रमकथा' ।

"जो पद श्री सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में,
कह सके ना उसे श्री भगवान भी !
उस स्वरूप को अन्य वाणी तो क्या कहें ?
अनुभव-गोचर मात्र रहा वह ज्ञान ही ।"

(अपूर्व अवसर)

परमकृपाळुदेव की भाँति मस्त महायोगी आनंदघन जी भी
उस अनुभवगान की महिमा गाते हुए कहाँ अघाते है ? - थकते हैं ?
यथा
"अनुभव ! तू है हेतु हमारो....."
"अनुभवनाथ को क्यों न जगावे ?" इत्यादि
(आनंदघन पद्यरत्नावली)

यहाँ अनुभव-संप्राप्त युवान मूळजीभाई ने इस अनुभवानंद की अभिव्यक्ति शब्दातीत पाई । फिर भी अनेक पृच्छकों और जिज्ञासुओं को उन्हें कहीं कहीं, किसी संदर्भ में बाद में प्रत्युत्तरों में कहना पड़ा, जैसे –

"इस वैयक्तिक प्रश्न के स्वल्प उत्तर के सिवा अधिक लिखने का समय एवं वृत्ति नहीं है ।"

"इस देहधारी को आगारवास में बसते हुए मोहमयी नगरी भात बाज़ार स्थित गोदाम में बिना प्रयास के १९ वर्ष की आयु में समाधि स्थिति हो गई । उसमें विश्व का स्थूलरूपेण अवभासन हुआ । भरतक्षेत्र के साधकों की दयनीय दशा देखी । अपने पूर्वसंस्कार स्मृति में उभर आए । उसके पश्चात् बद्ध से मुक्त सारी आत्माओं को नीचे से ऊपर तक देखा ।.... जो दर्शन पूर्वसंस्कारविहीनों को षट्चक्रभेदन द्वारा संभव होता है वह अनायास हुआ । उससे जाना जा सका कि पूर्व भवों में चक्रभेदन करके ही इस आत्मा का इस क्षेत्र में आना हुआ है । वर्तमान में तो स्वरूपानुसंधान ही उसका साधन है । अधिक क्या लिखूं ?....."[६]

आगारवास में युवावस्था में आत्मसमाधि का यह अद्भुत, अभूतपूर्व, अलौकिक आनंदानुभव मूळजीभाई को "युवावस्था के सर्वसंग-परित्याग" द्वारा अणगारवास की ओर ले गया । जीवन के महान मोड़ को दे गया ।

सर्वसंगपरित्याग की ओर.....

इस अनुभव के बाद, आकाशवाणी-आदेश के अनुसार वे स्वरूपस्थ बनने उस सिद्धभूमि की खोज के लिये तत्पर बने । इस हेतु संसारत्याग कर बाह्यांतर निर्ग्रंथ-प्रवज्या ग्रहण कर वनगमन की उन्होंने परिवारजनो से आज्ञा मांगी ।

परन्तु इस वर्तमान काल में असम्भव-सी जंगल में ऐसी घोर तपस्याभरी निर्ग्रंथ मुनिदीक्षा के लिये वे अनुमति कैसे दे सकते थे ?

६. सद्गुरु-पत्रधारा : साध्वीश्री निर्मलाश्रीजी को लिखित पत्र क्रमांक 14 : दि. 28-2-1970 ।

युवा सर्वसंगपरित्यागी श्री भद्रमुनि : गुरुजनों के बीच

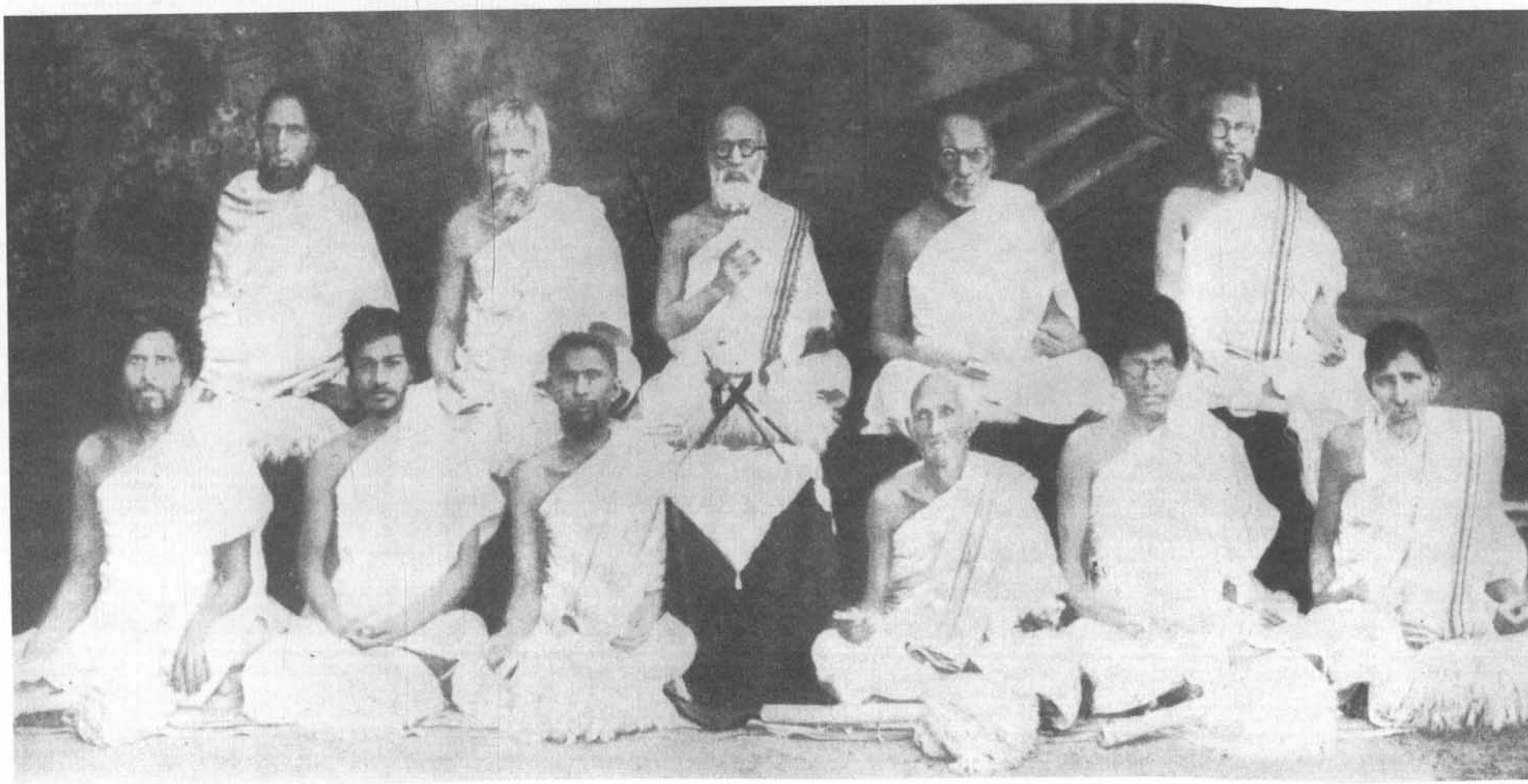

प्रथम पंक्ति में बायें से दूसरे दीक्षादाता श्री लब्धिमुनि महाराज, बीचमें उनके गुरु श्री जिनरत्नसूरि महाराज
नीचे दूसरी पंक्ति में बायें से दूसरे युवा मुनि श्री भद्रमुनि महाराज

श्री भद्रमुनि–युवावस्था में

सर्वसंगपरित्यागी युवामुनि श्री भद्रमुनि : कैसी मस्तीभरी खुमारी !

एक ओर से परिवारिकों-हितैषियों की दृढ़ता, दूसरी ओर से उन्हें परिवर्तित करने की युवा मूळजीभाई की भी दृढ़ता । अंततोगत्वा प्रथम अपने कुलधर्म मे मुनिदीक्षा एवं गुरुकुल वास में साधना करने की उन्हें अनुमति-आज्ञा बुजुर्गोंने अतीव दु:खी हृदय से प्रदान की, जिसे उन्होंने शिरोधार्य की ।

गुरूकुलवास

खरतरगच्छीय जैनाचार्य श्री जिनयश:सूरि म. अंतेवासी जिनरत्नसूरिजी की पावन निश्रा में, वैशाख शुक्ला छठवी वि.सं. १९९१ (1991) बुधवार, दि. 8-5-1935 के पूर्वान्ह में लायजा गाँव में महामहोत्सवपूर्वक उन्होंने मुनिदीक्षा लेकर बाह्यांतर निर्ग्रंथत्व के मार्ग पर पदार्पण किया । मूळजीभाई नाम मिटाकर वे भद्रमुनि नाम से घोषित किये गये ।

गुरूकुल वास में विनयोपासनापूर्वक युवा भद्रमुनि ने, एकासने के बाह्य तप एवं स्वाध्याय-ध्यान के आभ्यंतर तप की, 'समयं गोयम् ! मा पमायए' वाली प्रभु आज्ञानुसार क्षणभर के भी प्रमाद के बिना, अपनी पूर्वकाल की अधूरी साधना को पूर्णता की ओर ले जाने, वे अप्रमत्त भाव से प्रवृत्त हो गए ।

वहाँ उपाध्याय श्री लब्धिमुनि से उन्होंने विशाल श्रुतज्ञानार्जन किया । उन्होंने प्रकरणग्रंथ, संस्कृत-प्राकृत षड्भाषा व्याकरणादि, जैन-अजैन न्यायग्रंथ तथा अनेक सूत्र-आगम कंठस्थ किए । उनके इस ज्ञान-स्वाध्याय साधन एवं स्वात्मा के दर्शन हेतु ध्यानादि आराधन से उनके सारे गुरुबंधु भी प्रभावित रहे । गुरूजन एवं गुरूबंधु सभी में प्रीतिपात्र बने । उनकी स्पष्ट आत्मदर्शन पाने की खुमारी भरी लौ स्व-पर प्रकाशक बनकर सारे गुरूबंधुओ के लिए भी एक प्रेरणास्थान बनी ।

उनकी यह मस्तीभरी खुमारी उनके वदन पर सदा झलकती रही । उतरे ना कबहु खुमारी'' वाली उनकी उन दिनों की स्थिति स्पष्ट व्यक्त करती है उनकी एक तस्वीर । ग्रंथ में संबद्ध प्रकाशित वह तस्वीर, गुरूजनों और गुरूबंधुओं बीच बेठे हुए खुमारी से भरे हुए युवा भद्रमुनि को हूबहू प्रस्तुत करती है । मुनिजनों में ऐसी खुमारी आज कहाँ ?

''भटके द्वार लोगन के कूकर आशाधारी, आतम अनुभव रस के रसिया ''उतरै न कबहु खुमारी'' ''आशा औरन की क्या कीजे ?, ज्ञानसुधारस पीजे ''आतमअनुभव रस'', बस आतमअनुभव आनंद का रस ही पीने के सदा प्यासे बने रहे युवावय में सर्वसंग-परित्यागी भद्रमुनि ।

पर यह आतमअनुभव रस कैसे प्राप्त होता है ? उत्तर देते है ऐसे 'अगम पियाला' को पीनेवाले मतवाले महायोगी आनंदघन —

''मनसा प्याला, प्रेम मसाला, ब्रह्म अग्नि परजाली ।
तन भाठी अवटाई पीये रस, जागे अनुभव लाली ।''

अवधूत आनंदघन के समकालीन फक्कड़ संत कबीर भी भविष्य में 'सहजानंदघन' बननेवाले इस नवमुनि को यही प्रेरणा दे रहे थे :-

''इस तन का दीवा करुं, बाती मेलुं जीव ।

लोही सींचुं तैल ज्युं, कब मुख देखुं पीव ?"

अपने आतम अनुभव आनंदघनरूपी पीव-प्रियतम् का दर्शन करने मुनि भद्रमुनि भी गा रहे थे :-

"अनुभव क्या जानै व्याकरणी ?

कस्तूरी निज नाभि में पर, लाभ न पावै हिरनी ।"

(सहजानंदसुधा-१४१)

तो यह अनुभव, निजानुभव, आत्मानुभव स्पष्ट पाने के लिये सतत पुरुषार्थी ऐसे भद्रमुनि अपने गुरूकुल वास में भी कठोर आत्मसाधना में तल्लीन बने रहे । परिणामतः अपने गुरूकुलवास के भिन्न-भिन्न विहारों में वे नितनए दिव्यानुभव करते रहे अपने जामनगर, सुरत, महेसाणा, बम्बई आदि अनेक-चातुर्मासों के दौरान ।

युवावय का उनका सर्वसंगपरित्याग उन्हें उत्तरोत्तर परमपद प्राप्ति की ओर ही ले जानेवाला बना रहा ।

और इस परमपद-प्राप्ति के पंथ का उनका अगला पड़ाव था एकाकी, असंग, गुफावास । अपने गुरूकुलवास के समापन पर वे स्वयं ही लिखते हैं -

"दीक्षापर्याय के बारहवें वर्ष में धर्मऋण चुकाकर उऋण होकर आकाशवाणी के आदेश को आचार में कार्यान्वित करने वह (= स्वयं) गुफावासी बना ।" (चतुर्थ प्रकरण की आत्मकथा)

उनके इस और अन्य भी दिव्यानुभवों-आत्मानुभवों के प्रदायक एकाकी असंग गुफावास में कुछ दृष्टिपात करने से पूर्व, उनके उपर्युक्त गुरूकुलवास के कुछ प्रमुख चातुर्मासों का समापन-दर्शन करके हम आगे बढ़ेंगे ।

अनुभव-प्रदाता चंद चातुर्मास :

वि.सं. १९९१ (1991) सन् 1935 में कच्छ-लायजा में उनकी भागवती मुनिदीक्षा के पश्चात् गुरूकुल वास में बाह्यांतर आत्मसाधना एवं अध्ययन करते हुए उनके ये स्मरणीय प्रमुख चातुर्मास संक्षेप में निम्नानुसार थे :

● विक्रम संवत् १९९६-सन् 1940 : ठाणा : जहाँ अपनी अप्रमत्त आराधना के द्वारा आचार्य श्री जिनऋद्धिसूरिजी के वे विशेष कृपापात्र बने ।

● संवत् १९९७ - सन् 1941 : मुम्बई लालबाग : जहाँ नूतन आचार्य श्री जिनरत्नसूरिजी की निश्रा में, सभी साथी मुनिवृंद को तब हास्यास्पद प्रतीत हुई ऐसी, एक आगंतुक मुस्लीम ज्योतिषी की भविष्यवाणी श्री भद्रमुनि के विषय में सुनी गई । उसका सार था उनके एकासन-भोजन, आत्मज्ञान-प्राकट्य एवं राजयोग-ग्रहसंयोग के कारण भावी में वाहन में बैठने का योग । बाद में यह सब बना भी ।

● संवत् १९९८ - सन् 1942 : *सूरत-शीतलवाड़ी : वेदनीय कर्मोदय से तेज ज्वर से काष्ठवत् अकड़ गए शरीर के कारण शीतलवाड़ी का वातावरण भी तब, अ-शीतल बन गया ।* डोक्टरों ने आशा छोड़ दी । उपाध्यायश्री अंतिम आराधना के सूत्र सुनाने लगे । श्री भद्रमुनिने तब स्वयं को

अनशन करा देने की भावना प्रकट करते हुए अपने पूज्यवरों से प्रार्थना की कि, "मुझे श्री सीमंधर स्वामी के समवसरण का वर्णन सुनाईए, मैं उनके चरणों में जाऊँगा... उनके वरद हस्तों से दीक्षा ग्रहण करूँगा.... ।"

और फिर वे स्वयमेव 'तार-सप्तक' में विशुद्ध भक्तिपूर्वक नामस्मरण करते हुए श्री भक्तामर स्तोत्र की इस गाथा की धुन में तल्लीन हो गए :

"सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान् मुनीश !"

लय लगी, देह भान छूटा, समाधिस्थ हो गए..... फिर हुई अनेक अनुभूतियाँ, दिव्यध्वनि का श्रवण और पुनः आकाशवाणी आदेश : "असंग होकर आप तप करें, तप करें ।"

जीवन की यह आकाशवाणी-श्रवणमय दूसरी विशेष अनुभूति थी ।

• संवत् १९९९ - सन् 1943 महेसाणा गुजरात : जहाँ फिर जीवन की तीसरी अधिक विशिष्ट अनुभूति ने आकार लिया । दीपावली पर्व, संध्या का समय और ध्यानावस्था में ऊर्ध्व आरोहण करते हुए दिखाई दिए तीर्थाधिराज अष्टापद पर प्रत्यक्ष रूप में स्वयं ही ! ध्यानदशा स्वयं-समाधि में परिणत हुई और इस विशिष्ट अनुभूति में मानों गौतमस्वामीवत् ऐसी ही आत्म-लब्धि का प्राकट्य हुआ कि "स्वयं सूक्ष्म शरीर से अष्टापद पर ही हैं ।"

बाद में कुछ गुरूजनों-सुज्ञजनों के प्रति व्यक्त उनका यह अनुभूति-वर्णन, उनके चंद पत्रों, पदों और एक विशिष्ट प्रवचन में भी अभिव्यक्त हुआ है ।

अनंत लब्धिनिधान गणधर श्री गौतमस्वामी के आत्मलब्धिपूर्वक अष्टापद-आरोहण के पश्चात् किसी महत्पुरुष द्वारा ऐसा आरोहणदर्शन हुआ है क्या ? शायद जैन मनीषियों एवं इतिहासज्ञों द्वारा यह संशोधन का विषय है, जब इन दिनों अष्टापद की भौगोलिक खोज के कुछ विद्वद्जनों के सुप्रयास चल रहे हैं ।

भद्रमुनि का उपर्युक्त अनुभूतिजनित वर्णन, उन्होंने बाद में ७-५-१९६० के दिन के (7-5-1960) पद-लेखन में अद्भुत एवं अन्यों द्वारा अव्यक्त अभूतपूर्व रूप में अभिव्यक्त किया है :

सिद्धक्षेत्र की कैलाश-अष्टापद :

"चलो हंस ! अष्टापद कैलास, कर्म अष्ट हो नाश... चलो.
ऋषभ प्रभु निर्वाण-भूमि यही, हिम छायो चौ पास,
सागर गंग नाले शुचि होकर, भव परिक्रमा खलास... चलो.
पश्चिम दिशि नभ-मग चढ़ श्रेणि, आठ तला क्रम जास;
सप्तम तल गढ़ फाटक हो चढ़, पैड़ी आठ उल्लास... चलो. २
अष्टम तल सब चौदह मंदिर मध्य श्री ऋषभ आवास;
रत्न बिंब मणि-मंडित मंदिर अद्भुत दिव्य प्रकाश... चलो. ३

द्वार खड़े गजराज दुतर्फा, तरु एक प्रांगण तास;
मंदिर चार विदिश उत्तर दिशि, आठ एक पैड़ी पास... चलो. ४
सप्तम तल उत्तर दिशि दश मिल वर्तमान जिन वास;
चत्तारि अट्ठ दक्ष दोय मंदिर, अनुभव क्रम यही खास... चलो. ५
सप्तम तक पूरब दक्षिण श्रेणी, चौबीस चौकोर पास;
पूर्व अतीत अनागत दक्षिण, दो चौबीसी दुपास... चलो. ६
जिनालय बहतर अरु मुनि, निर्वाण-स्तूप सुनिवास;
पराभक्ति सह वन्दत पूजत, सहजानंद विलास... चलो. ७"

(सहजानंद सुधा-१४)

सन् 1960 में लिखित इस 1943 के महेसाणा चातुर्मास की अद्भुत अनुभूति के पद के पश्चात्-क्रम के पत्र में (श्री सहजानंदघन-पत्रावली पत्रांक १३१) उन्होंने 'अष्टापद' संबंधित महत्त्वपूर्ण बात लिखी है। 1943 की इस अष्टापद-दर्शन-अनुभूति के बाद अपने एकाकी गुफावास के दौरान वे स्वयं स्थूलरूप से प्रत्यक्ष अष्टापद-स्थान खोजने हेतु वहाँ गए हैं, जिसका उल्लेख अनेकों के अतिरिक्त श्री बद्रीनाथ-यात्रा संग विजयबाबु बड़ेर आदि को भी उन्होंने किया है। पूज्या माताजी उपरांत श्री विजयबाबु ने प्रत्यक्ष इस पंक्तिलेखक को यह सारा वृत्तांत कह सुनाया था। फिर यहाँ इस पद + पत्र में (किसी जिम्मेदार व्यक्ति के प्रति लिखित) इस महत्त्वपूर्ण बात में, "अष्टापद-कैलाशभूमि" निकट तीर्थ-निर्माण हेतु उनके द्वारा किए गए प्रयासों का भी स्पष्ट निरूपण द्रष्टव्य है :-

" 'अष्टापद' तीर्थ विषयक तो धोरा में ही अपनी बात हुई थी और तदनुसार "कैलास-कल्प-तीर्थ" निर्माण विषयक उचित भूमि ढूंढने का भी तय हुआ था। तदनुसार बद्रीनाथ जाते समय मार्ग में छोटा-सा पहाड़ भी नज़र में आया था, परन्तु वापिस लौटते हुए सारे दृश्य में कुछ परिवर्तन प्रतीत हुआ। फलतः सुनला P.W.D. बंगले की स्थिरता के दरम्यान कोई दिव्य संकेत मिला कि "तीन साल रुक जाओ क्योंकि तब तक देश में अशान्त वातावरण रहेगा।" हम चुप हो गए। अब भविष्य में जो होनेवाला होगा वही होगा। उस बंगले के बगल में भी एक पहाड़ साधनालय के योग्य मिला कि जिस पर दिव्य प्रकाश चमक रहा था... और नीचे सड़कें और दोनों बगल में जलस्रोत हैं। समीप में सुरमा की खदान भी है। और भी कुछ विशेषताएँ उस पहाड़ी में हैं जो अनुभवगम्य हैं। उस पहाड़ की उंचाई प्रायः ३५०० फीट की होगी। ऊपर चीड़ वृक्षावली है जिसकी हवा स्वास्थ्यप्रद है। ॐ शांतिः।"

अपने कथित अष्टापद प्रत्यक्षदर्शन अनुभूति विषयक वार्ता का संक्षिप्त संकेत उन्होंने पू. बुद्धिमुनिजी, पं. प्रभुदास पारेख आदि अनेक सुयोग्य जनों को जो किया था उसका उल्लेख उनके 'पत्रसुधा' में संग्रहित पत्रांक २१६ में भी है।

परंतु इन सभी से अधिक महत्त्वपूर्ण आधिकारिक (authentic) वर्णन हमें अपने अग्रज आश्रमाध्यक्ष पू. चंदुभाई टोलिया द्वारा रिकार्ड किए गए "अष्टापद रहस्य दर्शन" टेइप में स्वयं गुरुदेव की ही निम्न स्पष्ट आवाज़ में गुजराती में प्राप्त हुआ हैं, जो हमारे पूर्वकथन सह हिन्दी में इस प्रकार व्यक्त है :-

अष्टापद-रहस्य दर्शन :

पू. गुरुदेव द्वारा प्रत्यक्ष अष्टापद-गमन का आँखों देखा हाल

(इस परमगुरू-प्रवचन में इस पंक्तिलेखक का स्वयं का पूर्वकथन)

"इस प्रवचन में कुछ अद्‌भुत, अभूतपूर्व, असामान्य वर्णन है।.... गुरुदेव नगाधिराज हिमालय की यात्रा पर पधारे – प्राचीनतम अष्टापद को खोज निकालने।

"ऋषिकेश, बद्रीनाथ, केदारनाथ तक तो कलकता के कुछ भक्त-यात्री साथ रहे। बाद में उन सभी को विदा देकर, पीछे छोड़कर वे आगे चले –

"अकेले –

आत्मलब्धि द्वारा

स्वयं में स्थित होकर...

और अदृश्य शक्ति की सहायता लेकर। भीतर में 'सहजात्म स्वरूप परमगुरू प्रभु आदिनाथ' का ध्यान धरते हुए और बाहर में अट्ठम की तपस्या में देहरथ को संजोते हुए!... अंततोगत्वा उन्होंने खोज निकाला मूल अष्टापद!!

"उसका आनंदमय वर्णन उन्होंने इस व्याख्यान में गुजराती में किया है।... यह खोज वर्तमान की दुर्लभ घटना है।" (अब सुनें गुरुदेव के स्वयं के शब्दों में अष्टापदगमन का रहस्यमय आँखो देखा हाल...)

(प्रथम दर्शन और अंतस् में प्रश्न)

"मणिमंडित समीप के गर्भगृह में प्राचीन और Diamond हीरों की मूर्तियाँ...! चरण के साथ चरण चिह्न...!! उसकी (मूर्ति की) दृष्टि में दृष्टि मिलने पर परिलक्षित हुआ कोटि चंद्र सूर्य का प्रकाश... उस मूर्ति में से प्रसरित चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश...!!!

"हृदय में एकदम आनंद की लहरें उछलने लगीं... फिर प्रश्न उठता है अपने हृदय में : 'यह क्या?' (उत्तर मिलता है) 'यह तो अष्टापद कैलास!'

'यह कैसे?'

"यह कहते हुए (सूझा कि)

"श्वेतांबर परिपाटि में 'आत्मलब्धि से उसे जो पहुँचे उसे तद्‌भव मुक्ति' ऐसा कहा जाता है, उस रीति से यह... (संपन्न?)"

(प्रश्नों के बाद प्रत्यक्ष प्रतीति : दर्शन और प्रदक्षिणा)

"बाद में जो जो प्रश्न उठे वे सारे समा गए।

"उसके बाद प्रदक्षिणा में, प्रदक्षिणारूप में घूमते हुए ऐसा ही प्रतीत हो कि "मैं वहाँ ही हूँ।'

"साकार मूर्ति के दर्शन करें तो सारा रत्नमय पाषाणवत्... सारा ही रत्नमय...!

"बाद में उत्तर श्रेणी में देखा । वे आठ बिंब दर्शित हुए ।

"इस प्रकार से अभी जो कैलास पर्वत है उसमें भीतर वर्फ़ में यह सारा (दबा हुआ)

(यह दबा हुआ, अजेय, अनारोह्य अष्टापद का विशाल शिखर, अन्य सारे हिमशिखर और हिमालय विस्तार)

"हिमालय कितने विस्तार में है ? १५०० मील का विस्तार है हिमालय का ।

"उसमें अनेक शिखर हैं : शिखर पर शिखर..... (उन सब में) केवल एक ही शिखर ऐसा कि जिसमें चारों ओर ऊँचा उत्तुंग मानो किले (दुर्ग) जैसा, शत्रु ऊपर न चढ़ सके ऐसा विशाल विस्तार है । अभी भी वह वैसा का वैसा ही है ।

"बर्फ़ में सारा दबा हुआ है... उस पर चढ़ा ही नहीं जा सके ऐसा है... चारों ओर ऐसा ही है... लगभग ३२ से ४० (बत्तीस से चालीस) मील के घेराव में है ।

"ऐसा... फिर ऐसा... फिर ऐसा... (संकेत से यहाँ गुरुदेव बताते दिखते हैं प्रवचन में ।)

"७ सातवे में ऊपर बाउन्ड्री है...

"पश्चिम में दरवाज़ा है – पश्चिम दिशा की ओर... (वहाँ) "८वा भाग ऊँचा है... ७ वे मंदिर से वहाँ उपर पहुँचने के लिए पायरियां (पद-सोपान) हैं । ये जो पायरियाँ हैं वे पुराने ज़माने के उस समय के एक माल (मंझिल) जैसी हैं ।

"उसके ऊपर ऋषभदेव भगवान बिराजमान है ।

"चारों कोनों में दूर दूर चार चार एक श्रेणी से ऊपर एक श्रेणी ऐसी उन पायरियों की भूमिका है ।

"उनके नीचे दबे हुए हैं १४ जिनालय : चत्तारिअट्ठ..."

"वे वर्तमान जिनबिंब हैं ।"

"फिर आगे बढ़े पूर्वदिशा की ओर....

और वहाँ से दक्षिण दिशा की ओर यह पहुँचता है, वहाँ अनेक स्तुप हैं ।

ऋषभदेव भगवान के साथ १०८ सिद्ध हुए (चतारिअट्ठ) उनके कितनेक स्तुप हैं ।

"पूर्व दिशा में चारों ओर शिखर हैं : छह और छह और छह और छह – इस रीति के वे शिखर हैं ।

"एक एक शिखर पर शिखर और जिनालय हैं ।

पूर्व-अतीत चौबीसी... इस रीति से अतीत चौबीसी ।

"फिर पुन: दक्षिण दिशा की ओर आगे बढ़ते हुए १०८ (श्वेतांबर दिगंबर दोनों को मान्य)

"उसी पद्धति से २४ जिनालय... जिन में ३००... उनमें भरतजी को छोड़कर ९९ बंधु भी वहाँ गए (मोक्ष) ।

''७वीं मंझिल के ऊपर के भाग में मूल भगवान बिराजते हैं ।...

(इस सारे दर्शन के बाद, जैसा कि गुरुदेव स्वयं कहते हैं)

''जब उपयोग देह में आता है ।'' (इसका अर्थ, मर्म खोजने जैसा है – प्र.)

बाह्यपुष्टि इस अष्टापद दर्शन की : (गुरुदेव के ही शब्दों में आगे)

''इस बात की पुष्टि मुझे बाद में हुई - मेरठ में एक पुस्तकालय में । वहाँ एक श्री... दास की पुस्तिका मिली । उसमें ७२ जिनालयों का वर्णन है अष्टापद कैलास के । उसमें केवल नाम मात्र हैं । इतनी संख्या मात्र बतलाई गई है – केवल संख्या ।... ऊपरी हिस्से में सोने की खान है । कुछ रत्नमय हैं, कुछ रौप्यमय हैं । सारे अद्‌भुत हैं । प्रतीत... गुप्त रखा गया है । अब तो यह चायना की हद में है । दिव्य शक्तियाँ उसकी रक्षा करती हैं ।

''(अष्टापद दर्शन के बाद) वहाँ कुछ और अनुभव भी हुए ।

परंतु जो दर्शन पूर्वकाल में हुआ था उससे विशेष यहाँ था । उसमें मानो सारा विश्व जलमग्न हुआ हो* और आत्मा (उससे भिन्न) । जगतजीव बध्ध से मुक्त पर्यंत के सारे स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुए । समुदाय में (गुरूकुलवास में) रहते हुए भी जो अनुभव हुए थे उनकी पुष्टि हुई । पर यह सब विशेष था ।००० अदृश्य शक्ति सदा साथ ही रही ।'' (गुरुदेव टेइप-कथन समाप्त)

गुरुदेव के इस अष्टापद-गमन : अष्टापद-रहस्य-दर्शन-यात्रा पर चिंतन :

गुरुदेव द्वारा स्व-कथित (tape-recorded) उपर्युक्त अष्टापद-गमन पर कई लोगों को प्रश्न उठते हैं ।

यहाँ ऊपर उनका कथित वाक्य : ''जब उपयोग देह में आता है'' गहन अर्थ और मर्म का संकेत करता है । वे आत्मलब्धि से, प्रारम्भ के कथनानुसार वहाँ प्रत्यक्ष पहुँचे हैं । साक्षात् सारा दर्शन किया है उसका यह 'आँखों देखा हाल है । फिर बाद में वे स्वयं इसी टेइप में अपनी इस अष्टापद-दर्शन की रहस्यमयी यात्रा की पुष्टि भी करते हैं मेरठ पुस्तकालय की पुस्तिका के द्वारा । अनेक ग्रंथों, पुस्तकों में अन्यत्र भी ऐसे वर्णन मिलते हैं । आत्मलब्धि द्वारा अनंत लब्धिनिधान गणधर श्री गौतम स्वामी का अष्टापद पर पधारना 'अष्टापदाद्रौ गगने स्वशक्त्या' आदि अनेक स्तोत्रों-संदर्भों से स्पष्ट और प्रसिद्ध हैं ।

गुरुदेव का भी ऐसी 'स्वशक्तियुक्त' और गगनविहार आदि लब्धि के द्वारा अष्टापद-गमन और प्रत्यक्ष दर्शन, इस काल में भी संभव है ।

उन्होंने गुरुकुलवास के अनुभवों में महेसाणा चातुर्मास में किया हुआ पूर्वकथित अष्टापद दर्शन अनुभव एक है । उनका यह अनुभव यहाँ वे ही इस टेइप के अंत में पुष्ट करते हैं । उसकी विशेषता बतलाते हैं । अदृश्य शक्ति का सदा साथ रहना भी वे स्पष्ट करते हैं । उनके ये स्वयं-प्रमाणित अनुभव पूज्या माताजी ने भी हमारी प्रश्न-पृच्छाओं के उत्तर में प्रमाणित किये हैं । अतः हमें यह स्पष्ट प्रतीत

* जलमग्न विश्व का आदि मनु द्वारा दर्शन श्री जयशंकर प्रसाद के महाकाव्य 'कामायनी' मे तुलनीय : 'ऊपर जल था, नीचे चल था । एक तरल था, एक सघन ॥''

हुआ है कि 1943 के महेसाणा चातुर्मास के गुरुकुल वास के बाद अपने गुफावास एकलप्रवास के दौरान वे 1960 के पहले कभी अकेले वहाँ पधारे हैं ।

उनके संग बद्रीकेदार की यात्रा में गए हुए कलकता के विजयबाबू बड़ेर ने हमारे इस विषय के संशोधन में कुछ संकेत दिए हैं जो स्पष्ट करते हैं कि उनके संग की यात्रा के दौरान नहीं, अन्य किसी समय वे अष्टापद दर्शनार्थ पधारे हैं । स्व. विजयबाबू का हमने 1993 में इन्टरव्यू लिया था, जो 'सद्‌गुरु-स्मृति' शीर्षक कैसेट टेइप में रिकार्ड किया गया है । उसमें से इस विषय-संबंधित हमारा निम्न-प्रश्नोत्तर हमारे संशोधन को पुष्ट करता है और अनेकों के संदेहों पर प्रकाश डालता है :

प्रश्न : अकेले गए थे न वे तो, अष्टापद खोजने ?

विजयबाबू : वह तो दूसरी कोई बार ।

प्र. : पूज्य माताजी ने मुझे कहा था कि प्रभु अष्टापद गए थे ।

वि. : आगे (पहले) किसी बार गए हों तो संभव है ।

प्र. : पर कब गए थे यह जानना चाहता हूँ ?

वि. : आगे कभी गए थे अवश्य । गुरुदेव अष्टापद का साक्षात् प्रत्यक्ष दर्शन कर चुके थे ।

प्र. : वही वही बात । उस समय आप भी यात्रा में साथ नहीं थे ?

वि. : नहीं, नहीं ।

प्र. : तो जब वे गये तब कैसे गए होंगे ?

वि. : अकेले । (प्र. अकेले कैसे ?) **आज मनुष्य के महापुरुष जो होते हैं वे कहीं इच्छा करें तो स्व-शरीर से भी जा सकते हैं, या वैक्रिय शरीर से** । अपने दाहिने हाथ के ऊपर कमल है वहाँ पर वे भावना करें तो वैसे ही शरीर के आकार का पुतला तैयार हो जाता है । जिस कद का पुतला बनाना हो ऐसा बना सकते हैं । और वो twincle of an eye में (पलकारे में) जहाँ सोचे वहाँ जा सकते हैं । **तो गुरुदेव अष्टापद का पूरा दर्शन करने गए थे....** वहाँ पर हमने एक दिन पूछा कि कहाँ ? तो बोले : "**वहाँ पर बीच में जो मंदिर है वहाँ पर ऋषभदेव भगवान के देढ़ फिट ऊँची प्रतिमाजी है pure हीरे के ! दर्शन करते ही कोटि सूर्य का प्रकाश हो गया !!**"

तो सूक्ष्म शरीर से भी जा सकते हैं और गुरुदेव भी जाते थे - महाविदेह क्षेत्र, अष्टापद, सब सूक्ष्म शरीर से भी जा सकते थे, स्थूल शरीर से भी जा सकते थे ।

प्र. : दोनों रूप से जा सकते थे ?

वि. : हाँ. जंधाचरण विद्याचरण जो... (इन्टरव्यू टेइप समाप्त)

सारांश में प्रारम्भ में वर्णित गुरुदेव द्वारा अष्टापद तीर्थ निर्माण की आयोजना, स्वचिंतन, विजयबाबू कथन, पूज्या माताजी-कथन सभी के ऊपर प्रत्यक्ष अष्टापद दर्शन विषय मे स्वयं गुरुदेव ही यह मुहर ज्ञानपिपासु स्व. श्रीमती सविताबेन छोटुभाई अजमेरा की प्रश्न-पृच्छा के उत्तर में लगाते हैं :- "**अष्टापद पर तीन चौबिसियाँ हैं । बहत्तर (72) जिनालय हैं । भूत, भावि और वर्तमान रत्न प्रतिमाएँ हैं, जिन्हें भरत राजा ने बनवाई हैं** । यहाँ अपने पास परमकृपाळुदेव की पद्मासन मुद्रा में जो प्रतिमा है, उससे थोड़ी बड़ी है ।... **अभी हम जिस अष्टापद का दर्शन**

करते हैं वह कल्पित है । मैंने जो प्रत्यक्ष दर्शन किया उसका चित्रीकरण मैने स्वयं अपने हाथों से कुंमोजगिरि के दिगम्बर मुनि वयोवृद्ध महात्मा के आग्रह से रचना कर उन्हें सुपुर्द किया है ।" ("सद्गुरु संस्मरण:" पुष्पाबाई स्वयंशक्ति: पृ. 64-65.)

इससे प्रश्न चिंतन पर पूर्णविराम लगता है । हृदय की निसंदेहता कह उठती है – "त्वमेव सच्चं नि:शंकं ।"

अत: उन्हें जो पूर्व महेसाणा चातुर्मास में अनुभूति के रूप में "अष्टापद दर्शन" हुआ था वह प्रत्यक्ष साक्षात् भी उन्होंने अपनी आत्मलब्धिपूर्वक प्राप्त किया है यह सिद्ध है ।

● फिर संवत् २००० सन् 1944 के पालनपुर चातुर्मास में उन्होंने "संवत् २००१ की कार्तिक पूर्णिमा के पवित्र दिन पर १४ राजलोक एवं बध्ध-मुक्त जीवों के स्वरूप को चलचित्र की तरह देखा ।"[१]

"पालनपुरे लोकनाली दर्शनथी सिद्ध बद्ध मुक्त जीवन ।"[२]

पालनपुर में एक मध्याह्न की भावसमाधि में एक अन्य विशेष दर्शन भी हुआ - अपने जीवन-आराध्य एवं "पूर्वजन्म के मित्र-मुनि" ऐसे परमकृपाळुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी का, उनके लिखे हुए 'मोक्षमाळा' ग्रंथ को पढ़ते हुए रूप में । १६ वर्ष की कुमारावस्था में लिखित श्रीमद्जी की इस महारचना में मुद्रित तस्वीर में दिख रहे पगड़ी पहने हुए कुमारज्ञानी राजचंद्रजी भद्रमुनि के पास अपनी पगड़ी उतारकर प्रत्यक्ष बैठ जाते हैं । मित्रमिलन वत् दोनों के बीच वार्तालाप होता है । श्रीमद्जी की पूर्वकथानुसार तीनसौ वर्ष पूर्व के "क्रांतिकारी दिगंबर मुनि श्री राजचंद्र" के आहार में उस काल के शिथिलाचारी तथाकथित् मुनियों ने षडयंत्र कर विष मिश्रण करवाया था । इडर तीर्थ में घटित इस घटना में तब "मुनि राजचंद्र"ने अनशनपूर्वक देहत्याग कर दिया था । पूर्वजन्म की यह सारी घटना श्रीमद्जी के स्वयं के श्रीमुख से ही अपनी भावसमाधिदशा के इस मित्रवत् मिलन में सुनने-जानने के पश्चात् भद्रमुनिजी को परमकृपाळु श्रीमद्जी के प्रति अनन्य शरणभाव से "पकड़" दृढ़ हो गई ।

संवत् २००१ सन् 1945 के जामनगर चातुर्मास के दौरान तीव्रज्वर की वेदना के समय दादागुरु श्री जिनदत्तसूरिजी ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर आदेश दिया कि, "उठ भद्र ! तू गच्छ की चिंता छोड़कर आत्मकल्याण के लिए तैयार हो जा ।"[३]

फिर पुन: गिरनारजी तीर्थ की १७ यात्राएँ और अड्डम तप के बाद दादाजी ने इस काल में भी क्षायिक समकित होने की पुष्टि कर, "तू तेरा सम्भाल !" का मंत्र देकर उन्हें आत्मानुभव-मार्ग पर सुदृढ़ किया । फिर बाद में आगे चलकर गोकाक गुफा के समौन एकांतवास में उन्होंने पुरुषार्थपूर्वक 'दर्शनमोह' का संपूर्ण नाश करके 'क्षायिक समकित' प्राप्त किया । तत्पश्चात् अगवारी में गुरुआज्ञा प्राप्त कर, उनके एकाकी विचरण एवं गुफावास का प्रारम्भ हुआ । (शेष आगे २रे भाग में)

१ "अद्भुत योगी" पृ. 9.

२ "गुरुदेवनी पूजा : पृ. 9, 10

३ "अद्भुत योगी" : पृ. 10.

परिशिष्ट-१

कर्नाटक का गौरव : भगवान बाहुबली

कु. पारुल टोलिया

पहाड़ियों और हरियाली की प्राकृतिक सुन्दरता से घिरा कर्नाटक का एक छोटा सा जैन तीर्थ श्रवण बेलगोल और इसमें स्थित ५७ फुट ऊँची विशालकाय भगवान बाहुबली की दिव्य प्रतिमा जिसकी आभा प्राकृतिक संपत्ति को और रमणीय बना देती है, किसी मूर्तिकार द्वारा एक ही चट्टान में से बड़ी लगन एवं श्रद्धा से बनायी गयी इस मूर्ति ने यहाँ हज़ार वर्ष बीता दिए हैं। प्रतिदिन हज़ारो की संख्या में श्रद्धालु यहाँ आते हैं और भगवान बाहुबली के जीवन को याद करते हुए उनकी त्याग और तपस्या के प्रति नतमस्तक हो जाते हैं।

प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के पुत्र बाहुबली ने अपने पिताश्री के पथ पर चलकर मायावी दुनिया से संन्यास ले लिया था। उन्हें इसके लिए प्रेरित करनेवाला प्रसंग भी बड़ा रोचक है। बाहुबली के अग्रज राजर्षि भरत बड़े ही महत्वाकांक्षी एवं साहसी राजा थे। पृथ्वी के छह खंडों पर विजय पताका लहराने के बाद वे अनुज बाहुबली के राज्य पोदनपुर पर अधिकार जमाने की दृष्टि से बाहुबली को अपने अधीन करना चाहते थे। पोदनपुर के स्वाभिमानी नरेश बाहुबली इसके लिए तैयार न थे। राजा भरत के अहम् को ठेस लगी और उन्होंने बाहुबली को युद्ध के लिए ललकारा। आपसी मतभेद को सुलझाने के लिए निर्दोष सैनिकों की हत्या अनुचित समझकर उन्होंने द्वन्द्वयुद्ध का निश्चय किया। जीत बाहुबली की ही हुई। पर युद्ध के बाद उनका मन इस माया प्रपंच से उचट गया और उन्होंने उसी समय दीक्षा ग्रहण की। लम्बी तपस्या के बाद उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। मूर्ति के शिल्पकार ने भगवान बाहुबली की इसी ध्यानमग्न, शांतचित्त मुद्रा को कुशलता से प्रस्तुत किया है।

एक हज़ार वर्षों से लाखों श्रद्धालुओं को आकर्षित करती हुई इस मूर्ति का प्रत्येक १२ वर्ष के बाद तथा प्रत्येक शताब्दी के अवसर पर महामस्तकाभिषेक किया जाता है। मूर्ति की स्थापना के सहस्त्र वर्षों की पूर्ति पर २२ फरवरी १९८१* को गोमटेश्वर सहस्त्राब्दी समारोह धूमधाम से मनाया गया था जिसमें देश की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी सहित कई विशिष्ट व्यक्ति उपस्थित थे। जनसामान्य वर्षों से इस मूर्ति को श्रद्धासुमन अर्पण करता आया है, पर प्रेम और त्याग की यह दिव्य प्रतिमा हज़ार वर्ष पहले की उसी एकचित्त मुद्रा में खड़ी है - अचल, ध्यानमग्न, अलिप्त, सामान्य जन को प्रेम और अहिंसा के पथ पर चलने का आह्वान देती हुई।

"कारण" बेंगलोर (कर्नाटक) Dec. 1985

Ref : "बाहुबली दर्शन" (Documentary, VCD-DVD & T.V. Telecast : 10.2.2006)

---

* इसी पावन अवसर पर हंपी रत्नकूट के श्री चन्द्रप्रभु गुफामंदिर में स्थित बाहुबली चित्रपट पर भी अपने आप मस्तकाभिषेक करती हुई दूध की धारा बही थी - आत्मज्ञा पूज्या माताजी की निश्रा में ! ज्ञानियों की अकललीला का एक और प्रमाण !! - प्र.)

परिशिष्ट-२

कर्णाटक का गौरव भगवान बाहुबली

इस लेख की लेखिका कु. पारुल टोलिया को स्वर्णपदक

अभी-अभी संपन्न उस्मानिया विश्वविद्यालय के टैगोर आडिटोरियम में आयोजित दीक्षान्त समारोह में कु. पारुल प्रतापकुमार टोलिया को एम. ए. हिन्दी में अहिन्दी भाषी छात्र-छात्राओं में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करने के उपलक्ष्य में "हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद स्वर्णपदक" प्रदान किया गया। एम. ए. हिन्दी साहित्य में ७५ प्रतिशत जितने प्रायः अधिकांश अंक प्राप्त करने वाली एवं अभी पी. एच. डी. कर रही कु. पारुल बी. ए. एवं प्रि. युनि. परीक्षाओं में भी अग्रिमपद पर विजेता रही है। स्मरण दिलाना प्रासंगिक होगा कि उसके पिता प्रा. प्रतापकुमार टोलिया, जो कि गुजरात एवं बेंगलोर विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक एवं प्राचार्य रह चुकने के उपरांत कई बार विश्वयात्रा करने वाले अंतर्राष्ट्रीय कलाकार-संगीतज्ञ भी हैं, इसी उस्मानिया विश्वविद्यालय के ही १९६० में उत्तीर्ण हिन्दी साहित्य के एम. ए. हैं, जिन्होंने "अर्चना" पत्रिका के सम्पादन के उपरांत अंतर् विश्वविद्यालयीन, आकाशवाणी परिसंवाद एवं वृंदगान प्रतियोगिताओं में उस्मानिया विश्वविद्यालय विजेता दल का नेतृत्व किया था।

"राष्ट्र नायक" : हैदराबाद (आंध्र) Oct. 1985

परिशिष्ट- ३

सहजानंदघनजी का स्वर-देह

यो.यु.श्री सहजानंदघनजी के प्रवचन के नूतन सी.डी. : 2013 जुलाई (पूर्व-प्रस्तुत परमगुरु प्रवचन, दशलक्षण धर्म सेट, श्री कल्पसूत्र श्रवण मंजुषा, इ.के अनुसंधान में) : (1) नवकार महिमा (2) समाधि मरण की कला १-२-३ (3) श्रीमद् राजचंद्रजी की ज्ञानदशा (4) आत्मसाक्षात्कार का अनुभवक्रम- (1, 2, 3, 4, 5 : कुल 5) (5) परमगुरु प्रवचन श्रेणी : नूतनः 2014 (यो.यु.स.ज. शताब्दी : 23 CD सेट)

श्रीमद् राजचंद्रजी संबंधित साहित्य के नूतन सीडी : 2013 जुलाई :

(पूर्व प्रस्तुत श्री आत्मसिद्धि शास्त्र : अपूर्व अवसर, धून ध्यान, प्रज्ञावबोध इ. के अनुसंधान में) : (1) श्री भक्ति कर्तव्य (2) भक्ति झरणां-माताजी (3) परमगुरु-पद (4) राजपद-राजवाणी (5) सहजानंद सुधा (6) सहजानंद पद (स्वयंस्वर)

जिनभक्ति संगीत

(प्रा. प्रतापकुमार टोलिया के स्वर में)

कथा + स्तोत्रादि + जिनभक्ति साहित्य श्रृंखला के नूतन सीडी : 2013 जुलाई

(पूर्व प्रस्तुत श्री भक्तामर स्तोत्र, महावीर दर्शन, जिनवंदना-वीरवंदना, म. आनंदघन पद, इ. की श्रृंखला में) : (1) महावीर कथा (विशद MP3) (2) मंगलमय महावीर (3) श्री कल्याणमंदिर स्तोत्र + पार्श्वनाथ स्तोत्र (4) आनंदघनजी : गगनमंडल में आनंदयात्रा : MP3 (5) बारह भावना + परमानंद स्तोत्र MP3 (6) ऋषिमंडल स्तोत्र (7) अभीप्सा : दर्शन स्तोत्र, सामायिक, इ. (8) श्री श्रुतदेवी सरस्वती (9) सोनागिर की यात्रा + रागमय कथा (10) सुमेरु वंदना + पुस्तिका (11) स्तवनिका (12) स्पन्दन संवेदन (सुमित्रा टोलिया) (13) विविधगान ।

गुरुदेव-प्रेरित : प्रा. टोलिया : शब्द-देह (अंग्रेजी सूचियों में विस्तार से वर्णन)

प्रवचन-अंग्रेजी + ओडियो बूक इ. के नूतन सी.डी. : 2013 जुलाई

(पूर्व प्रस्तुत पारुलप्रसून ओडियो बूक इ. के अनुसंधान में) (1) Speeches & Talks in America : "SILENCE" : प्रा. प्रतापकुमार टोलिया के 25 से अधिक विदेश प्रवचनो में से प्रथम (अंग्रेजी) (2) Jainism Abroad : Cleave land Mayor's Honour : क्लीवलेन्ड मेयर द्वारा प्रा. प्रतापकुमार टोलिया का सम्मान और उनका प्रवचन-अंग्रेजी : JAINISM-ANCIENT & MODERN (3) Why Vegetarianism ? (अंग्रेजी) प्रा. प्रतापकुमार टोलिया की सुपुत्रियाँ डो. वंदना-नेथरोपैथ एवं फाल्गुनी द्वारा प्रस्तुत शाकाहार के महत्त्वपूर्ण Spiritual एवं Scientific पक्षों की प्रस्तुति + अहिंसागान (4) गीत गझल : प्रा. टोलिया की अनेकांतवाद आदि आध्यात्मिक गझलें । (5) दक्षिणापथ की साधनायात्रा (हंपी श्रीमद् राजचंद्र आश्रम) Hindi Audio Book

अन्य अनेक निर्माण विस्तृत सूची से प्राप्त करें = जिनभारती

परिशिष्ट-४

॥ ॐ नमः ॥

गुरुकृपा के सृजन

श्री वर्धमान भारती अपने ४१ वर्ष के सर्वप्रथम जैन रिकार्डों और परवर्ती जैन विद्या प्रकाशनों की श्रृंखला में नित्यनूतन कडियाँ जोड़ती जा रही है ।

ये हैं पूर्व के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रमुख रिकार्ड्-सी.डी. कैसेट : श्री भक्तामर स्तोत्र, श्री कल्याणमंदिर स्तोत्र, श्री ऋषिमंडल स्तोत्र, श्री परमानंद स्तोत्र, श्री परमात्म स्तोत्र, श्री आत्मसिद्धि शास्त्र, अपूर्व अवसर, परमगुरु पद, राजपद, आनंदघन पद, महावीर दर्शन, वीरवंदना, जिनवंदना, जिनेश्वर आरती, दादागुरु दर्शन, सुमेरु वंदना, सोनागिर की यात्रा और दशलक्षणव्रत कथा, रत्नत्रय व्रतकथा, श्री कल्पसूत्र प्रवचन मंजुषा (४ सी.डी. सेट), दर्शलक्षण धर्म (१० सी.डी. सेट), मेरी भावना-अनुभव वाणी, प्रार्थना मंदिर, प्रभात मंगल, राजुल-चंदनबाला, रत्नाकर पच्चीसी, धून-ध्यान (नवकार) ध्यानसंगीत (Music for Meditation) आसरा, आत्मखोज इत्यादि शताधिक कृतियाँ ।

और ये है अब के नूतन निर्माण : श्री गिरनारजी सिध्धक्षेत्र, भक्ति कर्तव्य, भक्ति झरणां, परमगुरु प्रवचन (२३ सी.डी. सेट) सद्गुरु बोध, ध्यानसंगीत (गुजराती), 'आनंदलोके - आत्मानुभूति की अंतर्यात्रा, इन के अतिरिक्त और भी हैं वर्तमान में निर्माणाधीन आगामी आरक्षणार्थ कृतियाँ : बाहुबली दर्शन, आत्मबली बाहुबली, 'अहिंसक युद्ध : बाहुबलीजी से राजचन्द्रजी और गांधीजी तक; सद्गुरू बोध + ''खोज जन्मांतर पार की ।'' : "THE QUEST BEYOND BIRTHS AND DEATHS," इत्यादि ।

उपर्युक्त रिकार्ड-संगीत निर्माणों के उपरान्त महत्त्व के साहित्यिक-दार्शनिक प्रकाशन हैं - **''सप्तभाषी आत्मसिद्धि''** (७ भाषाओं का ग्रंथ), महावीर दर्शन, महासैनिक-दक्षिणापथ की साधनायात्रा ई., The Great Wamor of Ahimsa, Meditation of Jainism, Why Abattoirs-abolution ?

इन प्रकाशनादि के सिवा वर्षों के चिंतन एवं परिकल्पना से आयोजित एवं प्रयोगभूत जैनविद्या (Jainology) की शिक्षाप्रदान एवं **''आर्हत् प्रभावक''** तैयार करने की चल रही तालीम-प्रवृत्ति को विकसित करने एवं सद्गुरु-सूचित 'स्वाध्याय-भक्ति-ध्यान' आधारित प्रायोगिक आत्मज्ञान-लक्षी जैन विश्वविद्यालय **'सहजानंद पीठ'** इस यो.यु. सहजानंदघन जन्मशताब्दी वर्ष में स्थापित करने जैनसमाज से अपील है कि इन्हें प्रायोजित (Sponsor) कर एवं नूतन छात्र-छात्राओं को तालीम हेतु भेजकर अपना सहयोग प्रदान करें । सम्पर्क : प्रा. प्रतापकुमार टोलिया, जिनभारती, वर्धमान भारती इन्टरनैशनल फाउन्डेशन, प्रभात कोम्पलेक्स, के.जी. रोड़, बेंगलोर-९ (M : 09611231580)

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

परिशिष्ट-५

गुरुकृपा के सृजन

વર્ધમાન ભારતી ઈન્ટરનેશનલ ફાઉન્ડેશનનાં મહત્ત્વનાં પ્રકાશનો

'પ્રિયવાદિની' સ્વ. કુ. પારુલ ટોલિયા દ્વારા લિખિત-સંપાદિત-અનુવાદિત

૧ दक्षिणापथ की साधनायात्रा (હિન્દી) : પ્રકાશિત (પ્રથમાવૃત્તિ પૂરી)
૨ महावीर दर्शन (હિન્દી) Mahavir Darshan (Eng.) : પ્રકાશ્ય
૩ विदेशों में जैन धर्म प्रभावना (હિન્દી) Jainism Abroad (Eng.) મુદ્રણાધીન
૪ Why Abattoirs - Abolition ? (Eng.) : પ્રકાશ્ય
૫ Contribution of Jaina Art, Music & Literature to Indian Culture : પ્રકાશ્ય
૬ Musicians of India–I came across & Indian Music & Media (Eng.) : પ્રકાશ્ય
૭ **પ્રા. પ્રતાપકુમાર ટોલિયા દ્વારા લિખિત, સંપાદિત, અનુવાદિત**
૮ श्री आत्मसिद्धिशास्त्र एवं अपूर्व अवसर (हिन्दी अनुवादसह) પ્રકાશિત.
૯ अनंत की अनुगूँज (हिन्दी) : (प्रथमावृत्ति पूर्ण) પુરસ્કૃત
૧૦ દક્ષિણાપથની સાધનાયાત્રા (ગુજરાતી) : પ્રકાશિત (પ્રથમાવૃત્તિ પૂર્ણ)
૧૧ महासैनिक (म. गांधीजी एवं श्रीमद् राजचन्द्रजी विषयक) પ્રકાશ્ય : પુરસ્કૃત
૧૨ Could there be such a warrior ? : Great Warrior of Ahimsa : અંગ્રેજી : પ્રકાશ્ય.
૧૩ વિદેશોમાં જૈનધર્મ પ્રભાવના (ગુજરાતી) : પ્રકાશ્ય.
૧૪ પ્રજ્ઞાચક્ષુનું દૃષ્ટિપ્રદાન : પં. સુખલાલજીનાં સંસ્મરણો (ગુજરાતી) : પ્રકાશ્ય.
૧૫ સ્થિતપ્રજ્ઞની સંગાથે : આચાર્ય વિનોબાજીનાં સંસ્મરણો : પ્રકાશ્ય
૧૬ ગુરુદેવ સંગે : ગુરુદેવ રવીન્દ્રનાથ ઠાકુર વિષે ગુરુદયાલ મલ્લિકજી : પ્રકાશ્ય
૧૭ गुरुदेव के साथ (हिन्दी) : પ્રકાશ્ય
૧૮ "પ્રગટી ભૂમિદાનની ગંગા" અને "વિશ્વમાનવ" (રેડિયોરૂપકો) ગુજરાતી : પ્રકાશ્ય.
૧૯ जब मुर्दे भी जागते हैं ! પુરસ્કૃત, અભિનીત હિન્દી નાટક : પ્રકાશ્ય.
૨૦ સંતશિષ્યની જીવનસરિતા (ગુજરાતી) : પ્રકાશિત - અન્યો દ્વારા
૨૧ कर्नाटक के साहित्य को जैन प्रदान (हिन्दी) : પ્રકાશ્ય.
૨૨ Jain Contribution to Kannada Literature & Culture : પ્રકાશ્ય.
૨૩ Meditation & Jainism (અંગ્રેજી) : પ્રકાશિત : પ્રથમાવૃત્તિ પૂરી.
૨૪ Speeches & Talks in U.S.A. & U.K. (અંગ્રેજી/ગુજરાતી) : પ્રકાશ્ય.
૨૫ Profiles of Parul (અંગ્રેજી) : પ્રકાશિત.
૨૬ Bhakti Movement in the North (અંગ્રેજી) : પ્રકાશ્ય.
૨૭ Saints of Gujarat (અંગ્રેજી) : પ્રકાશ્ય.
૨૮ Jainism in Present Age (અંગ્રેજી) : પ્રકાશ્ય.
૨૯ My Mystic Master Y.Y. Sri Sahajanandghanji : (અંગ્રેજી-ગુજ-હિન્દી) પ્રકાશ્ય.
૩૦ Holy Mother of Hampi : આત્મજ્ઞા માતાજી : (અંગ્રેજી-ગુજ.-હિન્દી) પ્રકાશ્ય.
૩૧ સાધનાયાત્રાનો સંધાનપંથ (દક્ષિણાપથની સાધનાયાત્રા-૨) : ગુજરાતી : પ્રકાશ્ય.
૩૨ દાંડીપથને પગલે પગલે (ગાંધી-શતાબ્દી દાંડીયાત્રાનુભવો) : ગુજરાતી : પ્રકાશ્ય.

परिशिष्ट-६

३३ विद्रोहिनी (નાટિકા) હિન્દી : પ્રકાશ્ય.
३४ रविरेखा (નાટિકા) : પ્રકાશ્ય.
૩૫ અમરેલીથી અમેરિકા સુધી (જીવનયાત્રા) ગુજરાતી/હિન્દી/અંગ્રેજી : પ્રકાશ્ય.
૩૬ પાવાપુરીની પાવન ધરતી પરથી (આર્ષ-દર્શન) : ગુજરાતી/હિન્દી : પ્રકાશ્ય.
૩૭ मेरे मानसलोक के महावीर : હિન્દી : પ્રકાશ્ય.
૩૮ विद्रोह-व्यंग्य (કાવ્યો) : હિન્દી : પ્રકાશ્ય.
૩૯ Popular Poems of Prof. Toliya (કાવ્ય) અંગ્રેજી/ગુજરાતી : પ્રકાશ્ય.
૪૦ Silence Speaks (કાવ્યો) : અંગ્રેજી : પ્રકાશ્ય.
૪૧ गीत निशान्त (કાવ્ય-ગીતો) : હિન્દી : પ્રકાશ્ય.
૪૨ कीर्ति-स्मृति : પારુલ-સ્મૃતિ (દિવંગત અનુજ ને આત્મજાનાં સ્મરણો) : પ્રકાશ્ય.
૪૩ "ઍવોર્ડ" (વાર્તાસંગ્રહ) : ગુજરાતી : પ્રકાશ્ય (વર્તમાનપત્ર પ્રકાશિત)
૪૪ Bribe Master, Public School Master & Other Stories (વાર્તાસંગ્રહ) અંગ્રેજી : પ્રકાશ્ય.
૪૫ વેદનસંવેદન (કાવ્યો) : ગુજરાતી : પ્રકાશ્ય.
૪૬ पराशब्द (निबंधो), હિન્દી : પ્રકાશ્ય.
૪૭ उपेक्षित (नवलकथा), હિન્દી : પ્રકાશ્ય.
૪૮ दीवारें बोलती हैं ! – (नाटक) હિન્દી : પ્રકાશ્ય.
૪૯ दीवारों के पार (नाटक) હિન્દી : પ્રકાશ્ય.
૫૦ "कटती गायें, जलती कन्याएँ" (વિદ્રોહ લેખો) : હિન્દી : પ્રકાશ્ય.
૫૧ અંતર્દર્શીની આંગળીએ... (સ્મરણકથા) : ગુજરાતી : પ્રકાશ્ય.
૫૨ સપ્તભાષી આત્મસિદ્ધિ
૫૩ પંચભાષી પુષ્પમાલા
૫૪ પારુલ-પ્રસૂન : હિન્દી/ગુજરાતી/સી.ડી.
૫૫ प्रज्ञा संचयन (પ્રકાશિત)
૫૬ जैन वास्तुसार (પ્રકાશિત)
૫૭ श्री सहजानंदघन गुरुगाथा – (પ્રકાશિત)
૫૮ उपास्यपदे उपादेवता (પ્રકાશિત)
૫૯ नवकार महामंत्र (પ્રકાશિત)
૬૦ Why Abattoirs–abolition ?
ડૉ. વંદના પ્ર. ટોલિયા, ઍન. ડી. (નૅચરોપૅથ), I.N.Y.S. જિંદાલ, બેંગ્લોર લિખિત
૬૧ "Why Vegetarianism ?" અંગ્રેજી : પ્રકાશિત.

આમંત્રણ :

'પ્રકાશિત' પુસ્તકો (મર્યાદિત સંખ્યામાં જ શેષ) બેંગ્લોરથી ઉપલબ્ધ.
'પ્રકાશ્ય' પુસ્તકોની કૉપીરાઈટ હસ્તપ્રતો પ્રાયઃ તૈયાર.
પ્રકાશક-પ્રતિષ્ઠાનો, સંઘસંસ્થાનો, અર્થપ્રદાતાઓનો પત્રવ્યવહાર આવકાર્ય છે.

વર્ધમાન ભારતી ઈન્ટરનેશનલ ફાઉન્ડેશન

પ્રભાત કોમ્પ્લેક્સ, કે. જી. રોડ, બેંગલોર-૫૬૦૦૦૯ (૦૮૦-૨૬૬૬૭૮૮૨)

परिशिष्ट-७

गुरुकृपा के सृजन

JINA BHARATI

ONGOING PRESENTATIONS, PUBLICATIONS, PRODUCTIONS

जिन भारती के प्रवर्तमान सृजन : निर्माण प्रकाशन के पथ पर : परमगुरु कृपाधिकरण प्रतापकुमार टोलिया

Books Publications ग्रंथ कृतियाँ

सप्तभाषी आत्मसिद्धि, पंचभाषी पुष्पमाला के बाद

Jan Jan Ka Jain Vastu Saar :

जन जन का जैन वास्तु सार : **Essence of Jain Vastu**

योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानंदघनजी श्री गुरुगाथा

The Mystic Master

Shrimad Rajchandraji : The Maker of Mahatma

श्रीमद् राजचन्द्रजी : महात्मा-निर्माता युगदृष्टा

Maha Sainik (Mahatma Gandhiji : Ahimsa, Shantisena)

महा सैनिक (म. गांधीजी : अहिंसक युध्धवीर, शांतिसैनिक)

The Great Warrior of Ahimsa : Ahimsa, Shantisena, Reg. Mahatma Gandhiji : Awarded Play) Voyage within with Vimalaji (Sushri Vimala Thakar)

अंतर्यात्रा-विमला ताई संग / विनोबाजी स्थितप्रज्ञ संग

Selected Works of Dr. Pt. Sukhlalji

प्रज्ञाचक्षु पंडित सुखलालजी के चुने हुए निबंध लेख - प्रज्ञासंचयन

Pragnyachakshu Ka Drishtipradan

प्रज्ञाचक्षु का दृष्टिप्रदान : निश्रा संस्मरण : १४ वर्षों के

Jain Yogapatha : Yoga Sanketika Dhyan Sangeet

जैन योगपथ : योग संकेतिका : ध्यान संगीत

Dakshinapath Ki Sadhanayatra :

दक्षिणापथ की साधनायात्रा (रत्नकूट-हंपी प्रथम दर्शन)

Mahaveer – Vani (Hindi & English)

महावीर कथा

महावीर-वाणी : "मेरे मानसलोक के महावीर"

Musicians of India-I Came Across (Parul)

भारत के संगीतज्ञ जो मैने देखे, सुने - पारुल टोलिया

Indian Music and Media (Parul)

भारतीय संगीत एवं प्रचार माध्यम - पारुल टोलिया

Jain Contribution to Kannada (English & Hindi)

कर्णाटक के साहित्य एवं संस्कृति को जैन प्रदान

પ્રજ્ઞાચક્ષુનું દૃષ્ટિપ્રદાન ● ગુરુદેવ સંગે : રવીન્દ્રનાથ-મલ્લિકજી

એક ક્રાંતિકારની કરુણકથા : કરુણાત્મા કીર્તિકુમાર ટોલિયા

And many more like उपास्यपदे उपदेयता, श्री नवकार महामंत्र **(both Hindi) etc.**

परिशिष्ट-८

गुरुकृपा के सृजन

CD-CASSETTES PRODUCTIONS सीडी

('आत्मसिद्धि - अे आनंदलोके' के पश्चात्)

Dada Guru Darshan
दादा गुरु दर्शन (जीवनी, इकतीसा)

Jain Suprabhatam : Prabhat Mangal
जैन सुप्रभातम् : प्रभात मंगल

Mangalashtaka : Brihat Graha Shanti
मंगलाष्टक : बृहत् ग्रह-शांति

Mahaprabhavik Navasmarana : 1 & 2
महाप्रभाविक नवस्मरणः १ और २

M. Ananadaghan Chovisi : 2
म. आनन्दघन चौवीसी:२

Chidanand Padavali
चिदानन्द पदावली

Ratnakara Pachisi
रत्नाकर पच्चीसी (हिन्दी + गुजराती)

Rishi Mandal Stotra
ऋषिमंडल स्तोत्र (संस्कृत + हिन्दी कोमेन्ट्री)

Girnarji Siddhakshetra; Rajul
गिरनारजी सिद्धक्षेत्र : राजुल (कथा, स्तवन)

Jina Vandana; Vira Vandana
जिन वन्दना : वीर वन्दना

Rajpada; Sahajanand Pada
राजपद : सहजानंद पद

Sonagir : Dashlakshna Katha
सोनागिर : दशलक्षण कथा

Jainism Abroad : USA Talks
विदेशों में जैनधर्म प्रभावना (हिन्दी, अंग्रेजी)

Bahubali Darshan (Vcd): Eng. Version
बाहुबली दर्शन (हिन्दी, अंग्रेजी, कन्नड)

• जन्मांतर पार : अंत जागरण 'स्वयं के द्वारा : निजबोध : सद्गुरू बोध
• गीत निशान्त • अमीप्सा • अहिंसा गान • पुकारते हैं मूकपशु (कविताएँ)

सुकृत सहयोग : इन ज्ञान-प्रकाशन सुकृतार्थ में सहयोग प्रदान कर पुण्यलाभ पायें। आत्मज्ञान-अहिंसा-अनेकांत प्रधान जिन धर्म की भावना करें, पर्युषणादि पावन अवसरों पर इन कृतियाँ का निःशुल्क प्रभावना-वितरण करे, करवायें, धन्य बनें। (विश्व भर में अनुगुंजित करवायें)

Donate whole-heartedly for this worth cause of publication of knowledge. Enhance Self-knowledge, Non-violence and Many-sided perspepective based Vision of Jainism. Sponsor & Distribute these creations free of cost everywhere throughout the world.

परिशिष्ट-९

गुरुकृपा के सृजन

सत्त्व प्रचारकों, सर्वोदय कार्यकर्ताओं, अध्यापकों एवं छात्र-छात्राओं के लिये सात्त्विक संगीत प्रचार सह आमदानी का सुवर्ण अवसर

अनेक सुमधुर कंठों एवं प्रा. प्रतापकुमार टोलिया, सुमित्रा टोलिया सह बेंगलोर के वर्धमान भारती इन्टरनेशल फाउन्डेशनने पिछले ४५ वर्षो से सात्त्विक संगीत का निर्माण किया है। इस आध्यात्मिक संगीत अभियान में जो अनेकभाषी एवं अनेकधर्मी रिकार्ड-कैसेट-सी.डी. आदि निर्मित हुई हैं उनमें से (१०० से अधिक शीर्षकों में से) कुछ हैं :

- श्री आत्मसिद्धि एवं अपूर्व अवसर (गुजराती) : श्रीमद् राजचंद्रजी
- राजपद एवं परमगुरु पद (गुजराती + हिन्दी)
- महायोगी आनंदघन के पद एवं अनुभव वाणी (हिन्दी) : आनंदघनजी कृत
- जय जिनेश, प्रभातमंगल, जैन रासगरबा इ. (गुजराती) : विविध संत
- राजुल-चंदनबाला, गिरनारजी सिध्धक्षेत्र, प्रार्थनामंदिर (गुज.) : विविध संत
- ग्राम्यजीवन, गुजराती लोकगीत, रासगरबा नूतन पुरातन (गुज.) : विविध कवि
- श्री भक्तामर स्तोत्र, कल्याणमंदिर, नवस्मरणादि (संस्कृत प्राकृत) : विविध आचार्य
- श्री महावीराष्टक स्तोत्र, परमात्म स्तोत्र, ऋषिमंडल (संस्कृत) : विविध आचार्य
- महावीर दर्शन, महावीर कथा (गुज. हिन्दी), मंगलमय महावीर :
- ईशोपनिषद्, कठोपनिषद्, स्थितप्रज्ञा, रामरक्षा-रामायण (सं./हि.) पारम्परिक
- ॐ तत्सत्, गीताप्रवचन (विनोबाजी), वीरों की बाट (दुःखायलजी)
- गीत-गज़ल, स्पन्दन संवेदन, विविध गान, अमरिका कार्यक्रम (अनेक उर्दू, हिन्दी, गुज. कवि)
- ध्यान-संगीत माला (१ से ५), धून-ध्यान, आनंद लोके, ॐकार नादध्यानादि (प्र.)

इन संगीत कृतियों के उपरान्त बंगला में रवीन्द्र गीतिका, कन्नड़ में रत्नाकर हाडुगळु आदि संगीत में सात एवं प्रवचनों में भद्रमुनिजी-सहजानंदघनजी के बावन जितने (कल्पसूत्र, दशलक्षण-पर्युषण) कैसेट, सी.डी. हैं।

पुस्तक-ग्रंथ :

- सप्तभाषी आत्मसिध्धि • महावीर दर्शन • દક્ષિણાપથ સાધનાયાત્રા • उपास्यापदे उपादेयता
- Profiles of Parul • Great Warrior of Ahimsa • Why Abattoirs-abolition ?
- जनजनका वास्तुसार • श्री गुरुगाथा • श्री नमस्कार महामंत्र • पारुल-प्रसून
- पुकारते हैं मूक पशु (काव्य)

इन सभी को घर घर एवं जन जन तक पहुँचाने हेतु आवश्यकता है उपर्युक्त सत्त्व-प्रचारकों की। सत्-साहित्य प्रचार लाभ उपरान्त अच्छा कमीशन उनकी नियमित आमदानी का साधन बनेगा/ स्वागत है उन सबका / सम्पर्क करें।

परिशिष्ट-१०

"गुरुकृपा के सृजन"

अहिंसा, अनेकांत और आत्मविज्ञान की प्रसारक संस्था

श्री वर्धमान भारती - जिनभारती :

प्रवृत्तियाँ और प्रकाशनादि

बेंगलोर में 1971 में संस्थापित 'वर्धमान भारती' संस्था आध्यात्मिकता, ध्यान, संगीत और ज्ञान को समर्पित संस्था है। प्रधानतः वह जैनदर्शन का प्रसार करने का अभिगम रखती है, परंतु सर्वसामान्य रूप से हमारे समाज में उच्च जीवनमूल्य, सदाचार और चारित्र्यगुणों का उत्कर्ष हो और सुसंवादी जीवनशैली की ओर लोग मुड़ें यह उद्देश रहा हुआ है। इसके लिये उन्होंने संगीत के माध्यम का उपयोग किया है। ध्यान और संगीत के द्वारा जैन धर्मग्रंथों की वाचना को उन्होंने शुद्ध रूप से कैसेटों में आकारित कर ली है। आध्यात्मिक भक्तिसंगीत को उन्होंने घर-घर में गुंजित किया है। इस प्रवृत्ति के प्रणेता है प्रो. प्रताप टोलिया। हिन्दी साहित्य के अध्यापक और आचार्य के रूप में कार्य करने के बाद प्रो. टोलिया बेंगलोर में पद्मासन लगाकर बैठे हैं और व्यवस्थित रूप से इस प्रवृत्ति का बड़े पैमाने पर कार्य कर रहे हैं। उनकी प्रेरणामूर्तिओं में पंडित सुखलालजी, गांधीजी, विनोबा जैसी विभूतियाँ रही हुई हैं। ध्यानात्मक संगीत के द्वारा अर्थात् ध्यान का संगीत के साथ संयोजन करके उन्होंने धर्म के सनातन तत्त्वों को लोगों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया। श्री प्रतापभाई श्रीमद् राजचन्द्र से भी प्रभावित हुए। श्रीमद् राजचन्द्र के 'आत्मसिद्धि शास्त्र'* आदि पुस्तक भी उन्होंने सुंदर पठन के रूप में कैसेटों में प्रस्तुत किये। जैन धर्मदर्शन केन्द्र में होते हुए भी अन्य दर्शनों के प्रति भी आदरभाव होने के कारण प्रो. टोलिया ने गीता, रामायण, कठोपनिषद् और विशेष तो ईशोपनिषद् के अंश भी प्रस्तुत किये। 1979 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने उस रिकार्ड का विमोचन किया था। प्रो. टोलिया विविध ध्यान शिविरों का आयोजन भी करते हैं।

प्रो. टोलिया ने कतिपय पुस्तक भी प्रकाशित किये हैं। श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हंपी के प्रथम-दर्शन का आलेख प्रदान करनेवाली 'दक्षिणापथ की साधनायात्रा' हिन्दी में प्रकाशित हुई है। 'मेडिटेशन एन्ड जैनिझम', 'अनन्त की अनुगूँज' काव्य, 'जब मुर्दे भी जागते हैं !' (हिन्दी नाटक), इ. प्रसिद्ध हैं। उनके पुस्तकों को सरकार के पुरस्कार भी मिले हैं। 'महासैनिक' यह उनका एक अभिनेय नाटक है जो अहिंसा, गांधीजी और श्रीमद् राजचन्द्र के सिद्धांत प्रस्तुत करता है। काकासाहब कालेलकर के करकमलों से उनको इस नाटक के लिये पारितोषिक भी प्राप्त हुआ था। इस नाटक का अंग्रेजी रूपांतरण भी प्रकट हुआ है। 'परमगुरु प्रवचन' में श्री सहजानंदघन की आत्मानुभूति प्रस्तुत की गई है।

प्रो. टोलिया का समग्र परिवार इस कार्य के पीछे लगा हुआ है और मिशनरी के उत्साह से काम करता है। उनकी सुपुत्री ने Why Vegetarianism ? यह पुस्तिका प्रकट की है। बहन वंदना टोलिया लिखित इस पुस्तिका में वैज्ञानिक पद्धति से शाकाहार का महत्व समझाया गया है। उनका लक्ष्य शाकाहार के महत्त्व के द्वारा अहिंसा का मूल्य समझाने का है। समाज में दिन-प्रतिदिन फैल रही हिंसावृत्ति को रोकने के लिये किन किन उपायों को प्रयोग में लाने चाहिये उसका विवरण भी इस पुस्तिका में मिलता है।

उनकी दूसरी सुपुत्री पारुल के विषय में प्रकाशित पुस्तक 'Profiles of Parul' देखने योग्य है। प्रो. टोलिया की इस प्रतिभाशाली पुत्री पारुल का जन्म 31 दिसम्बर 1961 के दिन अमरेली में हुआ था। पारुल का शैशव, उसकी विविध बुद्धिशक्तियों का विकास, कला और धर्म की ओर की अभिमुखता, संगीत और पत्रकारिता के क्षेत्र में उसकी सिद्धियाँ, इत्यादि का उल्लेख इस पुतस्क में मिलता है। पारुल एक उच्च आत्मा के रूप में सर्वत्र सुगंध प्रसारित कर गई। 28 अगस्त 1988 के दिन बेंगलोर में रास्ता पार करते हुए सृजित दुर्घटना में उसकी असमय करुण मृत्यु हुई। पुस्तक में उसके जीवन की तवारिख और अंजलि लेख दिये गये हैं। उनमें पंडित रविशंकर की और श्री कान्तिलाल परीख की 'Parul - A Serene Soul' स्वर्गस्थ की कला और धर्म के क्षेत्रों की संप्राप्तियों का सुंदर आलेख प्रस्तुत करते हैं। निकटवर्ती समग्र सृष्टि को पारुल सात्त्विक स्नेह के आश्लेष में बांध लेती थी। न केवल मनुष्यों के प्रति, अपितु पशु-पक्षी सहित समग्र सृष्टि के प्रति उसका समभाव और स्नेह विस्तारित हुए थे। उसका चेतोविस्तार विरल कहा जायेगा। समग्र पुस्तक में से पारुल की आत्मा की जो तस्वीर उभरती है वह आदर उत्पन्न करानेवाली है। काल की गति ऐसी कि यह पुष्प पूर्ण रूप से खिलता जा रहा था, तब ही वह मुरझा गया ! पुस्तक में दी गई तस्वीरें एक व्यक्ति के 27 वर्ष के आयुष्य को और उसकी प्रगति को तादृश खड़ी करती हैं। पुस्तिका के पठन के पश्चात् पाठक की आंखें भी आंसुओं से भीग जाती हैं। प्रभु इस उदात्त आत्मा को चिर शांति प्रदान करो।

'वर्धमान भारती' गुजरात से दूर रहते हुए भी संस्कार प्रसार का ही कार्य कर रही है वह समाजोपयोगी और लोकोपकारक होकर अभिनन्दनीय है।

'त्रिवेणी'
लोकसत्ता - जनसत्ता,
अहमदाबाद, 22-03-1992

डो. रमणलाल जोशी
(सम्पादक, 'उद्देश')

*इसी का सात भाषाओं में श्रीमद् राजचन्द्रजी कृत 'सप्तभाषी आत्मसिद्धि' रूप संपादित - प्रकाशित।

परिशिष्ट-११

गुरूकृपा का महासृजन : 'सप्तभाषी आत्मसिद्धि'

उसकी सिध्धिकर्ता स्वयं विदुषी विमलाताई के शब्दों में :

(गुरूदेव सहजानंदघनजी की यह भावना अंतमें विदुषी विमलाताईने पूर्ण करवायी)

१५ अगस्त १९९६

प्रिय भाई प्रतापजी,

गई काले सप्तभाषी आत्मसिद्धि अंगेना कागळिया मळ्या. खूब ज सन्तोष अनुभव्यो. तमोए घणो श्रम करीने अनुवाद कराव्या ! शाब्बाश !

मराठी अनुवाद खरेखर सारो छे. व्याकरणनी जे भूलो तमारी नजरे चढी छे ते गद्यनी दृष्टिए बराबर गणाय पण पद्यमां अने ते पण गेय पद्यमां ह्रस्व-दीर्घ, लघु-गुरू ने बधा नियमो लागु नथी पडता एवो ख्याल छे.

एटले हुं तो मूळ लखाण राखवानी हिंमत करीश. छतांय तमोने जे उचित लागे ते करशो जी.

स्नेहादर साथे बहेनना,
विमल आशिष

२८ अगस्त १९९६

प्रिय भाई प्रतापजी,

पत्र मिला । सप्तभाषी आत्मसिद्धि तैयार करना एवं छपवाना यह आपके जीवन की सर्वोच्च सिद्धि है । गुजरात के राजचन्द्र आश्रमों को जो करना चाहिए था, जो उनका दायित्व था, वह उन्होंने नहीं किया । आपके हाथों यह कार्य हुआ । शायद श्रीमद् राजचन्द्र का अनुग्रह आप दोनों पर उतरा है ।

मराठी अनुवाद देख गई । काव्य रचना की दृष्टि से मुझे निर्दोष प्रतीत होता है ।

दीदी के स्नेहभरे
विमल आशीष

શ્રી વર્ધમાન ભારતી માર્કેટિંગ નેટવર્ક-૧૦

- ૧૦૦ થી અધિક સંગીત રચનાઓ અને ૫૫ થી અધિક પ્રવચનકૃતિઓની પૂર્વની એલ.પી. અને હાલની ઑડિયો તેમજ વિડિયો સી.ડી.નું શ્રી વર્ધમાન ભારતીની ગુરુઆદેશિત ભાવનાનુસાર વિશ્વભરમાં અનુગૂંજન કરાવવા વિશાળ વિતરણ આયોજન શ્રી ભક્તામરાદિ સ્તોત્રો, મહાવીર દર્શનાદિ ચરિત્રો, શ્રી આત્મસિધ્ધિ આદિ તત્ત્વરચનાઓ, આનંદઘનપદ-જયજિનેશાદિ સ્તવનો, ધૂન-ધ્યાન : ધ્યાન સંગીતાદિ પ્રયોગ-કૃતિઓ આદિ અનેકવિધ જૈનદર્શન - જૈનવિદ્યાનાં વિષયો આમાં સમાવેશ પામ્યા છે. અધિકાંશ જૈનસંસ્કૃતિની આ કૃતિઓ સાથે તત્ત્વ અને વૈરાગ્ય પ્રધાન 'ઈશોપનિષદ્', 'કહત કબીરા', ૐ તત્સત્ આદિ થોડી વિશાળ સમાજને સ્પર્શતી અન્ય કૃતિઓ પણ સંબધ્ધ છે.
- સાહિત્યની કૃતિઓ : 'દક્ષિણાપથની સાધનાયાત્રા', 'સપ્તભાષી આત્મસિધ્ધિ', 'મહાવીર દર્શન', 'પરમગુરુ પ્રવચન', 'Why Vegetaranism ?' 'Jainism Abroad', 'વિદેશોમાં જૈન ધર્મ પ્રભાવના', ઈ. ૧૧ જેટલી પ્રકાશિત તૈયાર કૃતિઓ પુસ્તકાકારે છે. પચીસેક અપ્રકાશિત છે - યાદી મુજબ. (૨૦૧૪ : નૂતન ઉમેરા : પંચભાષી પુષ્પમાળા, પારુલ પ્રસૂન. શ્રી સહજાનંદઘન ગુરુગાથા)
- આ સર્વેનું, સર્વત્ર વિતરણ એવા માર્કેટીંગ નેટવર્કથી કરવું છે કે આ શુધ્ધભાવની કૃતિઓ વિશ્વમાં ઘેરઘેર, સુગમપણે - યથોચિત મૂલ્યે પહોંચી શકે.
- આ માટેના નેટવર્કમાં સાથે જ સાધર્મિકો, છાત્ર-છાત્રાઓ, વગેરેને પોતાના ફાજલ સમયમાં કામ કરીને સારી આવક મળે. આ વિષેની વિગતો હિન્દીમાં અપાઈ છે.
- મોટી કંપનીઓ, મોટા વિક્રેતાઓને બદલે આ નાના નાના વિતરકોની શ્રૃંખલા વિકસે તેવી આશા.

સંપર્ક સૂત્ર :

વર્ધમાન ભારતી ઈન્ટરનેશનલ ફાઉન્ડેશન

પ્રભાત કોમ્પલેક્સ, કે.જી. રોડ, બેંગલોર-૫૬૦૦૦૯.

(ફોન : ૦૮૦-૨૬૬૬૭૮૮૨ / ૬૫૯૫૩૪૪૦, (M) 09611231580, 09845006542

E-mail : pratapkumartoliya@gmail.com

Website : www.vardhmanbharti.in / vardhmanbharti.ind.in

• 'SHIVKUL' DALHOUSIE, HIMACHALPRADESH-176 304. PHONE : 2262
• 'SHIVKUTI MOUNT ABU, RAJASTHAN-307 501. PHONE : 3154

ॐ
VIMALA THAKAR

GLORY BE TO SRI RAJCHANDRA

I am very happy to learn that Atma Siddhi written by Sri Rajchandra - the great poet-saint of Gujarat is translated into seven languages of India: that it is being published under the caption "Sapta-Bhashi Atmaslddhi".

Publication of that Science of Self-Realisation ought to have been done long ago. In that poetic treatise having a format of a dialogue between an emancipated master and an enquiring student, is contained the essence of Indian Spirituality. It transcends the frontiers of both Jainism and Hinduism. It has a global content.

The scientific handling of the theme, the mathematical precision in the choice of words and the lucidity of style are simply enchanting.

Liberation is not a goal to be attained. It is a fact which has to be perceived and understood. Getting grounded in the unconditionally free nature of consciousness, one has to live with its awareness.

Dry theological dogmas or sentimental repetition of certain rituals do not bring about transformation says Rajchandra. Raga and Dwesha - infatuation and hatred - are the root causes of bondage. Ignorance about the ultimate nature of reality, about the essence of one's Being causes the imbalance of Raga-Dwesha. That basic ignorance is the source of all suffering. Eradication of ignorance is the emergence of Understanding. The Light of Understanding dispels darkness.

According to Rajchandra, close proximity to a living liberated person and learning from such a person's way of living is indispensable! Verbal knowledge gathered from books or traditions hardly serve that purpose.

I strongly recommend a serious study of this jewel of a book to every genuine sadhaka. The words of Sri Rajchandra are charged with the vibrations of Supreme Intelligence. He is alive in every verse of Atma Siddhi.

Vimala Thakar
28-8-1996

'श्री सद्गुरु पत्रधारा' के कुछ बिन्दु

श्रीमद् राजचंद्रजी तथा आनन्दघनजी विषयक संशोधन

सद्गुणानुरागी सत्यसुधारस पिपासु सत्संग योग्य मुमुक्षु भाई प्रताप,

आपका जिज्ञासा पूर्ण पत्र मिला । पी एच डी के लिए आपने जो विषय पसन्द किया है वह सचमुच अभिलषनीय है, अभिनन्दनीय है, क्योंकि उसके द्वारा परोपकार के साथ साथ स्व-उपकार भी अवश्यंभावी है । तद्विषयक मेरी सलाह इस प्रकार है :

निकट भूतकाल में कतिपय स्वतंत्र वैज्ञानिक हो गये, उनमें सन्त कबीर, सन्त आनन्दघन तथा सन्त श्रीमद् राजचन्द्र अपने अपने समय के अद्वितीय चैतन्य वैज्ञानिक मान्य करने योग्य हैं । इन तीनों सत्पुरुषों को कोई सम्प्रदायवाद इष्ट न था अतः उन्होंने तो किसी धर्म के सम्प्रदाय नहीं बनाये थे । केवल धर्म का मर्म प्राप्त कर के धर्म संशोधन के द्वारा धर्मसमन्वय साधा था और उसके प्रति परिचित व्यक्तियों को इशारा किया था । इनमेंसे सन्त आनन्दघनजी अणगार होने के कारण निर्जन वनों में, गिरि कन्दराओं में तथा स्मशानों मे असंगदशा में विचरण करते रहे और वि.सं. १७३० में इस दुनिया से सदा के लिए अदृश्य हो गये । इस कारण से उनके पीछे उनका कोई अनुयायी वर्ग तैयार न हुआ ।

सर्वज्ञ भगवान श्री महावीर की केवलज्ञान श्रेणी जिस प्रकार तीसरी पाट पर लय हो गई, उसी प्रकार आत्मज्ञ सन्तों की आत्मज्ञान श्रेणी तीसरी पाट पर लय हो जाय तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं और इसी कारण से उनके बाद के साधकीय गच्छसमुदाय गच्छवाद-सम्प्रदायवाद में परिवर्तित हो जायें तो उसमें भी कोई आश्चर्य नहीं । इसी न्याय से सन्त कबीर तथा सन्त श्रीमद् राजचन्द्र के नाम से सम्प्रदायवाद आरम्भ हो जाय और धर्म के नाम पर गुट-बन्दी (गच्छ, वाडाबन्धी) शुरु हो गई हो तो उसमें कोई भी सुविचारक सच्चा चिन्तक उन महापुरुषों का दोष मान ही नहीं सकता ।

सन्त कबीर और सन्त श्रीमद् राजचन्द्र के साहित्य को तो वर्तमान समय में उपजाऊ-ऊर्वरा भूमि समान मान सकते हैं जब कि सन्त आनन्दघनजी रचित साहित्य मेरी दृष्टि में तो गोचरभूमिवत् प्रतीत होता है क्योंकि श्री अगरचंदजी नाहटा द्वारा प्राप्त आनन्दघन साहित्य की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ तथा आज तक मुद्रित तथा अनुवादित साहित्य का अन्वेषण तथा अनुशीलन करने पर मेरे हृदय पर जो प्रभाव पड़ा है वह मैने ऊपर दर्शाया है । गोचर भूमि को ऊर्वरा बनाना यह आज की दुनिया के लिए महान पुण्यकार्य गिना जा सकता है - मानना चाहिए । यह कार्य कष्टसाध्य होने के कारण उस दिशा में कोई विरले ही दृष्टि डालें यह स्वाभाविक है । तथापि उन विरल व्यक्तियों की पंक्ति में सम्मिलित होना आप जैसे व्यक्ति के लिए कुछ कठिन नहीं है क्योंकि आपके पास तथा प्रकार का हृदय है, दिमाग है, कलम का कसब है तथा सरस्वतीपुत्र सम पण्डित सुखलालजी की निश्रा है एवं हमारे समान लंगोटीवालों की भी मैत्री है..... तो फिर..... ?

महामना पण्डितजी को धर्मस्नेह ज्ञात करायें और आप भी स्वीकार करें । ॐ शान्ति..... ।

- सहजानंदघन

(इस ग्रंथ से, पत्रांक १२ : हंपी, १४-१२-१९६९)

योगीन्द्र युगप्रधान सहजानंदघन प्रकाशन प्रतिष्ठान

जिनभारती • वर्धमान भारती इन्टरनेशनल फाउन्डेशन,

प्रभात कोम्पलेक्स, के.जी. रोड, बेंगलोर-५६०००९.